श्री द्वा० ग्र० माला का दशम पुष्प,

रसिक-रसाल

रचयिता

कविवर

पो० कुमारमणि शास्त्री

(स० १७७९)

सम्पादक

पो० कण्ठमणि शास्त्री विशारद

प्रकाशक

(श्री द्वारकेश कवि-मण्डल)

श्रीविद्या विभाग

कांकरोली

५०० प्रति } दशाब्दी महोत्सव स० १९९४ { मूल्य १।।)

सजिल्द २ रु

प्रकाशक
पो० कंठमणि शास्त्री 'विशारद'
संचालक
विद्याविभाग कांकरोली

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

कविवर पं० कुमारमणि शास्त्री
(जीवनी और उनके ग्रन्थ)

जन्म
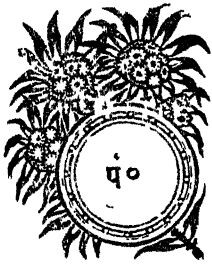
कुमारमणि शास्त्री के पिता का नाम शास्त्री हरिवल्लभ भट्ट था । यह श्रीवत्सगोत्री पंचप्रवरान्वित ऋग्वेदी शाकल-शाखाध्यायी तैलंग ब्राह्मण थे । इनका 'पोतकूचि' उपाह्व था । कुमारमणि ने अपने वंश का परिचय इस प्रकार दिया है—

"माधव पण्डितराज रुद्रगण-शिष्ट मनीषि वल्लभद्रम् ।
मधुसूदन कवि पण्डित मुख्यान्प्रणमामि पूर्वभवान् ॥
हरिवंशज, चतुर्भुज—पौत्रं, बुधरुद्रगणस्य नप्तारम् ।
श्रीमत्पितामहमह कण्ठमणिं नौमि महितगुणम् ॥
पितुरग्र्य सहपित्रा नत्वा निरवद्यविद्यवेदमणिम् ।
विरचयति सूक्तिसप्तशतं मान्ध्रकुलीन कुमारमणि ॥"*

इनके पिता पं० हरिवल्लभ शास्त्री माधव पण्डितराज के

* अप्रकाशित 'रासकरंजन' सप्तशती ।

वंशज, प० कण्ठमणि शास्त्री के द्वितीय पुत्र थे। यह हरिवल्लभजी प्रसिद्ध पौराणिक, धर्मशास्त्रज्ञ तथा हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध कवि हुए हैं†। इनके पूवपुरुष दक्षिण-भारत से १४ से १५वीं शताब्दी के बीच मे आकर उत्तर-भारत मध्यप्रान्त म बस गए थे।

कुमारमणि कवि का जन्म स० १७७० से ७५ के भीतर मानना चाहिये। यद्यपि 'शिवसिह सरोज' के आधार पर मिश्रबंधु विनोद के प्रथम संस्करण म इनको दास-काल (सं० १७९१ से १८१०) का कवि माना गया था, पर वह मेरे सशोधन उपस्थित करने पर द्वितीय सस्करण मे सुधार दिया गया है। उक्तजन्म संवत् मानने मे इनकी ग्रन्थ-रचना का काल ही मुख्य है, जो कवि की प्रौढावस्था का द्योतक है। कवि के रचित 'रसिक-रञ्जन' तथा 'रसिक रसाल' की रचना क्रमश स० १७९५ और १७७६ मे पूर्ण हुई है। प्रस्तुत विषय मे ग्रन्थकार यह लिखते हैं—

'कथिता 'कुमार' कविना प्रथिता रसिकानुरञ्जने प्रथिता।
सप्तशती शरषण्मुखमुखसिंधुविधिश्रिते (१७६५) राधे।।" र० र०
रससागररवितुरगविधु (१०७६) सम्वत मधुर वसन्त।
विकस्यौ "रसिक रसाल' लखि हुलसत सुहृद व सन्त।।" र० र०

कवि का उक्त ज० स० मानने मे दूसरा कारण कम से कम सं० १८७९ तक उनकी उपस्थिति भी है। कवि का स्वहस्त लिखित 'किरणावलि' नामक ग्रंथ प्राप्त होता है, जो उक्त

---

† देखो—'आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि" नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ

सं० मे लिखा गया है। उक्त आधारो से यह निःसंदिग्ध हो जाता है कि—कवि कुमारमणि का जन्म सं० १७२० से २५ के भीतर हुआ है।

अध्ययन और पांडित्य

पं० कुमारमणि का शास्त्राध्ययन वाजपेयी उपनामक भारद्वाजगोत्री मडन कवि के द्वितीय पुत्र पं० पुरुषोत्तम जी के पास हुआ था। 'रसिक रंजन' मे कवि ने अपने गुरु का स्मरण इस प्रकार किया है—

"मण्डन-तनूजमनुजं जयगोविंदस्य, वन्द्य गुणवृन्दम्।
श्रीमन्त पुरुषोत्तममिव गुरु पुरुषोत्तम वन्दे॥"

'रसिक रसाल' मे कवि ने इसी विषय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"सुर-गुरुसम मडन-तनय बुध जयगोविंद ध्याइ।
कवित-रीति गुरु-पद परसि अरु पुरुषोत्तम पाइ॥"

उक्त दोनो पद्यों के आलोचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि—कवि कुमारमणि के हिंदी-भाषा-शास्त्र के पं० जयगोविंद वाजपेयी और संस्कृत-साहित्य के गुरु उनके लघु भ्राता पं० पुरुषोत्तम वाजपेयी थे। कवि मंडनजी तथा उनके उक्त दोनो पुत्र हिंदी एव संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड पडित और कवि हुए है *।

---

* देखो—"आन्ध्रजातीय हिंदी कवि" नामक शीघ्र प्रकाशित होनेवाला ग्रन्थ।

'रसिक रसाल' एवं 'रसिकरंजन' के परिशीलन से यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि—कुमारमणि का पाण्डित्य दोनों भाषाओं मे समान रूप से प्रकाशमान था। उनके स्वार्थ स्वहस्त-लिखित आकरग्रथो से उनके अन्य शास्त्रीय प्रकाण्ड वैदुष्य का भी परिचय मिलता है। पौराणिक वृत्ति इनकी वशपरंपरागत थी, अत तद्विषयक विद्वत्ता मे सन्देह तो हो ही न-ीं सकता। कहने का तात्पर्य यह कि—कवि कुमारमणि की प्रतिभा जिस प्रकार काव्य मे आबाध रूप से धावमान होती थी, उसी प्रकार वह अन्यविषयक शास्त्रों मे भी कुण्ठित न थी। दोनो भाषाओ के पाण्डित्य से तो उन पर सोना सुगन्ध' ही कहावत चरितार्थ होती है। हिन्दी-भाषा-विषयक साहित्य के रीति-ग्रन्थ-निर्माण से हम उन्हे भाषा का आचार्य कह सकते हैं। जिस पद पर अभी तक हिंदी-साहित्य ने उन्हे समासीन नहीं किया है। इसका एकमात्र कारण उनके ग्रन्थ 'रसिक रसाल' का प्रचाराभाव ही कहा जा सकता है। पर वह दिन दूर नहीं है, जब इस ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही कवि को उक्त पद साहित्य-जगत द्वारा सहर्ष प्रदान किया जायगा।

परिवार

कवि कुमारमणि के लघु भ्राता का नाम 'वासुदेव' था उनके नाम का स्मरण उन्होंनें 'रसिकरंजन' मे किया है।

यह वासुदेव भट्ट अच्छे पौराणिक एवं साहित्यज्ञ होने के साथ ही सीथ कवि भी थे। *

वासुदेव भट्ट का स्वर्गवास अल्प वय मे ही हो गया था जिसके मर्मान्तक शोक से सन्तप्त कुमारमणि की लेखनी अपना उद्‌गार इस प्रकार प्रकाशित करने को बाध्य हुई थी—

हा ! विनयशील शालिन् शीलितशास्त्रार्थ, गणयसामर्थ्य !
भ्रातर्जातः किमु मां प्रविहाय विहायसः पथिकः । र० रं० ९८०
काव्यसखे ! पदवाक्यप्रमाणपरिहीन दीन निखिलगते ।
विकलमिव भवसि लोके शोके नव वासुदेवस्य।। र० रं० ९८१

उक्त दोनो आर्याओ का भाव सहृदय पाठकों के कोमल हृदय पर सीधी ठेस पहुँचाता हुआ कवि की वियोग-जन्य व्यथा का निदर्शन कराता है। उक्त वासुदेव कवि की निर्मित एक 'सप्तशती' थी, जिसके उदाहरण देकर कुमारमणि ने "अनुजसप्तशत्याः" इस पद से उसका स्मरण किया है। कवि ने 'रसिकरसाल' मे भी एक स्थान पर अपने भ्रातृ-वियोग का उल्लेख किया है—

संग सदा मिलि कीन्हौ निवास,
'कुमार' विलास हुलास घनेरो,
संग मिले निसिवासर न्यान,
न आन गन्यो सुख दुःख निवेरौ।

---

* देखो—'आन्ध्रजातीय' हिन्दी कवि नामक ग्रन्थ।

भाई चले, परलोक तुम्हें,
नहिं दीरन भौ हिय मेरो करेरौ,
जानि घनौ अपमान मनौ,
दृग मूँदि न देखत आन मेरौ ।। ८ । ६३

उक्त सवैया मे कवि को हार्दिक भ्रातृ-वियोग का शोक उच्छलित हो रहा है। उत्प्रेक्षालंकार के साथ कवि ने क्या ही अच्छे ढग से इस वियोग को परिदर्शित किया है। उक्त दोनों आर्या तथा सवैया से यह विदित होता है कि कुमारमणि का अपने अनुज पर कितना सहज स्नेह था। इसके साथ यह भी विज्ञात होता है कि कवि के अनुज वासुदेव साधारण व्यक्ति नहीं, प्रत्युत शास्त्र के कृतश्रम विद्वान् थे। आर्याओ के विशेषण इस कथन की पुष्टि के लिये पर्याप्त हैं।

इन्हीं वासुदेव अनुज के स्वर्गवास हो जाने पर कवि कुमार-मणि ने 'रसिकरंजन' का सग्रह किया है, जो उनकी स्मृति के अर्थ किया गया विज्ञात होता है। इस विषय मे ग्रन्थ-कार की एक आर्या इस प्रकार है —

अनुजन्मवासुदेवाभिधबुधतोषाय विविधिरसपोषम् ।
सरसार्य्यासूक्तिमय 'रसिक-मनोरंजनं' कुर्मः ॥ र० र०

इसी सूक्ति-संग्रह से 'कुमारमणि' तथा 'वासुदेव' कवि की स्वतंत्र आर्या सप्तशतियों के साथ 'मधुसूदन-सप्तशती' तथा अन्य कवियों की स्वतंत्र आर्याओं का भी हमे पता लगता

है इस ग्रंथ मे उल्लिखित २-३ कवियो का छोड़ शेष का तो नाम भी साहित्य-संसार मे प्रकट नहीं हुआ है। प्रस्तुत सग्रह से हमे बहुत कुछ साहित्य का परिज्ञान हुआ है, जो कालवश या तो लुप्त हो गया है अथवा किसी निभृत-कोण में छुपा हुआ पडा है।

प० कुमारमणि को अपने लघु भ्राता के वियाग के समान अपनी धर्मपत्नी का वियोग भी सहना पड़ा था, जो रसिक – रंजन की निम्नलिखित आर्याओ से ज्ञात होता है—

> अयि नेत्रैकान्तपात्र ! नवयदशे ! सुमुखि ! संवृतस्नेहे !
> मद्गेह दीपक लके ! कथमुपयातासि निर्वाणम् ॥ २२ २८२
> त्वा हरता हतविधिना हृदय मे व्यरचि शैलपारमयम् ।
> गृहिणि ! वदेति च गृहशुकगावजणापि नदभेदि ॥ २७१

प्रथम आर्या यद्यपि 'लीलावतीकार' की है, तथापि प्रकरण-वश द्वितीय आर्या के साथ उसका सामञ्जस्य बैठाते हुए कहना पड़ता है कि—कवि कुमारमणि ने अपने पत्नी-वियोग को लक्ष्य कर ही ऐसा लिखा है। द्वितीय आर्या तो स्वयं ग्रंथ-कर्ता की ही है। अत तद्विषय मे कोई सन्दिग्ध प्रसग नहीं रह जाता। कवि की धर्मपत्नी किस गोत्र की थी, कुछ पता नहीं चला है।

प्रथम पत्नी के दिवंगत हो जाने पर कुमारमणि ने अपना द्वितीय विवाह किया या नही, कुछ कहा नहीं जा सकता।

कवि के भोजराज और कृष्णदेव नामक दो पुत्र हुए। उक्त

दोनो पुत्रों का जन्म सं० १७६०-६५ के लगभग निर्धारित होता है। *

कुमारमणि ने अपने 'रसिकरंजन' मे 'मातुल जनार्दन' की आर्याओ का संग्रह किया है जिससे कहना पडेगा कि उनके तन्नामधेय एक मामा थे। उत्तर-भारतीय आन्ध्र - जाति में तत्कालीन जनार्दन नामक दो कवि हुए है जिनमे एक पद्माकर के पितामह जनार्दन, तथा दूसरे गोस्वामी जनार्दन (बीकानेर) थे। इनका जन्म समय १७१८-२० के लगभग निर्धारित किया गया है। *

उक्त कवि के क्षेमनिधि नामक शिष्य थे, जो पद्माकर के पितृव्य एवं मोहन भट्ट के लघु भ्राता थे। इन्होने स्वहस्त-लिखित ग्रंथ मे प्रस्तुत प्रकरण इस प्रकार लिखा है —

"इति श्रीसंक्षेपभागवतामृते श्रीकृष्णचैतन्यचरिते श्रीकृष्णामृतं नाम पूर्वखण्ड समाप्तम् । सं० १७८२ आषाढ शुक्लाष्टम्या बुधवासरे। श्रीमद्गुरुकुमारमणि लिखितानुसारेण क्षेमनिधिना लिखितम्

पोषे वलक्षपक्षे पञ्चतिभृगुवासरेऽलेखि

नेत्राङ्कसिन्धुसिन्धुज (१७९२) वर्षे प्रभो प्रीत्यै ॥

क्षेमनिधि के शिष्य होने से यह भी अनुमान होता है कि उनके बडे भ्राता मोहनभट्ट (पद्माकर के पिता) भी कुमारमणि के समीप अध्ययन करते रहे हो।

---

* देखो — आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि' नामक पुस्तक।

राज्याश्रय

यह हम पहले कह चुके हैं कि—कुमारमणि का सर्वव्यापी पाण्डित्य था, यह जिस प्रकार काव्य-कला के मर्मज्ञ एवं सिद्ध-हस्त कवि थे, उसी प्रकार संस्कृत के प्रत्येक विषय के शास्त्रो मे भी इनकी अबाध गति थी। पौराणिक वृत्ति इनकी वंश-परंपरागत थी। अतः यत्र तत्र इनके परिभ्रमण करते रहने में कोई सन्देह नहीं है। इसी प्रसग तथा अपने काव्य-चमत्कार के कारण इनका अनेक राज्यो मे आवागमन और सम्मान होता रहा होगा। मेरे स्व० पितृव्य श्रीकृष्णशास्त्रीजी द्वारा मुझे यह ज्ञात हुआ था कि कुमारमणि को 'झारखड' में सम्मान से कुछ भूमि प्राप्त हुई थी जो आगे चलकर वंशजो की उपेक्षा तथा राज्य-क्रान्ति के कारण हस्तान्तरित हो गई।

कुमारमणि ने 'रसिकरसाल' म कईवार 'रामनरेद्र' का गुण गाया है। तद्विषयक कुछ पद्य इस प्रकार है—

'रामनरपाल को निहारि रन ख्याल खग—
खुलैं विकराल दिगपाल कसकात हैं ॥'

''रामनरिंद की फौज पयान०'' ''रामजू की जसलता०''

''रामनरिंद तिहारे पयान०'' इत्यादि

इससे अवगत होता है कि किसी 'राम' नामधारी नरेश के यह आश्रित थे, अथवा उसके यहाँ इन्हे सन्मान प्राप्त होता रहता था। संभव है 'रसिक रसाल' उन्हीं 'राम' नामधारी

नरेन्द्र की आज्ञा से बनाया गया हो, पर प्रारंभ में इसका कुछ संकेत न होने से इसे सत्य नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

यहाँ प्रस्तुत 'रामनरेंद्र' के विषय मे कुछ विचार कर लेना असङ्गत न होगा। निम्न-लिखित ग्रन्थकारो ने इस पर जो प्रकाश डाला है, वह इस प्रकार है—

(१) मिश्रबंधु-विनाद (पत्र ५१८) मे न० ६२२ पर 'राम राय'-नामक कवि का परिचय लिखा है, जिसका कविता-काल स० १७६० लिखा है, साथ मे यह भी लिखा है कि यह कहीं के राजा थे।

(२) हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तको का सक्षिप्त विवरण (ना० प्र० सभा) प्रथम भाग मे (पत्र ४५) कुमारमणि का जन्म संवत् १८०३ तथा स्थान गोकुल, एव वल्लभ भट्ट का पुत्र और दतिया-नरेश का आश्रित लिखा है। इसमे उक्त सं० १८०३ गलत है, और वल्लभ भट्ट के स्थान पर हरिवल्लभ चाहिये। दतिया-नरेश के आश्रय का उल्लेख होने से सभव है रामराय, रामसिह नामक कोई तत्कालीन वहाँ के राजा हुए हो।

(३) न० २ की पुस्तक (पत्र ३१) मे एक खण्डन कवि का परिचय दिया गया है, जिसका स० १७८१—१८१६ के लगभग माना है, और उन्हे राजा रामचंद्र दतिया-नरेश के समकालीन बतलाया है।

उपस्थित उद्धरणो से यह निश्चित होता है कि कवि कुमार-मणि के समकालीन, हिन्दी-काव्य के आश्रयदाता ही नहीं

प्रत्युत स्वयं कवि रामराय अथवा रामचद्र, किंवा रामसिंह नामक दतिया के राजा थे, संभवत यही कवि कमारमणि के आश्रयदाता रहे हो। दतिया राज्य के आश्रय की पुष्टि इस से और भी अधिक होती है कि– सम्प्रति भी कवि कुमार-मणि के वंशज, इस लेखक के पितृचरण पूज्य बालकृष्ण शास्त्रीजी को भी दतिया से राजगुरु का सम्मान प्राप्त है। इसी प्रकार पूर्व मे भी (सन् १८५७ के गदर के समय) वान पुर के उजड़ जाने पर कमारमणि के वंशज पं० बिहारीलाल शास्त्रीजी * कवि भी दतिया मे आकर बसे थे, और उन्हें राज्याश्रय प्राप्त हुआ था। संभव है, वंशपरम्परा द्वारा इस राज-गुरु के सम्बन्ध और आश्रय को प्रचलित कराने का श्रेय पं० कुमारमणि को हो। अस्तु यह निःसन्दिग्ध है कि कवि कुमारमणि रामनरेंद्र के द्वारा सम्मानित हुए थे, अथवा वह उनके आश्रित होकर रहे हों। कुमारमणि के पूर्वपुरुषो का सागर जिले में धर्मसी, केनरा आदि ग्राम जयसिंह देव राजा द्वारा प्रदान किये गये थे। जिनमेसे प्रथम ग्राम अब भी उनके वंशजो के पास माफीरूप मे है। सागर ज़िला और बुन्देलखंड ये दोनो परस्पर संयुक्त हैं—अतः स्थायी निवास-स्थान सागर ज़िले का गढ़-पहरा ग्राम होने पर भी कवि कुमारमणि का आवागमन बुन्देलखंड मे चालू रहा होगा, और इसी कारण उन्हे वहाँ की रियासतो मे राज्य-सन्मान समय-समय पर प्राप्त होता होगा।

* देखो—'आन्ध्रजातीय हिन्दी कवि'

इसी प्रसंग मे दतिया रियासत मे उनकी आवभगत हुई हो, और वहाँ के काव्य-कला-प्रेमी रामनरेंद्र ने उन्हे सम्मानित किया हो, और इसी लिये कवि ने इस सम्मान-गौरव मे प्रभावित होकर यत्र-तत्र उदाहरणो मे उनके यश का वर्णन किया होगा।

इसके अतिरिक्त कुमारमणि को अन्यत्र कहाँ-कहाँ राज्य सम्मान प्राप्त हुआ, हम कुछ नहीं कह सकते, क्योकि तद्विषयक कोई प्रमाण उपस्थित नहीं होता। हाँ, स्वर्गवासी मेरे पितृव्यचरण पं० श्रीकृष्ण शास्त्रीजी के द्वारा मुझे ज्ञात हुआ था कि कविवर कुमारमणि को 'झारखंड' मे कुछ भूमि प्राप्त हुई थी। इस 'झारखड' का नामोल्लेख रसिक रसाल मे भी एक स्थल पर हुआ है।

कुछ भी हो, पं० कुमारमणिशास्त्री कुछ तो अपनी पौराणिक आजीविका से, कुछ अपने पाण्डत्य से एवं कुछ अपनी वंशपरम्परा, प्राप्त भूमि की आजीविका से अपना योगक्षेम चलाने म परमुखापेक्षी नहीं थे, इस कारण यदि उन्हे किसी नृपति-विशेष के आश्रय की आवश्यकता न भी हुई हो, तो कोई आश्चर्य नही है। उन्होने अपना काव्यमय जीवन बनाया था, और उसी की स्थायी स्थापना कर वह अपने नश्वर देह को छोड़ते हुए भी अजर अमर बन गये थे। वास्तव में एक संस्कृत-श्लोक के अनुसार कवियो का जरा-मरण-रहित यश काय ही उनका वास्तविक स्वरूप है।

कुमारमणि ने अपना पाञ्चभौतिक देह कब छोड़ा, इसका निश्चित काल ज्ञात नहीं हुआ है। हाँ, स० १७७६ मे उनकी हस्तलिखित, पूर्व वर्णित पुस्तक से उनकी इस समय तक की स्थिति मे कोई सन्देह नही रहता।

कवि के समकालीन और पूर्ववर्ती कुछ कवि

कविकुमारमणि-कृत 'रसिक रसाल' ग्रन्थ के दोष-प्रकरण मे कुछ हिन्दी के कवियों के उदाहरण दिये गये है, जिससे मानना पड़ेगा कि वे कवि कुमारमणि के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती थे। यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि रसिक रसाल की पूर्ति स० १७७६ मे हुई है। इस आधार पर जिन कवियो के नाम नीचे लिखे जाते है, उनका समय (कविता-काल) इसके पूर्व ही सिद्ध होगा, अधिक से अधिक ग्रन्थ-रचना के समय तक उनकी प्रसिद्ध मानी जा सकती है। निम्नलिखित कवियों के समय-निर्धार के विषय मे हम मिश्रबंधु-विनोद के आधार पर उनका समय देते है—जिसमे कुछ कवियो का समय 'रसिक रसाल' की पूर्ति के बाद आता है। हम कह नही सकते कि मिश्र-बधुओ का दिया हुआ समय ठीक है अथवा नहीं। संभव है, एक ही नामधारी दो कवि हुए हों, जिनमे एक का उदाहरण 'रसिक रसाल' मे दिया गया हो और दूसरे का पता विनोदकार को लगा हो, परन्तु जहाँ तक निश्चित है 'रसिक रसाल' में नामोल्लेख होने से 'विनोद' के प्रदत्त समय का सुधार होना चाहिये। उक्त कवियो की नामावली इस प्रकार है—

(१) 'जगदीश—रचना काल स० १८६२ ❀

(२) 'केशवदास'—जन्मकाल सं० १६१८

(३) 'वेनी'—प्रथम सं० १६६० के लगभग, द्वितीय का र सं० १७५५

(४) 'गग'—प्रथम सं० १५६० से १६१०, द्वि० १६२७

(५) 'सविता'- जन्म काल १८०३ कविता काल सं० १-३० (झारखड के कृष्ण साहि के यहाँ)

(६) 'ब्रह्म'—स० १८०३

(७) मुरलीधर'—ज० स० १७४० क० काल १७३०

(८) 'कासीराम'—ज० सं० १७१८ क० काल १७४०

(९) 'गदाधर'—सं० १७७५ के लगभग

(१०) 'मतिराम'—स० १७१६ के लगभग

(११) केसवराय'—प्रथम बघेलखंडी सं० १७५४, द्वि० बुन्देलखण्डी सं० १७५३ (छत्रसाल के)

(१२) 'मनिकंठ'—सं० १७५४ क पूर्व।

प्रस्तुत कवियो के समय का वास्तविक निर्णय करना इतिहासज्ञ साहित्य-विद्वानों का कर्तव्य है। जहाँ तक इनके समय की रूप-रेखा मिली है उसे उद्धृत करने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है।

जिस प्रकार कुमारमणि के 'रसिक रसाल' से हिंदी कवियों

❀ रेखाङ्कित संवत् पर विशष ध्यान देने का आवश्यकता है।

की पृष्ठ-लिखित नामावली ली गई है, उसी प्रकार उनके 'रसिक-रंजन' नामक आर्यासप्तशती-संग्रह से संस्कृत के निम्न-लिखित कवियो का हमे पता लगता है, और उनकी सुमधुर काव्य-सुधा चखने का सौभाग्य प्राप्त होता है। दुर्भाग्य यह है कि अभी तक एतन्नामधारी कवियों का न तो साहित्य-जगत् को पता ही था, और न उनके ग्रंथों की उपलब्धि ही। 'रसिक-रंजन' मे निम्न-लिखित कवियों की आर्याओ का संग्रह स्थान-स्थान पर किया गया है, और उसके साथ ही साथ एक दो आर्यासप्तशतियों का भी पता लगता है—जिनकी यथा-स्थान संसूचना की गई है। शोक इस बात का है कि उक्त ग्रंथो का या कवियो के काव्यसंग्रहों का कुछ भी पता अभी तक नहीं लगा है। अस्तु। नामावली इस प्रकार है*—

(१) कुमारमणि—स्वतन्त्र आर्यासप्तशती, जिसे कवि ने "मदीयसप्तशत्याः" से सम्बोधित किया है।

(२) गोवर्धनाचार्य—सप्तशती उपलब्ध होती है।

(३) चिन्तामणि दीक्षित—कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता।

(४) मातुल जनार्दन— ,, ,,

(५) जयगोविन्द वाजपेयी—इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध हुए है—(१) कवि-कल्पद्रुम (संस्कृत हिन्दी),

---

* जीवनचरित्र के लिये देखो 'आन्ध्रजातीय संस्कृत कवि' नामक अप्रकाशित ग्रन्थ

(२) कविसर्वस्व (हिन्दी),
(३) रसकौस्तुभ (,,) ।

(६) बालकृष्ण भट्ट—कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता ।
(७) बाणभट्ट—प्रसिद्ध है ।
(८) मधुसूदन कवि पण्डित —कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता ।
(९) वासुदेव—अनुजसप्तशती का नाम मिलता है ।
(१०) लीलावतीकार—प्रसिद्ध है ।
(११) प्राञ्चः (केचन) अप्रसिद्ध है ।
(१२) नव्य (कश्चित्) ,, ,,
(१३) कश्चित् (अज्ञात) ,, ,,

उपरिलिखित सभी कवि आन्ध्रजातीय थे, यह भी ज्ञात होता है ।

कुमारमणि और पद्माकर

कवि कुमारमणि के जीवनचरित्र मे लिखा जा चुका है कि इनके शिष्य क्षेमनिधि थे, जो कवि पद्माकर के पितृव्य थे, अत: संभव है, पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट ने भी कुमारमणि के समीप हिन्दी-साहित्य-शास्त्र का अध्ययन किया हो, और इसी कारण पद्माकर को भी कुमारमणि के निर्दिष्ट पथ का अनुगामी बनना पड़ा हो । जगद्विनोद और पद्माभरण की रचना के समय पद्माकर के ध्यान-पथ मे कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' ग्रन्थ होगा, अथवा उन्होंने उसकी अख्याति

से लाभ उठाया होगा। 'रसिक-रसाल' काव्यप्रकाश का प्रायः अनुवाद है। अतः यह भी संभव है कि पद्माकर का पाठ्य ग्रन्थ ही वह रहा हो, पर यह निःसंदिग्ध है कि पद्माकर की कविता पर कुमारमणि के काव्य की छाया पड़ी है और अच्छी प्रकार पड़ी है—फिर चाहे वह इच्छाकृत हो अथवा अनिच्छाकृत।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिये कुछ थोड़े से उदाहरणों का अवलोकन ही पर्याप्त होगा। पाठक देखें कि पद्माकर ने कुमारमणि के काव्य का किस प्रकार अपहरण किया है—

'रसिक-रसाल'—

दोऊ ढिग है बाल इक, आँखिन नाँखि गुलाल।
अक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल ॥ ४ उ० ६७ ॥

'जगद्विनोद'—

मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग,
सुदृग मिचावनी के ख्यालनि हितै-हितै।
नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य-धन्य दूसरी को,
औचक अचूक मुख चूमत चितै चितै ॥ ७४ ॥

उक्त दोनो पद्य 'ज्येष्ठा-कनिष्ठा' नायिका के उदाहरण-स्वरूप हैं, जिनमे कवियो ने अपने कल्पना-कौशल का परिचय दिया है। यद्यपि दोनो ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा के लक्षण पृथक् पृथक् लिखे हैं, जो एक दूसरे से भिन्न है, जिसकी गहराई मे हमें यहाँ उतरने की आवश्यकता नहीं है। हमे तो केवल यह कहना है कि

पद्माकर ने उक्त भाव मे कुछ दूसरा चोला चढाकर भावापहरण किया है। पद्माकर के पक्षपाती कवि यद्यपि उनके "सुदृग-मिचावनी क ख्याल" मे "नैसुक नवाई ग्रीवा" इत्यादि के कारण पद्माकर की वाहवाही के "औचक अचूक" पुल बाँध सकते हैं, पर 'रसिक-रसाल' मे "आँखिन नाखि गुलाल" की सूझ विलक्षण है और नायक की तात्कालिक कृति का उदाहरण है, जिसमें उसे अपेक्षित समय प्राप्त हो जाता है। पद्माकर ने आधे कवित्त मे उसकी भूमिका बाँधी है और कुमारमणि ने उसे दोहे के भीतर सुन्दर और अनुपम ढंग से कह डाला है। इसे हम भावापहरण कह सकते है।

कुछ पाठक इसे बलात्कार की धाँधली कहकर पद्माकर के लिये न्याय माँग सकते है, पर हम भी अपने कथन की पुष्टि करे बिना नहीं रह सकते। लीजिये द्वितीय उदाहरण—

'रसिक-रसाल'—

खौर को राग छुट्यौ कुच को, मिटि गौ
अधरारस देख्यौ प्रकासहि ;
अंजन गौ दृग कजन ते तनु,
कपत तेरो रुमंच हुलासहि।
नेकु हितू जन को हित चीन्हों न,
कीन्हों अरी ! मन मेरो निरासहि।
बावरी ! बावरी न्हान गई कै,
वहाँ न गई उहि पीव के पासहि ॥ १ उ० ११ ॥

'जगद्विनोद'—

धाई गई केसरि कपोल कुच गोलन की,

पीक लीक अधर - अमोलनि लगाई है,

कह 'पदमाकर' त्यौ नैनहू निरजन में

तजत न कप देह पुलकनि छाई है।

बाद मति ठानैं झूठवादिनि भई रा अब,

दूतिपना छोडि धूतपन में सुहाई है,

आई तोहि पीर न पराई महापापिन तू,

पापी लौं गई न कहुँ वापी न्हाइ आई है ॥ १२८ ॥

उक्त सवैया और कवित्त मे क्रमश अर्थ का मिलान करते-करते अर्धांश तक भावानुवाद का परिज्ञान कर सकते है। आगे चलकर कुछ अभिप्राय बदल गया है, पर अन्तिम चरणों मे केवल शब्दो का हेरफेर ही रह जाता है। क्या यह भावापहरण नहीं है? जगद्विनोद के उक्त पद्य पर क्या रसिक-रसाल के उक्त सवैया की छाया स्पष्ट नही झलकती? कौन इसे अस्वीकार कर सकता है? कहना पडेगा, पद्माकर ने कुमारमणि की सूझ से काम लेकर अपना काम बनाया है।

हॉ! स्मरण होता है, कई सहृदय व्यक्ति इसे अनुचित पक्षपात कह सकते है और तदर्थ एक संस्कृत का श्लोक उपस्थित कर सकते है, जिसके यह दोनो पद्य अनुवाद-स्वरूप हैं। वह श्लोक इस प्रकार है—

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो,

नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः;

मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे,
वापी स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ।

हमे इस कथन के मानने मे कोई विप्रत्तिपत्ति नहीं है, और उसका कारण स्पष्ट है कि उक्त दोनो कवियों की यह सूझ मौलिक नहीं है। परन्तु कुमारमणि ने इसे ध्वनि के उदाहरण मे लिखा है—जैसा कि 'रसिक-रसाल' के लिये काव्यप्रकाश का अनुवाद होने के कारण आवश्यक था, पर पद्माकर ने इसे 'अन्यसुरतिदु:खिता' नायिका के उदाहरण मे लिखा है, और उसे 'रसिक रसाल' से लेकर परिवर्तित रूप मे ला रक्खा है।

पद्माकर का कवित्त यद्यपि श्लोक का पूरा अनुवाद कहा जा सकता है और इससे उनकी पीठ ठोकी जा सकती है, परन्तु हम यह नि संकोच कह सकते हैं कि ध्वनिप्रकरण का उदाहरण होने से कुमारमणि का उक्त सवैया पद्माकर के कवित्त और मूल श्लोक दोनों से ही बढ़-चढ गया है। "मिथ्यावादिनि! दूति बान्धवजनस्याज्ञात पीडागमे" इस वाक्य और उसके अनुवाद—"बाद मति ठानें झूठबादिनि भई री अब, दूतपनो छोड़ि धूतपन मे सुहाई है" की अपेक्षा "नैकु हितू जन को हित चीन्हौ न कीन्हौ अरी मन मेरो निरासहि" इस कुमारमणि के पद्यांश में कितनी मधुरता और ध्वनि है, जो काव्य को अतिशय चमत्कृत कर रही है। अस्तु। 'तुष्यतु०' न्याय से इस विवाद को छोड़कर भावपहरण

के दो उदाहरण और उपस्थित किये जाते हैं, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता है—

'रसिक-रसाल'—

रूप सौं बिचित्र कान्ह मित्र को बिलोकि चित्र
चित्रित भई न चित्र पूतरी सुभाई है ॥ ३उ०२५ ॥

'जगद्विनोद'—

मोहन मित्र को चित्र लखें
भई चित्र हा सी तो विचित्र कहा है ॥१२७॥

पद्माकर के इस शब्द और भाव के अपहरण को कहाँ तक कोई छिपा सकता है—नीचे के पद्य के शब्द उच्चैर्घोष से अपने स्थान का परिचय दे रहे हैं। कवि ने कुछ शब्दो मे परिवर्तन कर किस प्रकार 'रसिक-रसाल' के माल को उदर-सात् कर लिया है। उक्त उदाहरण 'चित्र-दर्शन' के हैं। अतः कहना पड़ेगा कि पद्माकर ने निःसंकोच होकर इस सुंदर भाव-पूर्ण 'कान्ह-चित्र' को चुराया है—इसमे वह अपने लोभ का सवरण नहीं कर सके है।

प्रस्तुत भावापहरण प्रकरण मे एक उदाहरण और दिया जा कर यह विषय समाप्त किया जायगा। आइये और देखिये—

'रसिक-रसाल'—

फूल बहार के भार भरी
इक डार है 'नंद-कुमार' नवाई ॥ २ उ० १८ ॥

'जगद्विनोद'—

> निज निज मन के चुनि सबै फूल लेहु इक बार ;
> यहि कहि कान्ह कदंब की हरषि हिलाई डार ॥२९०॥

दिनदहाड़े की इस चोरी के लिये और क्या प्रमाण चाहिये ? वह उदाहरण स्वय अपना प्रमाण है ।

कदंब की डाल पर चढ़कर अपनी प्रियतमाओ को पक्षपात-हीन होकर प्रसन्न करने के लिये नायक की दक्षिणता की सुन्दर भावोत्पत्ति कुमारमणि के मस्तिष्क से ही हो सकती है, उसे चुराकर पद्माकर ने अपने लिये धन्यवाद का गट्ठर बाँधा है। पर है यह 'पराया माल' ही। आखिर बरामद हो ही गया है।

इन्हीं कारणों से कहना पड़ता है कि पद्माकर ने कुमारमणि के सुन्दर भावो का अपहरण किया है और उससे ख्याति प्राप्त की है।

विज्ञ जनो के सम्मुख कुछ शब्दापहरण के निदर्शन रखकर हम यह और बतलाना चाहते हैं कि पद्माकर ने कुमारमणि के शब्दों को यथावत् अपने काव्य मे स्थान ही नहीं दिया है, प्रत्युत उनके द्वारा अपने छंदो की पूर्ति भी की है। प्रथम एक उदाहरण अर्थापहरण का दे देना भी अप्रासगिक न होगा।

'रसिक-रसाल'—

> रचि बनाउ जो प्रेमबस तिय पहुँचै पिय पास ।

निज पास पिय को बुलावे सोऊ अभिसारिका कहत हैं।

'जगद्विनोद'—

बालि पठावै पियहि कै पिय पै आपुहि जाय ॥ २२७ ॥

'रसिक-रसाल' के उक्त पद्य और गद्यभाग को मिलाकर पद्माकर ने अपने दोहे का कलेवर बनाया है, जो छन्द के आवरण से आवृत होने पर भी अपनी वर्णसंकरता को छिपा नहीं सका है। अस्तु। अब शब्दापहरण की झाँकी देखिये—

'नायक' के उदाहरण मे पद्माकर का यह कवित्त प्रसिद्ध है—

ठौर ठकुराई को जु ठाकुर ठसकदार

नन्द को कहाई सो सुनन्द को कन्हाई है ॥ जग० २८० ॥

क्या इस पद्य के रेखांकित पद का अनुमान पाठक कर सकते हैं कि वह कहाँ का है? क्या यह पद्माकर का मौलिक शब्द है? नहीं। कुमारमणि 'रसिक रसाल' मे नायक के उदाहरण मे ही इसे इस प्रकार लिख चुके हैं—

कुँवर कन्हैया लोक ठाकुर-ठसक को ॥ ४ उल्लास ६ ॥

'ठाकुर-ठसक' के नगीने को चुराकर पद्माकर ने अपने कवित्त के आभरण मे यद्यपि फिर बैठा दिया है और ठकार के शब्दालंकार मे छिपाकर उसे अपनाने की कोशिश की है, पर 'रसिक-रसाल' के अवलोकन से प्रकट हो जाता है कि यह 'ठाकुर-ठसक' का संयोग कुमारमणि-कृत है।

अब आगे चलकर एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

'रसिक-रसाल'—

है उपमेय परसपरहिं सोई है उपमान ॥ ८ उ० १२ ॥

'पद्माभरण'—

उपमेयोपम परस्पर उपमेयहु उपमान ॥ २७ ॥

दोनो के रेखांकित पदो पर ध्यान देने से विदित हो जायगा कि 'रसिक-रसाल' के लक्षण मे ही कुछ परिवर्तन कर 'पद्माभरण' का उक्त लक्षण बना लिया गया है।

एक अन्य उदाहरण दिया जाता है, जिसमे एक शब्द ही क्या दोहा का अर्धांश तक उड़ा लिया गया है—

'रसिक-रसाल'—

रतिरस सो पिय संग सो जाके कछु परतीति।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत कविता रीति ॥ ६ उ० ६३ ॥

'जगद्विनोद'—

पति की कछु परतीति उर धरै नवोढा नारि।
सो विस्तब्ध नवोढ तिय बरनत विबुध बिचारि ॥ ३८ ॥

'कछु परतीति' से लेकर 'बरनत' तक पद्यांश पद्माकर ने उड़ा लिया है। इस चोरी के समय उन्हे पुनरुक्ति का भी ध्यान नहीं रहा है—'नवोढा नारि' और 'नवोढ तिय' यह दोनो शब्द एक ही पद्य मे दो बार आ गये हैं। इन प्रत्यक्ष उदाहरणों के सम्यगालोचन करने के बाद कौन साहित्यज्ञ समालोचक इससे नकार कर सकता है कि पद्माकर के काव्य पर कुमारमणि की छाया नहीं पड़ी है ?

उक्त उदाहरणों के अर्थ, भाव और शब्द सभी इसका संकेत करते हैं कि पद्माकर की सूझ या वर्णन-शैली स्वतंत्र न

होकर परतंत्र है—वह मौलिक नहीं है, कहीं से लाकर रक्खी गई है। गवेषणा-पूर्ण दोनो कवियो के काव्यावलोकन से और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, पर उससे ग्रन्थ के कलेवर बढ़ जाने का भय है, और परीक्षा के लिये एक दो दाने ही पर्याप्त है। पद्माकर के ऐसा करने अथवा उनसे ऐसा हो जाने का भी कारण है, वह है, उनके पाठ्य ग्रंथ मे रसिक-रसाल की सभवता। कुमारमणि ने साहित्य जगत् मे उतनी अधिक प्रसिद्ध नही पाई, जितनी पद्माकर नें। वर्तमानकालीन साहित्य-पारखियों ने तो कुमारमणि का कोई स्थान साहित्य मे निश्चित ही नहीं किया है, पर पद्माकर तो इस विषय मे काफी प्रख्यात हो चुके है, और वह भी अपने देशाटन, राजसम्मान तथा काव्यात्मक आजीविका से। 'रसिक-रसाल' की अनुपलब्धि अथच विशेप प्रख्याति का अभाव भी कुमारमणि को विस्मृति के पट मे छिपाये रहा है। इन सब कारणो से पद्माकर के 'करतब' छिपे रह गये हैं और कुमारमणि को साहित्य मे उचित स्थान न देने का अन्याय हो गया है।

कुमारमणि-कृत ग्रन्थ

(१) 'रसिक-रंजन'

कुमारमणि शास्त्री का सर्वप्रथम उपलब्ध ग्रन्थ रसिक-रंजन' है, जिसमें साहित्य के २१ विषयों पर सुन्दर, सरस संस्कृत-आर्याओं का संग्रह है। इसे सप्तशती शब्द से स्वयं

कवि ने सम्बोधित किया है। खेद है कि उक्त ग्रन्थ मध्य एवं अन्त भाग मे कुछ अपूर्ण उपलब्ध होता है। ग्रन्थ के विषय-निदर्शनार्थ कवि स्वयं इस प्रकार लिखता है—

"काव्यं कृष्णस्तुतिरथ सयोगवियोगनायिकाभेदा ।
उद्दीपनरसचेष्टाशिक्षोपालंभनं प्रेम ॥ १३ ॥
सापत्न्यमानमग हास्य ग्रामे गुणास्तथान्योक्तिः ।
सदसज्जनदुःखनयाश्चित्रमिहोत्तैकविंशतिप्रमिकैः" ॥ १४ ॥

अर्थात् 'रसिक-रंजन' मे काव्य, कृष्णस्तुति, संयोग, वियोग, नायिका-भेद, उद्दीपन, रसचेष्टा, शिक्षा, उपालंभ, प्रेम, सापत्न्य, मान, अङ्ग, हास्य, ग्रामगुन, अन्योक्ति, सज्जन, असज्जन, दुःख, नय (नीति) तथा चित्रकाव्य इन २१ विषयों पर आर्याओं का संग्रह है।

ग्रंथ मे कुमारमणि-रचित कितनी ही आर्याएँ हैं, जिन्हे कवि ने अपनी स्वतंत्र सप्तशती से उद्धृत किया है। इसी प्रकार अन्य कवियो की आर्याओ का इतना सुन्दर संग्रह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। हम यह प्रथम कह आये हैं कि इस आर्या-संग्रह से २३ प्राचीन आर्या सप्तशतियों के साथ ही अन्य अज्ञात कवियो की कविता का भी पता लगता है, जिसमे एक ही श्रीवत्सवंश की तीन सप्तशतियों की नामावली तो इस प्रकार है—(१) मधुसूदन-सप्तशती, (२) कुमारसप्तशती, (३) वासुदेवसप्तशती। मधुसूदनजी को 'कविपण्डित' की उपाधि थी, और यह कवि

के पूर्वज थे। इनकी आर्याएँ इतनी ओज-पूर्ण एवं सुन्दर हैं, जिनके लिये गर्व किया जा सकता है।

प्रस्तुत विषय मे इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सम्प्रति जो गौरव आर्याओ के निर्माण के लिये गोवर्धनाचार्य को दिया जा रहा है, उससे अधिक नहीं, तो वही गौरव प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशित होने पर उसके रचयिता को भी दिया जा सकता है। हम विस्तार-भय से उन आर्याओ के कुछ उदाहरण यहाँ नहीं देते, और उनका यहाँ लिखना भी एक प्रकार से "गगा की गैल मे मदार के गीत" वाली कहावत को चरितार्थ करना है।

आर्यासंग्रह 'रसिक-रजन' में जहाँ तक मेरा विश्वास और ध्यान तथा निश्चय है, आंध्रजातीय संस्कृत - कवियो की ही आर्याओं का संग्रह है। इस विषय का स्पष्टीकरण मैंने "आध्रजातीय संस्कृत-कवि" नामक ग्रंथ मे कवियो का परिचय लिखते समय किया है—जो अभी तैयार किया जा रहा है, अतएव अप्रकाशित है।

प्रस्तुत 'रसिक-रंजन' की पूर्ति सं० १७६५ मे हुई थी। यह ग्रंथ सौभाग्य से कुमारमणि के स्वहस्त से लिखा हुआ ही मेरे परंपराऽऽगत पुस्तकालय मे उपलब्ध हुआ है।

(२) 'कुमार-सप्तशती'

कुमारमणि की रचित स्वतंत्र आर्यासप्तशती का नामोल्लेख हमे रसिकरंजन मे मिलता है। कवि ने अपनी आर्याओं को

लिखते समय "मदीया" "मम" "मदीयसप्तशत्या" इन शब्दों से उनका उद्धरण दिया है, अतः कवि की एक स्वतंत्र 'आर्या-सप्तशती' अवश्य ही होना चाहिये—जो अभी तक अप्राप्त है। यह सप्तशती—'रसिक-रंजन' से प्रथम बनाई गई थी। और इसी कारण इसका उसमे उल्लेख पाया जाता है। 'रसिक-रंजन' मे उद्धृत कुमारमणि की आर्याओ से इस ग्रंथ की महत्ता, मधुरता एवं गंभीरता का सहज ही परिचय मिल जाता है। यदि यह ग्रंथ प्राप्त होता तो इसे गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती की प्रतिद्वंद्विता मे अवश्य स्थान मिलता।

(३) 'रसिक रसाल'

कवि कुमारमणि की अंतिम उपलब्ध किंतु सर्वप्रथम भाषा-काव्य-रचना का नाम 'रसिक-रसाल' है। इसकी पूर्ति सं० १७७६ में हुई है। ग्रंथकार ने इसके विषय मे इस प्रकार लिखा है—

> काव्य - प्रकाश विचार कछु भाषा में रचि हाल;
> पंडित सुकवि 'कुमारमनि' कीन्हौ रसिक-रसाल।

प्रस्तुत ग्रंथ के परिचयार्थ मैं कुछ भी न लिखकर पाठकों का ध्यान अग्रिम लेख पर आकृष्ट करना चाहता हूँ, जिसे मेरे आदरणीय मित्र पं० आशुकरणजी गोस्वामी ने 'रसिक-रसाल' के लिये लिखा है। प्रस्तुत लेख विद्वतापूर्ण, गवेषणामय एवं बहुत कुछ वास्तविकता को लिये हुए है। कहना पड़ेगा कि मेरे मित्रवर ने इस विषय मे अच्छा श्रम उठाया है और

काफी बुद्धि-वैशद्य से कार्य लिया है। उक्त मित्र मेरे सजातीय बन्धु, हिन्दू-विश्वविद्यालय के स्नातक, एम्० ए० उपाधिधारी हैं। आपने अँग्रेजी, हिन्दी एव संस्कृत में एम्० ए० किया है—सम्प्रति आप बीकानेर स्टेट की ओर से गगानगर मे सुपरिन्टेन्डेन्ट-पद पर कार्य कर रहे हैं। आपने काव्य-साहित्य का अच्छा परिशीलन किया है। 'रसिक-रसाल' के लिये इतना लम्बा-चोडा एवं गंभीर आलोचनात्मक परिचय लिखने का कष्ट आपने केवल मुझ अकिंचित्कर मित्र की एक बार की सूचना पर ही उठा लिया था, आपके आगत पत्रों से मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि आप इसे जिस उत्साह से जिस पैमाने पर लिखना चाहते थे, समयाभाव एवं साहाय्याभाव से उसे वैसा नहीं लिख पाये है। इस साहाय्याभाव मे आपने जिन साहित्यिक महारथियो की परोत्कर्षा, सहिष्णुता का दिग्दर्शन मुझे कराया था, वह एक स्मरणीय होते हुए भी अप्रकाशनीय है। इस पत्र-व्यवहार से मुझे इस वस्तुस्थिति को मानने के लिये विवश होना पड़ा है कि सम्प्रति हमारे हिन्दी-साहित्य के वातावरण मे वह सुखद समय नहीं आया है, जिसमे पारस्परिक गुण-ग्राहकता, सौजन्य एवं अनसूया से कार्य किया जाता हो। जो प्रसिद्ध साहित्य-प्रकाशक हैं, और जिन्हे साहित्यिक महारथी माना जाता है, वे स्वकीय प्रसिद्धि के आगे किसी को कुछ भी नहीं समझते, वे नहीं चाहते कि कोई व्यक्ति

हमारा समकक्ष बन बैठे। यहाँ मुझे एक श्लोक याद आ गया है, जो हिन्दी-साहित्य के लिये वर्तमान काल मे पूर्ण चरितार्थ प्रतीत होता है—

विद्वांसो मत्सरग्रस्ता प्रभवः स्मयदूषिता।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥

अस्तु। अप्रासङ्गिक इस कथानक को अधिक न बढ़ाकर मै स्वकीय उक्त मित्र को धन्यवाद न देकर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। पाठक देखें कि मेरे उक्त मित्र 'रसिक-रसाल' के प्रति क्या कहते हैं ।

‘रसिक-रसाल’

(लेखक पं० आशुकरणजी गोस्वामी एम्०ए०)

हिदी-साहित्य मे रीति-ग्रंथो की भरमार है। यद्यपि उनका आधार संस्कृत-साहित्य के रीति ग्रथ ही है, परतु संख्या की दृष्टि से हिदी-साहित्य के रीति-ग्रंथ सस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रथो से कहीं आगे बढ़ गए हैं। काव्य के अंगो का, काव्य के रूप का, उसके अलंकार, गुण, दोष आदि का जैसा विशद शास्त्रीय विवेचन संस्कृत के ग्रंथो मे मिलता है, उसकी छाया तक हिदी के ग्रंथों मे नहीं मिलती। मम्मट, भोज, दंडि, आनंदवर्धन, विश्वनाथ, जगन्नाथ कविराज आदि के ग्रंथों में जो वैज्ञानिक तत्त्व-विवेचन, शास्त्रार्थ, सिद्धांत-स्थापन, खंडन-मंडन और तत्त्व-निदर्शन दिखाई पडता है, वहाँ तक हिंदी के ग्रंथों के निर्माताओ की पहुँच कहाँ? देखने से इसके कारण का पता चलेगा कि संस्कृत के इस विषय के ग्रंथ लिखनेवाले आचार्य थे, और हिंदी में ऐसे ग्रंथ लिखनेवाले अधिकतर रसिक कवि। सस्कृत में ऐसे ग्रंथ लिखनेवालो का

ध्येय तात्त्विक विवेचन व सिद्धांत-स्थापन करना था, पर हिंदी मे ऐसे ग्रंथ लिखनेवालो का ध्येय अपनी कवित्व-शक्ति तथा रसिकता दिखलाना था। संस्कृत मे तो बहुत-से आचार्य बडे ही भावुक और उच्च कोटि के कवि भी थे, परंतु हिंदी मे ऐसे कवि आचार्य-कोटि को पहुॅचे हो, इसमे बहुत संदेह है। कहा जा सकता है कि इस कमी के कारणों मे, हिंदी-साहित्य की प्रारंभिक अवस्था, आश्रयदाताओं की रुचि की भिन्नता, तात्कालिक युग का वातावरण, हिंदी की साहित्यिक भाषा के स्थिर रूप का अभाव आदि-आदि थे, फिर भी, कारण चाहे जो हो, निष्पक्ष रूप से यह मानना पड़ेगा कि हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथ लिखनेवालो मे अधिकाश आचार्यता का प्राय अभाव ही था। इसका एक मोटा सा सबूत यह है कि तद्विषयक ग्रथों मे जो लक्षण दिए हैं, वे बहुधा क्लिष्ट, अपूर्ण और ग़लत भी है, परंतु उन लक्षणो के जो उदाहरण दिए गये हैं, वे बहुधा बहुत सरस, भावपूर्ण एव मंजे हुए हैं। कहीं-कहीं तो वे ऐसे हृदयग्राही हैं कि संस्कृत-ग्रंथों मे वैसे उदाहरण कम पाये जाते हैं।

हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों मे शास्त्रीय दृष्टि से यदि मौलिकता कहीं दिखाई पड़ेगी, तो उदाहरणों मे ही, लक्षणो व वार्त्ताओ मे नहीं। जिसका कारण पहले बताया ही जा चुका है।

हम हिंदी-साहित्य के रीति-ग्रंथों के स्थूल रूप से तीन विभाग कर सकते हैं—

१. जिनमे काव्य के सारे अंगो पर प्रकाश डाला गया है ,

२. जिनमे रस-भेद व भाव-भेद का ही वर्णन है ,

३. जिनमे केवल 'अलकार' का विषय हो दिया हुआ है।

पहली श्रेणी में चितामणि त्रिपाठी का 'कविकुलकल्पतरु', कुलपति मिश्र का 'रसरहस्य', देव का 'शब्दरसायन', कुमारमणि का 'रसिक-रसाल', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', भिखारीदास का 'काव्यनिर्णय', सोमनाथ का 'रसपीयूषनिधि', रूपसाहि का 'रूप-विलास', रतनकवि का 'फतेहभूषण', जगतसिह का 'साहित्य-सुधानिधि', प्रतापसाहि का 'काव्यविलास आदि ग्रथ मुख्य है।

दूसरी श्रेणी मे मतिराम का 'रसराज', केशवदास की 'रसिक-प्रिया', सुखदेव मिश्र का 'रसार्णव', उदयनाथ कवींद्र का 'रसचंद्रोदय', गजन का 'कमरुद्दीनखाँ हुलास', भूपति का 'रस-रत्नाकर', सैयद ग़ुलामनबी का 'रसप्रबोध', करन कवि की 'साहित्य-चंद्रिका', देवकीनंदन का 'शृंगारचरित्र', थान का 'दल्लेल-प्रकाश', बेनीप्रवीन का 'नवरसतरंग', पद्माकर का 'जगद्विनोद', भौन का 'रसरत्नाकर', शिवनाथ का 'रसवृष्टि', ये मुख्य है।

तीसरी श्रेणी मे केशव की 'कविप्रिया', मतिराम का 'ललित ललाम', भूषण का 'शिवराज-भूषण', जसवतसिह का 'भाषा-भूषण' सूरतिमिश्र की 'अलकार-माला', श्रीपति की 'अलंकार-गंगा', ऋषिनाथ की 'अलंकार-मणिमंजरी,' रसिक-

सुमति का 'अलंकार-चंद्रोदय', भूपति का 'कंठाभरण', दत्त की 'लालित्यलता', दलपतिराय वंशीधर का 'अलंकार-रत्नाकर', रघुनाथ का 'रसिकमोहन', दूलह का 'कविकुल-कंठाभरण', शिव का 'अलकार-भूषण', गुमान का 'अलंकार-चंद्रोदय', ब्रह्मदत्त का 'दीपप्रकाश', शभुनाथ का 'अलंकार-दीपक', वैरीसाल का 'भाषाभरण', रामसिंह का 'अलंकारदर्पण', चंदन का 'काव्याभरण', कलानिधि का 'अलंकार कलानिधि', देवकीनंदन का 'अवधूतभूषण', भान का 'नरेंद्रभूषण', बेनी का 'टिकैतराय-प्रकाश', भौन का 'शृंगाररत्नाकर', गुरुदीन का 'वाग्मनोहर', पद्माकर का 'पद्माभरण', रामसहायदास का 'वाणीभूषण', उत्तमचद भडारी का 'अलंकार-आशय', गदाधर-भट्ट का 'अलंकार चंद्रोदय' प्रतापसाहि का 'अलकार-चिंतामणि', लेखराज का गंगाभूषण', और लछिराम का 'राम-चद्रभूषण' आदि मुख्य हैं।

नायिका-भेद और अलंकार पर लिखे गए ग्रंथों की संख्या बहुत बड़ी है, और दशांग-काव्य पर लिखे हुए ग्रंथो की बहुत थोड़ी। दशाग-काव्य पर जो ग्रंथ लिखे गए हैं, उनमे चितामणि त्रिपाठी का 'कविकुल-कल्पतरु', श्रीपति का 'काव्य-सरोज', कुलपति का 'रस-रहस्य', भिखारीदास का 'काव्य निर्णय' और कुमारमणि का 'रसिक-रसाल' कविता तथा विवेचन शैली की दृष्टि से बहुत अच्छे है। इनमे कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' एवं भिखारीदास का 'काव्य-निर्णय' छप गया है।

दशांग-काव्य पर जो भी ग्रंथ लिखे गये हैं, उनमे किसी खास एक ही ग्रंथ का आश्रय नहीं लिया गया है। साधारणतया काव्य लक्षण, उसके विभेद, शब्दशक्ति का विषय, काव्य के गुण दोषादि का विचार काव्यप्रकाश के आधार पर लिखा गया है, रस-भाव-भेद का प्रकरण साहित्यदर्पण, दशरूपक आदि के आधार पर और अलंकार का प्रकरण चंद्रालोक, कुवलयानंद के आधार पर।

कुमारमणि के 'रसिक-रसाल' मे काव्य के लक्षण, प्रयोजन, गुण-दोष, शब्द-शक्ति आदि का विचार काव्यप्रकाश के मतानुसार दिया गया है, रस भेद, भाव-भेद, नायक नायिका-भेदादि साहित्यदर्पण दशरूपक के आधार पर, और अलंकार का विचार कुवलयानंद की शैली व आधार पर।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिंदी-साहित्य मे नाटक का शास्त्रीय रूप कभी प्रकट ही नहीं हुआ, और इसीलिये उनमे नाट्यशास्त्र के प्रकरण का प्राय अभाव ही रहा है। रसिक-रसाल मे भी इसीलिये इस प्रकरण का कोई अध्याय नहीं है। आधुनिक युग मे नाटक की तरफ अवश्य कुछ लेखको का ध्यान गया है, परंतु नाट्यशास्त्र पर अभी तक प्रामाणिक ग्रथों का प्राय अभाव ही है। प्रस्तुत ग्रथ रसिक-रसाल मे दश उल्लास हैं, और उनमे वर्णित विषय ये हैं—

१. त्रिविध काव्य-निरूपण

२. चतुर्विध व्यंग्यकथन ३ रसव्यंग्यनिरूपण ४. भावानुभावनिरूपण ५. आलंबन-उद्दीपननिरूपण	उत्तम काव्यनिरूपण
६. मध्यम काव्यनिरूपण	
७. चित्र-काव्यविचार ८. अर्थालंकारनिरूपण	चित्र-काव्यनिरूपण
९. काव्य-गुण-कथन	
१० काव्य-दोष	

प्रथम उल्लास—काव्य-निरूपण

इसमे काव्य के प्रयोजन, हेतु और भेद बताए गए हैं। लक्षण और उदाहरण काव्यप्रकाश मे दिये हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवाद ही है* यथा—काव्य का प्रयोजन बताते हुए लिखा है—

अर्थ धर्म जस कामना लहियतु मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित में ब्रह्मानंद सवाद॥

---

*प्रस्तुत रसिक-रसाल ग्रंथ काव्यप्रकाश का प्राय अनुवादरूप है ग्रंथकर्ता स्वय इस बात को अपने शब्दों में इस प्रकार लिखता है, जिस पर लेखक ने प्राय ध्यान देने का कष्ट नहीं उठाया है। और, इसीलिये स्थान स्थान पर इसका उल्लेख किया है—

"काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा में रचि हाल।
पंडित सुकवि कुमारमणि कीन्हौ रसिक-रसाल॥

—सपादक।

काव्यप्रकाश मे यही प्रयोजन इस प्रकार लिखा है—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

इन दोनो का विचार करने पर ज्ञात होगा कि काव्यप्रकाश के 'कान्ता सम्मिततया उपदेशयुजे' इस एक प्रयोजन को कुमारमणि ने छोड़ दिया है। काव्य का एक प्रयोजन यह भी निर्विवाद है कि वह मनुष्य को स्त्री की तरह मधुरालाप से उपदेश देता है। रसिकरसाल मे काव्य के इस प्रयोजन को स्थान न देकर एक बड़ी भारी कमी रख दी गई है।

इसके आगे ग्रंथ में काव्य की उत्पत्ति के साधन लिखे हैं। यथा—

शक्ति शास्त्र लौकिक सकल परवीनता समेत।
कवि शिक्षा अभ्यास भनि कवित उपज को हेत॥

इसी साधन को काव्यप्रकाश मे यों लिखा है—

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

यानी दोनो ग्रंथों मे जो तीन कारण काव्योत्पत्ति के दिए हुए हैं—१. शक्ति, २ लोक और शास्त्र के अनुशीलन से प्राप्त की हुई निपुणता और ३. काव्य-मर्मज्ञ पुरुषो की शिक्षा के अनुसार अभ्यास करना—वे एक से हैं।

फिर काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

उपजत अद्भुत वाक्य जो शब्द-अर्थ-रमनीय ।
सोई कहियतु कवित है सुकवि-कर्म कमनीय ॥

यह लक्षण साहित्यदर्पण और रसगंगाधर के लक्षणों को मिलाकर बनाया हुआ है। साहित्यदर्पण मे रसात्मक वाक्य को और रसगंगाधर मे रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा गया है।

आगे चलकर काव्य के भेद किए हैं, और इसमे भी काव्यप्रकाश का अनुकरण किया गया है। काव्य के तीन भेद किए हैं। यथा—१. ध्वनि, २ अगुरुव्यङ्ग्य गुणीभूतव्यङ्ग्य और ३ चित्र। यही तीन भेद काव्यप्रकाश मे भी किए गए हैं। इनके लक्षण भी काव्यप्रकाश में जो दिए गए हैं, वही रक्खे है, और उदाहरण भी काव्यप्रकाश मे उदाहरण स्वरूप दिए हुए पद्यों के अनुवाद है।

काव्यप्रकाश मे ध्वनि (उत्तम काव्य) का लक्षण यह दिया हुआ है—'इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्यध्वनिर्बुधै. कथित.।' इसी को रसिकरसाल मे यों दिया है—'वाच्य अरथ ते व्यंग जँह सुन्दर अधिक विशेष'।

काव्यप्रकाश मे इसी का उदाहरण 'नि शेषच्युतचन्दनम्' इत्यादि पद्य दिया है, और उसी का अनुवाद रसिक-रसाल में "खौर को राग छुट्यो" इत्यादि पद्य दिया है।

मध्यम काव्य (अगुरुव्यङ्ग्य) का लक्षण काव्यप्रकाश मे "अतादृशि गुणीभूतव्यङ्ग्यं व्यङ्ग्ये तु मध्यमम्" यह दिया

हुआ है, और इसी का अनुवाद "काव्य अरथ ते व्यंग जँह सुन्दर अधिक न लेष" रसिक रसाल में दिया हुआ है। इसका उदाहरण काव्यप्रकाश मे "ग्रामतरुणं तरुण्या" इत्यादि पद्य है, और रसिकरसाल मे इसी का अनुवाद "बैठी जहाँ गुरु नारि०" इत्यादि पद्य दिया है।

चित्रकाव्य का लक्षण रसिक-रसाल मे नहीं दिया है, परतु उसके जो दो भेद उदाहरण-रूप दिए हैं—शब्दचित्र और अर्थचित्र—उनमे काव्यप्रकाश का ही सिद्धान्त है।

द्वितीय उल्लास—चतुर्विध व्यंग्य कथन

काव्यप्रकाश के द्वितीय और तृतीय उल्लास मे शब्दार्थ-निरुपण और अर्थ-व्यजकता का निर्णय किया गया है। उसी विषय को सक्षप मे रसिक-रसाल के इस उल्लास मे कहा गया है। यथा—शब्द की तीन शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना, व्यग्य क अभिधामूलक और लक्षणामूलक ये दोनो भेद व इनके भी अवान्तर-भेद, आदि-आदि। इनके लक्षण-उदाहरणादि भी काव्यप्रकाश के आधार पर अथवा उसके अनुवाद है।

तृतीय-चतुर्थ-पंचम उल्लास—रसव्यंग, भावानुभाव और आलंबन-उदीपन-विभाव-निरूपण।

रसिक-रसाल के ये तीनो उल्लास अधिकार साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद के आधार पर लिखे हुए हैं। लक्षण और

उदाहरण भी साहित्यदर्पण मे दिए हुए लक्षण और उदाहरण के अनुवादमात्र से ही है। कहीं-कहीं काव्यप्रकाश का आधार भी लिया गया है।

प्रधान रूप से काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण दोनों ही मे आठ ही रस माने गए है यथा—शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र, करुण, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। काव्यप्रकाश मे "शान्तोऽपि नवमो रस" कहकर नवम 'शान्त' रस का, और साहित्यदर्पण मे किसी-किसी के मत के अनुसार दशवें रस 'वत्सल' का भी उल्लेख कर दिया गया है। इन्हीं दोनो के आश्रय से रसिक-रसाल मे ० रसो का विवेचन किया गया है।

षष्ठ उल्लास—मध्यम काव्य निरूपण

रसिक-रसाल के इस उल्लास में मध्यम काव्य (गुणीभूत-व्यंग्य) के वही आठ भेद दिए हुए हैं, जो काव्यप्रकाश व साहित्यदर्पण मे दिए हैं।

सप्तम उल्लास—चित्रकाव्य-निरूपण

इसमे शब्दालकार और रीति—गौड़ी, वैदर्भी, पाचाली आदि—का वैसा ही विचार किया गया है, जैसा कि काव्यप्रकाश साहित्यदर्पण मे है।

अष्टम उल्लास-अर्थालङ्कार

इसमे अर्थालंकारों का वर्णन है। अलंकारोंके नाम, सख्या, क्रम, लक्षण व उदाहरण की दृष्टि से यह उल्लास कुवलयानंद के आधार पर लिखा गया है। अलंकारों 'के लक्षण और

अवांतर भेद प्रायः वे ही दिए गए है, जो कुवलयानंद मे। कहीं उनका आशय लेकर परिवर्द्धित रूप मे भी उदाहरण दिए गए है।

कुवलयानंद मे लुप्तोपमा का यह उदाहरण दिया हुआ है—

तडिद्गौरीन्दुतुल्यास्या कर्पूरन्ती दृशो र्मम,
कान्त्या स्मरवधूयन्ती दृष्टा तन्वी रहो मया।
यत्तया मेलन तत्र लाभो मे यश्च तद्रतेः,
तदेतत्काकतालीयमवितर्कितसंभवम्।

वही रसिकरसाल मे इस प्रकार दिया हुआ है—

छन छवि भोरी गोरी विधु सो वदन,
तन, सोहत मदन तिय काति अभिराम है। इत्यादि

इसी प्रकार कुवलयानंद के उपमेयोपमा के लक्षण और उदाहरण का प्राय. अनुवाद रसिक-रसाल मे दिया गया है।

कुवलयानन्द के न्यूनताद्रूप्य रूपकालंकार के उदाहरण 'अचतुर्वदनो' का अनुवाद रसिक-रसाल में इस तरह दिया गया है—

एक सरूप सनातन हौ गुरु ग्यान सनातन न्यान बखानै।
तीसरे नैन बिना हरदेव हौ सेवक मोष विधायक मानै॥
द्वै भुज केसव के अवतार कुमार कहै गुरु हो पहिचानै।
एक ही आनन चारिहु वेद के गायक हौं कमलासन जानै॥

इसी प्रकार अन्य लक्षण और उदाहरण भी समान रूप से रसिक-रसाल मे मिलेगे।

नवम-दशम उल्लास—काव्य-गुण-दोष-विचार

रसिकरसाल के इस उल्लास मे काव्य के तीन गुण ओज, प्रसाद और माधुर्य और सोलह दोष (१. अतिकटु, २ च्युत-सस्कृत, ३ अप्रयुक्त, ४ असमर्थ, ५. निहतार्थ, ६ अनुचितार्थ, ७. निरर्थ ८. अवाच्य, ९. अश्लील, १० संदिग्ध, ११ अप्रतीत, १२ ग्राम्य, १३. नेयाथ, १४. संश्लिष्ट (क्लिष्ट), १५ अविमृष्ट-विधेयांश और १६ विरुद्धमतिकार) वे हीं है, जो काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण मे दिए हुए हैं।

च्युतसंस्कृत-दोष के विषय मे लिखा है कि यह दोष संस्कृत मे ही पाया जाता है। असल मे च्युतसंस्कृत दोष वहीं होता है, जहाँ कोई प्रयुक्त शब्द ऐसा हो, जो उस भाषा के व्याकरण के नियमो के प्रतिकूल प्रयुक्त हुआ हो, अथवा जिसका स्वरूप ऐसा हो, जो व्याकरण से सिद्ध न हो सके। हिंदी-भाषा का वस्तुत: उस समय कोई स्थिर रूप नहीं था, अतएव उसका कोई व्याकरण भी नहीं था और इसलिए इस दोष का निर्वाह इस भाषा मे न हो सका।

कुमारमणि की कविता

मिश्रबधुओं ने कुमारमणि को पद्माकर की श्रेणी मे रक्खा है। श्रेणी के लिहाज से किसी कवि की जॉच करना यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं है और न मिश्रबंधुओ की श्रेणी के औचित्यानौचित्य का विवेचन ही। परतु कविता के गुणों को देखते हुए यह निर्भीक होकर कहना पडेगा कि कुमारमणि की

कविता बहुत उच्च श्रेणी की है, और उसमे भाव-प्रौढता के साथ-साथ शब्दालकार और अर्थालंकार, दोनों ही का अच्छा और यथोचित सन्निवेश है। भाषा की दृष्टि से भी उसमे शब्दों की इतनी ताड़-मरोड़ नहीं है, जितनी अनुप्रासप्रियता के कारण पद्माकर ने की है। कुमारमणि की कविता मे जहाँ अनुप्रास का प्राधान्य है, वहाँ भी प्रसाद-गुण वर्तमान है और भाषा स्वच्छ है। उदाहरणो की कमी नहीं है, और रसिकरसाल मे वस्तुत. अनेक पद्य इस बात के साक्षी है कि कुमारमणि किस दर्जे के कवि थे। कुछ उदाहरण हम यहाँ दिए देते हैं, जिन्हे देखकर पाठक स्वयं इस कथन की सत्यता का अनुमान लगा सकते हैं*।

कृष्णाभिसारिका का उदाहरण—

नीलपट लपटी लपट ऐसी तन तैसी,
निपट सुहाई मृगमद खौर हेरिए।
नेकु उघरत अग छबि की तरंग बढ़ै,
घन संग जामिनी में दामिनी निवेरिए॥
'सुकवि कुमार' मार भूप की मसाल मानौ,
गई कुंज—जाल तहाँ छाई है अँधेरिए।
खोल मुखचद चदमुखी लखै जाही ओर,
ताही ओर जोर महताब-सी उजेरिए॥

---

* प्रस्तुत विषय म हम पाठको का ध्यान भूमिका के उस प्रकरण पर आकृष्ट करना चाहते हैं, जिसमें 'कुमारमणि और पद्माकर' की कविता के विषय पर कुछ लिखा गया है।—संपादक

सकल तारुण्या का उदाहरण—

नेह मद छाई चितवन चतुराई त्यों,
  कुमार सुकुमारताई मालती बिसारिए।
गति गरवाई खुलि छाई है गुराई गात,
  बातनि सरसताई सुधानिधि धारिए॥
प्यारी के निहार पानि पगनि इगनि लाली,
  कोकनद काँति त्यौं गुलाब वार डारिए।
आनन समान नाही होत याही दुख माँह,
  मुख माँह छाँह छबि-नाह के निहारिए॥

वत्सल-रस का उदाहरण —

बैन सुन्यो बन तैं हरि आए बने नट-वेष की भाँति गही है।
मात जसोमति द्वारहि दौरि गई सुत देखन कों उमही है॥
कान्हर को मुख चूमति घूमति लाइ हिए निधि मानौ लही है।
आँचर पोछति गोरज धूलि है फूल हिए सुख भूलि रही है॥

शांतरसानुभाव का उदाहरणः—

जनम गवायौ वादि जित तू सवाद विष,
  विषयन मदन विषाद हू अवाइगो।
कहत 'कुमार' सनसार है असार ताहि
  मानि सुखसार अघ औगुन हू छाइगौ॥
चंचल वचंक मन रंचक न जानौ कान्ह,
  भवपारावार बीच नीच तू समाइगो।

हरि-नाम-गुन को बिसारि धारि औगुन कों,
घरी - घरी बूड़त घरी - सी बूड़ जाइगौ ॥

वीभत्स-रस का उदाहरण.—

गरदा से परे मुरदानि के रदासे, तहाँ
लीन्हे अंक बैठ्यो सिरदार रक प्रेतु है।
लै-लै मुख कोरैं औरैं आवति निकट, दौरैं
दाँत काढ़ि आँत काढि कीन्हो हार हेतु है ॥
पीठ जघ अच्छुनि कपोलनि प्रमथ भच्छि,
आतुर छुधा सो रच्छु ह्वै रह्यो अचेतु है।
हाडनि हू चाखि डारै नाँखिन ही आँखिन ही,
मूँदि सग माँखिन ही मास भख लेतु है ॥

इस तरह के अधिकांश उदाहरण रसिक-रसाल मे यत्र-तत्र भरे पड़े हैं।

रसिक-रसाल की शैली

शैली की दृष्टि से कहा जा सकता है कि—कुमारमणि ने काव्यप्रकाश अथवा साहित्यदर्पण की शैली का अनुसरण किया है, और यही शैली विषय-निबंध की दृष्टि से परंपरागत भी है। रसिक-रसाल में पहले लक्षण दिया गया है, फिर उदाहरण। जहाँ विषय अथवा लक्षण को स्पष्ट करने की आवश्यता दिखलाई पड़ी है, वहाँ कवि ने वृत्ति (वार्ता) दे दी है। लक्षण और उदाहरण पद्य मे हैं तथा वार्ता गद्य मे। यही शैली तत्कालीन हिंदी के अन्य आचार्य कवियों ने भी बरती है। यथा—

मध्यम काव्य का उदाहरण—

लक्षण—

वाच्य अर्थ तें व्यंग जँह सुन्दर अधिक न लेख,
अगुरु व्यंग्य सो नाम कहि मध्यम काव्य विसेख।

उदाहरण—

बैठी जहाँ गुरु नारि समाज में,
गेह के काज में है बस प्यारी। इत्यादि।

वार्ता—

"इहाँ संकेत-स्थान कान्ह गए, हौं न गई, इहि व्यंग्य तें वाच्यार्थ सुन्दर है।"

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ मे अन्यत्र भी विषय का स्पष्टीकरण किया गया है। कही-कहीं हिंदी के लक्षण न कहकर संस्कृत के ग्रंथों के लक्षण ज्यो-के त्यो रख दिए गए हैं। जहाँ आठ सात्त्विक भाव बताए गए हैं, वहाँ रसमंजरी के "स्तंभः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः" आदि श्लोक का उद्धरण दे दिया गया है।

इसी प्रकार तैतीस व्यभिचारी भावों का निदर्शन कराते हुए काव्यप्रकाश का "निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथाऽसूया मदश्रमाः" इत्यादि श्लोक का उल्लेख कर दिया गया है *।

---

* मेरे ध्यान से विपय की स्पष्टता एवं प्रसिद्धि होने के कारण कवि ने उसके अनुवाद करने की आवश्यकता नहीं समझी है। सपादक

कुमारमणि का सिद्धान्त

यह ऊपर कह दिया गया है कि रसिकरसाल किसी खास सिद्धान्त को लेकर नहीं रचा गया है, और न हिंदी-भाषा के रीतिग्रंथों मे इस प्रकार के शास्त्रार्थ की गुंजाइश ही थी, क्योंकि जिस उद्देश्य को दृष्टिगत करके रीतिग्रथ लिखे गए हैं, वह बिलकुल भिन्न था। कवित्व-शक्ति-प्रदर्शन तथा रसिकता का परिचय देना उस समय के आश्रयदाताओं की रुचि के सर्वथा अनुकूल था, और जो गुण, शैली, शास्त्रार्थ, व्युत्पत्ति और सिद्धान्त-प्रतिपादन इत्यादि आचार्यत्व के परिपोषक गुण थे, उनकी आश्रयदाताओं के यहाँ प्रायः पूछ नहीं थी। समय का प्रभाव अवश्य पड़ता है, अतः तदनुसार हिंदी-कवियों ने आचार्यत्व का डंका संस्कृत-भाषा को लेकर बजाया, और अपने कवित्व तथा रसिकता का परिचय हिंदी-भाषा मे ही देकर आश्रय व उदरपूर्ति का साधन प्राप्त किया। यही कारण था कि—तत्कालीन हिंदी के कवियो ने संस्कृत-साहित्य के सिद्धातों को ज्यों-का-त्यो लेकर उन्हीं पर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय दिया। उस परिस्थिति मे इसकी गुंजाइश कहाँ थी कि—कोई कवि अपने सिद्धांत को लेकर उसकी विवेचना के लिये शास्त्रार्थ के झगड़े मे पड़ता। हिंदी-साहित्य के रीतिग्रंथ के लेखको ने—जिनकी गणना आचार्यों में की जाती है—वस्तुतः स्वतंत्र रूप से किसी सिद्धांत की स्थापना नहीं की है। यदि कहीं कुछ दिखाई पड़ता है, तो वह काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण

अथवा रसगंगाधर की झलक-मात्र है, जो यत्र-तत्र बिखरी हुई सी मिलती है।

रसिकरसाल में भी इसी प्रकार से स्वतंत्र रूप से किसी खास सिद्धांत का विवेचन नहीं है। काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण आदि के मत को हिंदी-भाषा मे समझाया गया है। संस्कृत-साहित्य में आचार्यों ने विशेषतया काव्य-लक्षण, तात्पर्यवृत्ति, रस-लक्षण, रसों की संख्या, रस का अनुभव अथवा चर्वणा कैसे होती है, एक अलंकार का दूसरे मे समावेश, उनमे से किसी एक के भेद का निराकरण, आदि विषयों पर बड़े प्रौढ और विशद शास्त्रार्थ किए है, और उनमे मौलिकता, वैज्ञानिकता एवं पाण्डित्य तथा सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। हिंदी-साहित्य में वैसे शास्त्रार्थ की झलक भी नहीं पाई जाती। फिर रसिकरसाल मे भी इस तरह के विवेचन की आशा रखना व्यर्थ है*।

रस के विषय मे कुमार-मणि ने जो—

"लौकिक और अलौकिकै द्वै जानहु रस-ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध अरु कवित नृत्य में और ॥"

---

* कुमारमणि का केवल उद्देश यही था कि—वह काव्यप्रकाश के शास्त्रार्थ को हिंदी भाषा-भाषियों के सम्मुख रखते। इसी कारण उन्होंने 'रसिक रसाल' की रचना की है। "काव्यप्रकाश विचार कछु भाषा मे रचि हाल" आदि दोहा इसी अर्थ का स्पष्टीकरण करता है। अत कवि काव्यप्रकाश के अतिरिक्त अन्य किसी स्वतंत्र सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में स्वतन्त्र नहीं था। संपादक

आदि जो ४-५ दोहे लिखे हैं, वे भी स्वतन्त्र न होकर संस्कृत के सिद्धांतो की छाया हैं। पिछले दो दोहों में शृंगार-रस की उत्तमता स्थापित की गई है, और नायक-नायिकाओ के भेद-प्रभेद, उनके विलासादि, आलम्बन-उद्दीपन-विभावादि, अनुभव, संचारी आदि का जो आगे रसिकरसाल में वर्णन किया गया है, उसकी पुष्टि इस विचार से की गई है कि—पाठक उसमें निरी रसिकता ही न देखें, बल्कि उसको उस श्रद्धा से देखें, जिससे श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाएँ देखी जाती हैं।

संस्कृत-साहित्य मे भरत मुनि के काल से लेकर जगन्नाथ पडितराज के समय तक इन साहित्यिक सिद्धान्तों का इतना सूक्ष्म व विस्तृत विवेचन हो गया है कि—न तो कोई युक्ति, सिद्धान्त अथवा मत ही बाकी बचा है, और न नये अन्वेषण अथवा बारीकियाँ निकालने की कोई गुंजाइश ही रह गई है। ऐसी स्थिति म अपेक्षाकृत बहुत ही कम पनपे हुए हिंदी-साहित्य के आचार्यों अथवा कवियो से यह आशा रखना कि वे अपना ही राग गा निकलेंगे, और उसको श्रद्धा के साथ सुननेवाले विद्वान् मौजूद रहेंगे, दुराशा-मात्र ही है।

हिंदी-साहित्य में रीति-शास्त्र के अन्य आचार्य और कुमारमणि

खेद का विषय है कि जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य के प्रमुख आचार्यों के ग्रंथ मुद्रित हो जाने से सुलभ हो गये हैं,

उसी प्रकार हिंदी-साहित्य के आचार्यों के ग्रन्थ अद्यावधि सुलभ नहीं हुए है। प्रथम तो बहुत-से छपे ही नहीं हैं, और यदि कुछ छप भी गये हैं, तो वे इतने दुष्प्राप्य हैं कि सर्व-साधारण तक उनकी पहुॅच नहीं हैं। कुछ प्राप्य भी हैं, तो वे एकाङ्गी हैं और उनसे एक आचार्य की दूसरे आचार्य से उत्तमता या हीनता की विवेचना नहीं की जा सकती। बहुत-से जो छपे हैं, वे या तो अलंकार पर हैं या नायिका-भेद पर।

प्रारंभ मे उन आचार्यों का नाम बतला दिया गया है, जिनके ग्रंथ उत्तम कोटि के हैं, और जिन्होने काव्य के सब अंगों पर कुछ न कुछ लिखा है, परंतु वे ग्रंथ प्रेस तक नहीं पहुँच सके हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उत्साही और साहित्य-"प्रेमी सज्जन उनके छपवाने का बीड़ा उठावें। उक्त ग्रंथों के आधुनिक शैली से मुद्रित और प्रकाशित होने पर हिंदी-काव्य साहित्य का बड़ा उपकार होगा।

हिन्दी साहित्य के पारखी भिखारीदास को उच्च श्रेणी का आचार्य समझते है, परतु यह बात कहॉ तक उचित एवं दृढ है, इस विषय मे यहाँ एक-दो शब्द लिख देना अनुचित न होगा।

वास्तव मे हिन्दी-साहित्य के रीति-शास्त्र तथा संस्कृत-साहित्य के रीति-शास्त्र मे कोई भेद नहीं है। भाव, सिद्धान्त, परिभाषा, उदाहरण आदि सारी बाते वही है, जो सस्कृत-ग्रंथों में हैं, केवल भाषा ही नाम मात्र की हिन्दी है। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य मे आचार्य-पद उन्हीं को प्राप्त हुआ है, जिन्होंने

संस्कृत के रीति-शास्त्र के विषय को उसमे लिख दिया है। हिन्दी-साहित्य-ग्रंथों में इस नकल को जितनी पूरी मात्रा में दिखाया गया है, समालोचकों ने उसी हिसाब से उस आचार्य की गुरुता और लघुता का परिमाण निकाल लिया है। ऐसी स्थिति मे हिन्दी के इन आचार्यों के काम की ठीक परख वही कर सकता है, जिसे संस्कृत के अलंकार-शास्त्र का पूरा ज्ञान हो। खेद का विषय है, आजकल हमारे हिन्दी-साहित्य के बहुत-से समालोचको की समालोचनाओ मे कई त्रुटियाँ ऐसी दिखाई पड़ती हैं, जिनसे तुरन्त ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि उनको संस्कृत-साहित्य का ज्ञान कितना है।

संस्कृत-साहित्य मे 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' इस विषय के अच्छे एवं प्रामाणिक ग्रंथ हैं, और उन्हीं के आधार पर हमारे हिन्दी-साहित्य के आचार्यों ने ग्रंथ लिखे हैं।

भिखारीदास का काव्यनिर्णय और कुमारमणि का रसिक-रसाल अधिकतर काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के आधार पर ही लिखे गये हैं। परन्तु विषय-प्रतिपादन करने मे और परिभाषा के उल्लेख करने मे, दोनों मे बड़ा अन्तर है। रसिक-रसाल में संस्कृत-साहित्य के इन ग्रन्थों का विषय करीब-करीब ठीक ही दिया गया है, परन्तु काव्यनिर्णय मे बड़ी कमी है। काव्यनिर्णय मे बहुत-से स्थान ऐसे मिलेंगे, जहाँ लक्षण अथवा परिभाषा अपूर्ण हैं अथवा अशुद्ध किंवा भ्रामक हैं।

इस छोटी-सी भूमिका मे उन सबका दिग्दर्शन कराना असंभव है तो भी निम्नलिखित दो-चार उदाहरणों से पाठक समझ सकते हैं कि हमारी धारणा कहाँ तक सत्य है।

पहले लीजिए लक्षणा की परिभाषा। दासजी लिखते हैं—

"मुख्य अर्थ को बाध सो शब्द लाक्षणिक होत।
रूढि अप्रयोजनवती द्वै लक्षणा उदोत॥"

इसके पहले चरण मे लक्षण है और दूसरे मे भेद। पहले चरण पर यदि विचार किया जाय, तो फौरन् मालूम होगा कि इसमे न तो लक्षणा का ही कोई लक्षण दिया है और न लाक्षणिक शब्द का ही। फिर "मुख्य अर्थ को बाध" इतना कह देने से लक्षणा का लक्षण नहीं बन सकता। लक्षणा की भुक्ति के लिये तीन बातो की आवश्यकता होती है। यथा—१. मुख्य अर्थ का बाध, २. मुख्य अर्थ से निकट संबंध, ३. रूढि अथवा प्रयोजन, इन तीनों ही बातों की पूरी आवश्यकता होती है, और इसीलिए संस्कृत साहित्य के प्रत्येक प्रमुख ग्रन्थ मे इन्हीं तीनों का वर्णन है। लक्षणा मे मुख्य अर्थ का बाध तो पहली चीज़ अवश्य है, परंतु यदि मुख्य अर्थ से संबंध रखनेवाला अर्थ अभिप्रेत न होवे, तो फिर व्यंजना का निराकरण नहीं हो सकता, और फिर इस लक्षण मे अतिव्याप्ति का दोष आ जायगा।

इसके मुकाबिले मे रसिकरसाल का उदाहरण लीजिए। उसमे लक्षणा का लक्षण इस तरह दिया हुआ है—

"मुख्य अर्थ संबंध ही मुख्य अर्थ को बाध ।
रूढ़ि पाइ वा काज लहि लच्यारथ को साध ॥"

स्पष्टतया यह मालूम हो जायगा कि दोनो लक्षणो मे कौन-सा लक्षण ठीक है ।

'काव्यनिर्णय' मे भाव का लक्षण यह दिया है—

"बालक मुनि महिपाल अरु देव बिषौरति भाव ।"

संस्कृत-साहित्य से परिचय रखनेवाले जानते हैं कि भाव का यह लक्षण अपूर्ण है, क्योकि भाव का ठीक लक्षण यह है कि देवता, मुनि, राजा आदि के प्रति रति अथवा व्यञ्जित व्यभिचारी भाव भाव की श्रेणी को पहुँचते हैं। इसी सिद्धांत को लिए हुए काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के लक्षण हैं । यथा—

"रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः ।"
भाव प्रोक्तः .... ॥ काव्यप्रकाश

"संचारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः ।
उद्‌बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥" साहित्यदर्पण

रसिकरसाल का भाव का लक्षण व उदाहरण मिश्रित है, परंतु वह काव्यनिर्णय की अपेक्षा कहीं अच्छा है । यथा—

"लौकिन सो हिय परसपर, बधुविरह नृप मीति ।
गुरु दैवत हरिभक्ति में, भनत भाव रसरीति ॥" इत्यादि

फिर लीजिए 'काव्यनिर्णय' के उपादान लक्षणा को । इसका लक्षण और उदाहरण भी गड़बड़ाध्याय है ।

इसी तरह और भी कई उदाहरण दिए जा सकते है। काव्यनिर्णय के किसी अच्छे सटीक संस्करण में इन त्रुटियों का पूरा विवेचन किया जा सकता है, स्थानाभाव के कारण यहाँ ऐसा नहीं किया जा सकता ।

एक बात यहाँ खास तौर पर कह दी जाती है। विश्व-विद्यालय तथा अन्य शिक्षा-संस्थाओं मे पाठ्यक्रम मे और ऊँची परीक्षाओ मे काव्यनिर्णय पाठ्यपुस्तक रक्खी जाती है ; उद्देश्य यही होता है कि विद्यार्थी को साहित्य-शास्त्र का इससे कुछ ज्ञान हो जावे। परंतु 'काव्यनिर्णय' की त्रुटियो को देखते हुए ऐसा होना बड़ा कठिन है।

हिन्दी का समस्त साहित्य-शास्त्र अथवा रीतिशास्त्र संस्कृत के एतद्विषयक शास्त्र की बिलकुल नकल ही है, और इस नकल के लिहाज से, हमारी समझ में, काव्यनिर्णय का स्थान बहुत नीचे है। बहुत से और भी कई ग्रंथ है, जिनमे इस विषय का अच्छा, युक्तियुक्त विवेचन किया गया है इसलिये उनमें से किसी एक को पाठ्यक्रम के लिये चुना जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थियों को इस शास्त्र का वास्तविक ज्ञान हो सके । विद्या-प्रेमी और विद्या हितैषी लोगों को तद्विषयक ग्रंथों के प्रकाशनार्थ जरूर प्रयत्न करना चाहिए। संस्कृत-साहित्य के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण को पढ़ लेने पर इस शास्त्र का काफ़ी अच्छा ज्ञान हो सकता है, और उच्च परी-क्षाओं में इन्हीं दो ग्रंथों का मान है, परंतु हिंदी-साहित्य में

ऐसे कोई दो ग्रंथ अभी तक दुनिया के सामने नहीं आये हैं, जिनको पढकर हमें इस विषय का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सके। कहा जाता है कि सोमनाथ ने समग्र काव्यप्रकाश का अच्छा अनुवाद किया था। और भी कई कवियो ने काव्य-प्रकाश के अनुवाद किए हैं। रसिकरसाल भी इस विषय का वस्तुतः एक उत्तम ग्रंथ है, और इससे भी विद्यार्थियों के इस विषय की कमी पूरी हो सकती है। आशा है, हिंदी-साहित्य के हितैषी लोग 'रसिकरसाल' का उचित आदर करेंगे* ।"

---

* मेरे उक्त मित्र का प्रस्तुत लेख यहाँ समाप्त होता है। सम्पादक।

रसिकरसाल का प्रकाशन

सी कवि ने ठीक कहा है—"समय एव करोति बलाबलं।" बस यही उक्ति प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन मे चरितार्थ होती है।

आज से १४ वष पूर्व जब मैं अपना विद्यार्थि-जीवन समाप्त कर वृत्त्यर्थ बबई जाकर रहा (सं० १९८० की बात है), मेरे हृदय में स्वकीय पूर्वपुरुष 'कुमारमणि' कवि के प्रस्तुत ग्रंथ के मुद्रण कराने की अभिलाषा जागरूक हुई। हिंदीसाहित्यसम्मेलन की 'विशारद' परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाने के कारण हिंदी-साहित्य के प्रति रुचि होना स्वाभाविक ही था, इधर जातीय उन्नति का जोश हिलोरें ल रहा था। फलतः दोनों के सम्मिश्रण ने 'रसिकरसाल' के प्रकाशनार्थ उत्साह उत्पन्न कर दिया। लेखनी लेकर बैठा, तो दो मास के भीतर ही ग्रंथ की प्रेस-कापी तैयार कर ली। उसे सब प्रकार की सामग्री से सुसज्जित कर किसी संस्था की प्रतीक्षा करने लगा, जो इसे प्रकाशित कर मेरे उत्साह को द्विगुणित कर दे।

नागरी-प्रचारिणी सभा काशी से तदर्थ पत्र व्यवहार किया

गया, और उसे देखने के लिये ग्रंथ की प्रतिलिपि भेज दी गई। आशा थी कि ग्रंथ अब प्रकाशित हुए बिना न लौटेगा। पर.. कुछ दिनो बाद उत्तर मिला—"अभी हमारे पास कार्य अधिक है। हम छापने को विवश हैं।" मेरा विचार था कि यह ग्रंथ नागरी-प्रचारिणी सभा को दे दूँ, यदि वह इसे प्रकाशित कर दे,.पर मेरा मनोरथ मेरे पास ही रह गया। क्या किया जा सकता था? उसके पास भी तो विशाल अप्रकाशित हिंदी-साहित्य प्रकाशित करने को पड़ा हुआ है?

इधर से निराश होकर मैंने उक्त ग्रन्थ हिंदी-साहित्य सम्मेलन के पास भेजा। वहाँ से वह निरीक्षणार्थ पं० पद्मसिंह शर्माजी के पास भेजा गया। कुछ दिनों लिखा-पढ़ी की दौड़धूप करने पर शर्माजी के अभिप्राय के साथ साहित्यसम्मेलन का भी उत्तर मिल गया। सम्मेलन के सामने हिंदी-प्रचार और परीक्षा-प्रचार का कार्य था। हाँ, पद्मसिंह शर्माजी के अभिप्राय से मुझे ग्रंथ की मौलिकता, उपादेयता तथाच प्रकाशन की आवश्यकता के प्रति और भी अधिक विश्वास बढ़ गया। उनके पत्र से ग्रंथ की शैली किस प्रकार रखनी चाहिये, यह विदित हो गया। उन्होने लिखा था कि "कवि का अभिप्राय उन्हीं के शब्दों में प्रकट कर देना चाहिए।" बात यह हुई थी कि—रसिकरसाल की वर्तमानकालिक उपयोगिता हो जाने के लिये मैंने उसमे यत्र-तत्र आनेवाले गद्यांश को 'खड़ी बोली' का रूप दे दिया था, जो मुझे अब ज्ञात हुआ है कि वह मेरी

अनधिकार चेष्टा थी। दुर्भाग्य है कि आज वह पत्र मेरे पास उपलब्ध नहीं हाता। अस्तु।

उक्त अभिप्राय और दोनों ओर से 'टका सा' जवाब मिल जाने पर मैंने निश्चय किया कि अभी न तो ग्रंथ के प्रकाशन का ही समय आया है और न कवि की प्रसिद्धि का ही। अत जब कवि के 'भाग्योदय' होगें, सब प्रकार का प्रबंध स्वतः हो जायगा।

जिस समय मैंने 'मिश्रबंधु-विनोद' पढा, मुझे 'कुमारमणि' का संशोधित परिचय उसके द्वितीय सस्करण मे भेजना पड़ा। उस समय उसमे मिश्रबंधुओ ने ग्रथ के लिये अपना अच्छा अभिप्राय व्यक्त किया था। मैंने 'कुमारमणि' के विशेष चरित्र के परिज्ञानार्थ उनकी लिखित तथा स्वकोय हस्तलिखित-पुस्तकालय की पुस्तको का परिशीलन कर यत्र-तत्र से ऐतिहासिक सामग्री संकलित की, जिसके फल-स्वरूप पाठकों की सेवा मे कवि की जीवनी दी जा सको है। इसके बाद 'रसिकरसाल' की प्रेस-कापी मेरे उत्साह के साथ एक बस्ते में बंद, मुख छिपाये गत १३ वर्षों तक पड़ी रही।

काल-चक्र ने कहिये अथवा मेरे भाग्य ने कहिये, मुझे कांकरोली-नरेश गो० श्री१०८ श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज के अध्यापन-कार्य पर नियुक्त किया, आज उस कार्य को करते मुझे उतना ही समय व्यतीत हुआ है।

स्वनाम-धन्य उक्त महानुभाव एक योग्य धर्माचार्य, विद्वान्,

तथा साहित्य-विद्या-कला-प्रेमी नवयुवक हैं। आपकी विद्याभि-रुचि, उत्साह, उदारता तथाच कार्य-तत्परता से ही कांकरोली-जैसे स्थान मे विद्या को विकसित होने का सद्भाग्य अधिगत हुआ है।

आपके उदार आश्रय मे सं० १९८५ मे विद्याविभाग की स्थापना हुई, और उसके अंतर्गत अन्य संस्थाओ को उद्भवित होने का अवकाश मिला, जिनमे से 'श्रीद्वारकेश कवि मण्डल' भी एक है।

द्वारकेश कवि मण्डल के द्वारा सं० ८९-९० की समस्या-पूर्तियों का संग्रह 'कविता-कुसुमाकर' नाम से दो भागों मे प्रकाशित हुआ, जिसमे कुछ नवीन कवियों की संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं की सुललित कृतियो का समावेश था। कहना होगा कि हमारे कथित प्रयत्न का साहित्यिकों ने सराहा, और हमे पूज्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का भी शुभ अभिप्राय उक्त ग्रथ पर प्राप्त हुआ।

किन्हीं मित्रो के परामर्शानुसार हमे यह अनुभव हुआ कि समस्या-पूर्तियो से साहित्य की ठोस सेवा नहीं होती, उसके लिये प्राचीन साहित्य-ग्रन्थों का प्रकाशन होना चाहिए, जो लुप्त होते जाते है, । जिसका कारण उनकी अप्रकाशित अवस्था है। प्राचीनता के प्रति प्रतिदिन जागरूक होनेवाली लोकाभि-रुचि के प्रदर्शन ने भी हमारे इस अनुभव को दृढ किया, और हमारे सम्मुख किसी प्राचीन साहित्य-ग्रंथ के प्रकाशन की कल्पना मूर्तिमती होने लगी।

इधर विद्याविभाग की दशाब्दी-महोत्सव (इस वर्ष) करने का विचार स० १९९३ के फाल्गुन मास मे हुआ। साहित्य के नाते विद्याविभाग द्वारा कोई साहित्यिक ग्रंथ का उपहार साहित्यज्ञ व्यक्तियो की सेवा में उपस्थित करना आवश्यक समझा गया। विद्या-समिति के विचार-विनिमय होने पर 'रसिकरसाल' के सौभाग्य का उदय हुआ, और इसे साहित्य-जगत् के समक्ष उपस्थापित करने का शुभ अवसर आया।

विद्याविभागाध्यक्ष गो० श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन की आज्ञा प्रदान की, और यह 'श्री-द्वारकेश कवि-मण्डल' के साहित्यिक कार्य-रूप मे, विद्या-विभाग द्वारा, प्रकाशित किया जा रहा है।

रसिकरसाल की प्रेस-कापी एक ऐसी कापी से तैयार की गई थी, जो स्वयं अशुद्ध एवं यत्र-तत्र असम्बद्ध एवं भ्रामक थी। सौभाग्य से प्रेस मे छपने को देने के बाद हमे रसिकरसाल की एक शुद्ध प्राचीन (संभवतः कवि के समय की) पुस्तक मिली *, जिसने हमारी असुविधाओ को निवृत्त कर दिया। इस पुन संशोधन ने यद्यपि हमे और प्रेस, दोनो को कुछ अव्यवस्था में डाल दिया था, पर ग्रंथ की संशुद्धि के ऊपर उसे निछावर कर दिया गया।

'रसिकरसाल' के भाषा-संशोधन के विषय मे एक

* इस पुस्तक के आदि अन्त के दो पत्र नहीं मिले।

कठिनाई हमारे सामने आई, जिसका सुधार तब तक नहीं हो सकता, जब तक व्रजभाषा के शब्दों का कोई निश्चित रूप निर्धारित न कर दिया जावे। उदाहरणार्थ—ज्यों, त्यों, लिये, दियो, तें, लें, इत्यादिक शब्दो का द्वितीय रूप 'ज्यौ, त्यौ, लिए दियौ हौ, तै, लै' भो साहित्य मे चल रहा है। इधर 'व' और 'ब' का, 'स' और 'श' का परस्पर परिवर्तन भी बड़ी गड़बड़ी मचाता है। यदि व्रजभाषा के चालू नियमानुसार 'व' को 'ब' बना दिया जावे तो 'वन के' और 'बन के' दो पृथक्-पृथक् अर्थ एक ही रूप को धारण कर लेते हैं—इसी प्रकार 'शंकर' को 'संकर' का रूप दे देने पर जो अर्थ-वैचित्र्य हो जाता है, यह भी ध्यान देने योग्य है। फिर इस आपत्ति से बचने के लिये यदि 'शंकर' शंकर ही रक्खा जाय, तो फिर 'शेष' को 'सेष' अथवा 'सेस' क्यों बनाया जाय ? इसी प्रकार बहुवचन का द्योतक 'न' जो शब्दों के अंत मे आता है, पृथक् हो जाने पर निषेधार्थ का परिचायक हो जाता है। उदाहरण लीजिये—'फूलत रसालन बिसाल धरै सौरभ कों', 'हासन बिलासन की भाँति-भाँति दौर है' यद्यपि प्राचीन पुस्तक मे कई स्थलों पर ऐसे स्थल मे 'रसालनि' 'हासनि' 'बिलासनि' इस प्रकार रूप पाया जाता है, फिर भी यह सार्वत्रिक नियम नहीं है। अतएव कहना पड़ता है कि—भाषाशास्त्रियो के द्वारा जब तक इस प्रकार के शब्दों का कोई रूप निर्धारित न हो तब तक प्राचीन-ग्रंथ-प्रकाशकों की एक प्रकार से अपकीर्ति ही है। और

ऐसा होने पर मनचले समालोचको को 'चढ़ी कौ-कौ' करने का अच्छा मसाला मिल जाता है। अस्तु।

प्रस्तुत ग्रथ मे, हमसे जहाँ तक बन सका है, शब्द-संशोधन, भाषा और प्रकार तथा सजावट का प्रयत्न किया गया है। फिर भी यत्र-तत्र त्रुटियों के लिये प्रकाशक के अतिरिक्त और कौन उत्तरदायी माना जा सकता है? और वह सिवा क्षमा-याचना के और कहाँ तक अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है? हम भी तदर्थ उसी कर्तव्य का अनुसरण किये लेते है।

अपना वक्तव्य समाप्त करने के पूर्व हम सामयिक प्रवाहानुसार अपने उन पूज्य महानुभाव तथा मित्रों के उपकारज्ञ हो जाना चाहते है, जिन्होंने हमारे प्रस्तुत कार्य में यथाशक्य साहाय्य प्रदान किया है।

१. स्व० पं० श्रीकृष्ण शास्त्रीजी तैलंग—हेड पंडित हाईस्कूल रायपुर (सी० पी०)। आप ही के प्रोत्साहन तथा प्रतिलिपि से इस ग्रंथ के प्रकाशन का आयोजन हुआ है।

२ पं० पीताम्बरजी नेत कविभूषण, राज्यकवि, ओड़छा-स्टेट, टीकमगढ़। आपके पास के ग्रंथ से हमे रसिकरसाल के संशोधन मे बहुत कुछ सौकर्य हुआ है।

३. पं० आशुकरणजी गोस्वामी एम्० ए० (३) श्रीगंगानगर (बीकानेर)। आपने आवश्यक ग्रन्थ का परिचय और वक्तव्य लिखकर हमें विशेष अनुगृहीत किया है। आपक उक्त लेख इसके पूर्व ही सम्मिलित रूप मे प्रकाशित हुआ है।

४. श्रीयुत नारायणलाल वर्मा 'नरेन्द्र' कांकरोली।

५. श्रीपं० लक्ष्मीनारायण साहित्यशास्त्री, कांकरोली। उक्त दोनो महानुभावो ने प्रूफ संशोधन, लेखन आदि मे हमारा हाथ बटाया है।

६. 'संचालक गंगा-ग्रंथागार लखनऊ' जिनके सौजन्य एवं तत्त्वावधान से हम प्रस्तुत ग्रंथ को बड़ी सहूलियत और सुन्दरता के साथ प्रकाशित कर सके हैं। अस्तु।

ग्रंथ के प्रचार के लिये कहना हम उतना ही अनावश्यक समझते हैं, जितना 'कस्तूरी की सुगंधि के लिये शपथ लेना'। ग्रंथ जिस प्रकार का है, जैसा है, और जितना है, सहृदय साहित्यज्ञ सुधियो एवं सत्समालोचकों के सम्मुख सादर समर्पित है। राष्ट्र-भाषा हिंदी की प्राचीन, अप्रकाशित, अमूल्य सम्पत्ति होने के कारण उसके उचित आदर करने का भार साहित्यिक संस्थाओ पर ही है। इस विषय मे हम विशेषतया नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग आदि संस्थाओं का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। यदि ये मान्य संस्थाएँ उचित उत्साह-प्रदर्शक, अभिप्राय-प्रदान, परीक्षा पाठ्य-ग्रंथ-निर्वाचन एवंच अन्य प्रकार के प्रचार द्वारा हमे केवल उत्साह ही प्रदान करने की कृपा करेंगी, तो हम पुनः प्रस्तुत ग्रंथ का सस्ता, सुंदर, सुबोध संस्करण प्रकाशित करेंगे, और इसके साथ अन्य ऐसे साहित्य-ग्रंथों के प्रकाशन का उपक्रम करेंगे, जो प्राचीन

होने के कारण अभी तक अज्ञात एवंच अनुपलब्धप्राय हैं *। सम्प्रति हमारे सामने एक ही उद्देश्य था, और वह था 'कवि कुमारमणि और उनके ग्रंथ को किसी प्रकार साहित्य संसार के समक्ष लाने का।' इसमे कहाँ तक सफलता मिली है, यह या तो दयामय श्रीहरि ही जानते हैं, या जानेंगे सहृदय सज्जन, जो साहित्य-सुधा के प्यासे हैं।

ॐ शान्तिः शान्ति शन्ति ।

कांकरोली
चै० शु० १ सं० १९९४

विधेय—
पो० कण्ठमणि शास्त्री, विशारद
का० वे० शा० शु० म०

---

* विद्याविभाग के दशाब्दी-महोत्सव का आयोजन हो जाने पर (सं० १९९४ के कार्त्तिक मास के आसपास) ऐसे ग्रथों का कांकरोली में एक प्रदर्शनी की जायगी, जो वहाँ के विद्याविभागान्तर्गत 'श्रीसरस्वती-भण्डार' में सुरक्षित हैं। इसकी विशाल सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।—संपादक

ग्रन्थ-प्रकाशन

पोतकूचि, आन्ध्र विप्रकुल - तिलकायमान ,
जिनकी सुशाखा शाकल, वेद ऋक जान्यौ है ,
प्रवर प्रसिद्ध पंच, गोत्र वत्स शील बुध—
भट्ट 'हरिवल्लभाभिधेय' पहिचान्यौ है ।
तनुज तदीय 'गढाहरा'* निवासी विज्ञ ,
पण्डित 'कुमारमणि' भूप - सनमान्यौ है ;
उनको विशाल हाल कीर्तिमय काव्य-कर्म ,
'रसिकरसाल' ये प्रकाश मध्य आन्यौ है ।

बालकृष्ण† चरणानुचर
तद्वंशज, बुध - दास ,
कियो कण्ठमणि ग्रथ को
मुद्रण, मजु प्रकाश ।
वेद भक्ति-युग चंद्र (१९९४) मित
सवत मधुर वसत ,
मुद्रित 'रसिक-रसाल' लखि
विलसतु सुहृद् व सत ।

विधेय—

कांकरोली
वैशाख शुक्ल १५
सं० १९९४

पो० कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद'
'देशिकेन्द्र'

---

* 'गढाहरा' ग्राम सागर जिला

† पितृचरण प० बालकृष्ण शास्त्रीजा दतिया नरेश-राजगुरु

कवि कुमारमणि शास्त्री का वश

——:※:——

मुख्य पूर्व पुरुष—

१ माधव पण्डितराज, २ रुद्रण, ३ बलभद्र, ४ मधुसूदन कविपण्डित

—— * ——

पं० रुद्रणाचार्य
- पं० चतुर्भुज शा०
  - पं० हरिवंश शा०
    - १ पं० वेदमणि शा०
    - २ पं० कण्ठमणि शा०
      - पं० हरिवल्लभ शा०
        - १ ※ पं० कुमारमणि शा०
          - पं० भोजराज शा० (हरिजन)
            - पं० नारायण शा०
              - पं० बिहारीलाल शा०
                - १ पं० मुकुन्द शा०
                  - १ पं० बालकृष्ण शा०
                    - † पं० कण्ठमणि शा०
                  - २ पं० श्रीकृष्ण शा०
                    - पं० गोपालकृष्ण
                  - ३ पं० हरिकृष्ण शा०
                    - पं० हृषीकेश शा०
                  - ४ पं० उपेन्द्र शा०
                    - पं० पुरुषोत्तम शा०
                    - पं० दामोदर शा०
                - २ पं० नारायण शा०
                - ३ पं० यदुनाथ शा०
                - ४ पं० श्रीनिवास शा०
          - पं० कृष्णदेव
        - २ पं० वासुदेव शा०
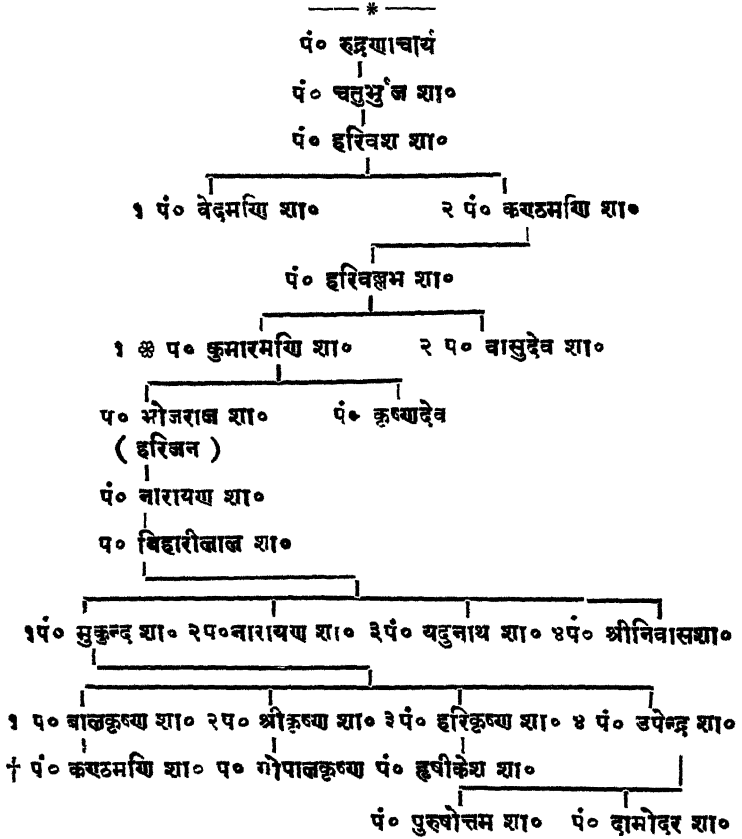
※ रसिकरसाल ग्रन्थकर्ता

† रामिकरमाल ग्रन्थसम्पादक

रसिकरसाल-विषयानुक्रमणिका

—:०:—

विषय	पत्र-संख्या
१. प्रथम उल्लास	१ से ५
मंगलाचरण—	१
काव्यप्रयोजन—	२
काव्योत्पत्तिहेतु—	,,
काव्यध्वनि—	३
मध्यम काव्य—	,,
चित्र काव्य—	४
अर्थ चित्र—	,,

विषय	पत्र-संख्या
२. द्वितीय उल्लास	६ से १६
उत्तम काव्य-भेद—	६
वृत्ति-विचार—	,,
वाच्यार्थ—	७
अनेकार्थ में वाच्यार्थ का निर्णय—	,,
लक्ष्यार्थ—	८
पंचविध व्यंग्यार्थ में	
शक्ति मूल वस्तुव्यंग्य—	६
शक्तिभवव्यंग्यप्रकार—	६
(१) शब्दशक्तिभवव्यंग्य—	१०
(२) अर्थशक्तिभवव्यंग्य	,,
(३) उभय शक्तिभव व्यंग्य	,,
शक्तिभव अलंकृतिव्यंग्य—	११
लक्षणामूल व्यंग्य—	,,
१ अर्थान्तर संक्रमित व्यंग्य	,,
२ अत्यन्ततिरस्कृत व्यंग्य—	१२
व्यंग्य के प्रकटता के हेतु—	,,
(१) वक्तृविशेष से—	,,
(२) श्रोतृविशेष से—	१३
(३) काकु से—	,,
(४) अर्थविशेष से	१४
(५) अन्य सामीप्य से—	,,
(६) प्रकरण से—	,,
(७) चेष्टादि से—	१५

इति विषयानुक्रमणिका

श्रीहरिः

प्रथम उल्लास

——.०——

मङ्गलाचरण

कवित्त

गोपिन को मीत, सुर - नर - नाग - गीत,
गुन - गननि प्रतीत, पीतपट कटि धारे है,
मंजुल मुकुट, कंध कामरी, लकुट कर,
वन भटकत, नट - वेष को सु धारे है।
बच्छन को चारक, उचारक निगम को,
"कुमार" परिचारक के काजहि सम्हारे है,
एकै मतिधारी लोक - वेद - निरधारी न्यान,
गिरिवरधारी, कान्ह ठाकुर हमारे है॥ १॥

सवैया

नन्दकमार "कुमार" सनातन, हौ भवसातन ज्ञान बिसेखे।
ईछत रावरी सेवा सरूप परीछत कै कै परीछन पेखे।
पूरन ब्रह्म परै पर तै परमानँद हौ, परमानँद देखे।
ज्यौ सविता सब तारन मे अवतारन मे अवतार यौ लेखे॥ २॥

दोहा

सुरगुरु - सम मण्डन - तनय, बुध जयगोविंद ध्याइ।
कवित - रीति, गुरु - पद परसि अरु पुरुषोतम पाइ ॥ ३ ॥
काव्यप्रकाश - विचार कछु रचि भाषा मे हाल।
पण्डित सुकवि "कुमारमनि" कीन्हौ "रसिकरसाल" ॥ ४ ॥

काव्य-प्रयोजन

दोहा

अर्थ - धर्म - जस - कामना लहियतु, मिटत विषाद।
सहृदय पावत कवित मे ब्रह्मानन्द सवाद ॥ ५ ॥
तातै कविता - ज्ञान मे कीजे जतन विवेक।
न्यारौ वेद - पुरान तै शब्द सुखद यह एक ॥ ६ ॥

काव्योत्पत्ति को हेतु

दोहा

शक्ति, शास्त्र, लौकिक सकल, परवीनता समेत।
कवि-शिक्षा, अभ्यास भनि कवित उपज को हेत ॥ ७ ॥
उपजत अद्भुत वाक्य जो शब्द अर्थ रमनीय।
सोई कहियतु कवित है, सुकवि कर्म कमनीय ॥ ८ ॥
ध्वनि इक अंगरु व्यंग पुनि चित्र नाम निरधार।
उत्तम, मध्यम, अधम कहि त्रिविध सुकाव्य विचार ॥ ९ ॥

काव्य ध्वनि

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यंग जहँ सुन्दर अधिक विशेष।
पण्डित तासो ध्वनि कहत, उत्तम काव्य सुलेख ॥ १० ॥

सवैया

खौर को राग छुट्यौ कुच को, मिटिगौ अधरारँग देख्यौ प्रकास हि।
अंजन गौ दृग-कंजनि ते, तनु कंपत, तेरौ रुमंच हुलास हि।
नेकु हितू जन को हित चीन्हौ न कीन्हौ अरी मन मेरो निरास हि।
बावरी! बावरी न्हान गई पै तहाँ न गई उहि पीउ के पास हि ॥ ११ ॥

इहाँ चतुरा उत्तमा नायिका के कहिबे मे स्नान काज वाच्यार्थ ते, पीउ पास सुरत ही को गई, यह 'उहि पिउ' पद ते व्यग्यार्थ प्रधान सुदर है। तदनुसार ते रतिकार्य रसाग प्रभृति व्यग्य जानिये।

मध्यम काव्य

दोहा

वाच्य अर्थ ते व्यग जहँ सुन्दर अधिक न लेख।
अगुरु व्यंग सो नाम कहि मध्यम काव्य विशेष ॥ १२ ॥

सवैया

बैठी जहाँ गुरुनारि - समाज मे गेह के काज मे है बस प्यारी।
देख्यौ तहाँ बन तें चलि आवत नन्दकुमार "कुमार" बिहारी ॥

लीन्हे लखी कर-कंज मे मंजुल मंजरी वंजुल कुंज-बिहारी।
चन्द-मुखीमुखचन्दकी कान्तिसुभोर के चंद-सीमंद निहारी॥१३॥

इहाँ "कान्ह सकेत स्थान गये, हौ न गई" यह व्यग्य ते वाच्यार्थ सुंदर है।

चित्र-काव्य

सवैया

राम नरिन्द की फौज के धाक हिये हहरी जल छीन ज्यौ मच्छी।
दीह दरीनि दुरी गिरि कच्छनि सिघनि दीनता लच्छि न भच्छी॥
तच्छन एक कहूँ थिरलच्छ न लच्छ छनच्छबि सी तन लच्छी।
गौनअलच्छित,गच्छतींतच्छन,वंच्छतीपच्छ,विपच्छमृगच्छी॥१४॥

अर्थ-चित्र

कवित्त

बिमल बिसाल हिमगिरि आलबाल लसै,
जाके मूल शेष के सहस फन जाल हैं,
रामजू की जस-लता दिन-दिन बाढ़ी जाके,
बिलासनि निवास कैलास-सृङ्ग डाल हैं।
डार गंगधार तिहुँलोक-गति निरधार,
कहत "कुमार" सुर-सरिता प्रवाल हैं,
मोतीहार हार नखतावलि अपार चंद्र-
सुधा को अधार फल फूल की प्रभा लहैं॥ १५॥

इहाँ अर्थालंकार रूपक-प्रधान है।

इतिश्रीहरिवल्लभभट्टात्मज - कुमारमणि - कृते
रसिकरसाले त्रिविधकाव्य - निरूपणं
नाम प्रथमोल्लास ॥ १ ॥

द्वितीय उल्लास

उत्तम काव्य के भेद

दोहा

जामधि व्यंग प्रधान सो उत्तम काव्य बताय।
शक्ति लक्षणा मूल सो द्वैविध व्यंग जताय॥ १॥
वस्तु - रूप रस - रूप त्यौ भूषन - रूप प्रमान।
शक्ति-मूल जो व्यंग है तीन भाँति इमि जान॥ २॥
व्यंग लक्षणा मूल सो द्वैविध गनि इह ठौर।
अर्थान्तर-संक्रमित इक अधिक तिरस्कृत और॥ ३॥
व्यंग सकल इमि पंचविधि गन्यौ, कवित के ठाम।
रस व्यंग सु अलच्छ-क्रम और लच्छ-क्रम नाम॥ ४॥

अर्थ-व्यंग जानिबे को वृत्ति-विचार कहियतु है —

दोहा

रचै शब्द मे अर्थ कौ बोध सुवृत्ति प्रमान।
शक्ति लक्षना व्यंजना तीन नाम सौ जान॥५॥
तहँ वाचक अरु लाच्छनिक व्यजक शब्द समर्थ।
वाच्य, लक्ष्य अरु व्यंग्य तह क्रम ते उपजत अर्थ॥ ६॥
शक्ति - वृत्ति ते मुख्य तँह वाच्य अर्थ है होत।
लख्यौ शक्तिसम्बन्ध मे कहि लक्ष्यार्थ उद्दोत॥ ७॥

अनियत बोध जु शब्द मे उपजत भाँति अनेक।
जानि व्यंजना-वृत्ति ते व्यंग्य-अर्थ सुविवेक ॥ ८ ॥

वाच्यार्थ

दोहा

जाको जँह संकेत है तँह सुनि शब्द समर्थ।
बिन बिलम्ब जो समुझिये वहै वाच्य है अर्थ ॥ ९ ॥

यथाः—

निरखि नद जसुमति बिकल व्याकुल गोपी-ग्वाल।
गर्व सर्व हरि को हर्‍यौ कर धरि गिरि गोपाल ॥१० ॥

इहाँ वान्यार्थ है। तथा प्रकरण ते 'हरि' शब्द मे इन्द्र वाच्यार्थ हैं।

अनेकार्थ मे वाच्याथ को निर्णय—

दोहा

गनि संयोग[1] वियोग[2] पुनि सहचर[3] तथा विरोध[4]।
अर्थ[5] प्रकर्नरु[6] चिन्ह[7] कछु और शब्द सँग[8] बोध ॥११॥
त्यौ समर्थता[9] योग्यता[10] पाइ देश[11] समयादि[12]।
अनेकार्थ सम्बन्ध मे वाच्य कीजिये यादि ॥१२॥

क्रम ते, यथा—

कवित्त

चक्रधरै हरि[1] युद्ध-जय कौ, विषम डीठ[2],
हीन हर देव को मनोरथ अकूत के,

काम राम लछमन[३] के, राम अरजुन[४] से
सहाय कपिराज[५] काज कीन्है हैं प्रभूत के।
सिन्धु[६] को उतरि, हरि सीता[७] को कलेस, जारि
कनक[८] को पुर, भय मेटे पुरुहूत के,
मन ते अगौन गौन ल्याइ पहुँचाइ द्रौन[९],
कौन कौन विक्रम बखानौ पौन-पूत[१०] के ॥१३॥

इहाँ (१) चक्र-सयोग ते हरि=विष्णु (२) विषम डीठ वियोग ते हर=महादेव (३) लक्ष्मण सहचर ते राम=दाशरथि, (४) विरोध ते रामार्जुन, परशुराम, कार्तिवीर्य (५) अर्थ ते कपिराज=बाली, सुग्रीव, (६) प्रकरण ते सिन्धु=सागर, (७) दुःख-चिह्न ते सीता=जानकी, (८) पुर शब्द सयोग ते कनक=हेम, (९) सामर्थ्य ते द्रौन=गिरि, (१०) योग्यता ते पौन-पूत=हनुमान वाच्य है। यथा वा—

दोहा

अगनित मनिगन सम जगति गगन अँगन मैं ज्योति[११]।
विभा विभावसु[१२] मे सरस विभावरी मे होति ॥१४॥

इहाँ (११) गगन देश ते ज्योति=नक्षत्र, (१२) रैन समय तें विभावसु=अग्नि, वाच्य है।

जहाँ प्रकरणादि न होइ, तहाँ दोऊ अर्थ व्यंग है। यथा—

दोहा

घन वनमाल, बिसाल छबि सखि! घनकांति गँभीर।
केलि-धाम, अभिराम लखि स्याम कलिन्दी-तीर ॥१५॥

इहाँ कृष्ण अरु तीर, दोऊ प्रतीत हैं।

लक्ष्यार्थ—

दोहा

मुख्य अर्थ सम्बन्ध ही मुख्य अर्थ को बाधि।
रूढि पाइ वा काज लहि लक्ष्यारथ को साधि। १६॥

जलज, मडप, कुशल इत्यादि शब्द मे रूढि जो प्रसिद्धि, ताते लक्ष्यार्थ है।

"कहूँ कार्य जो व्यग्य है, ताके साधिबे को गगा मे घोष बसत है, इहाँ शीत पवित्रादि गुण अभेद ते ल्याइबे कों गगाशब्द मे तीर लक्ष्यार्थ है।

पंचविध-व्यंग्यार्थ मे शक्ति-मूल वस्तुव्यंग्य—

सवैया

नाहिनै और है ठौर अहै जन मूढ कठोर सबै है इहाँ हीं।
जाने न जे पर स्वारथ हेत, निकेत तजै, बसि खेत सदा हीं॥
पावस-पंथिय मीत! निवास को पास न गॉव है जाव जहाँ हीं।
ऊँचे उठे नभ देखि पयोधर जो बसि हौ तो बसौ घर यॉही॥१७॥

इहाँ 'पयोधर' शब्दशक्ति-मूलभव स्वेच्छा-सभोग कीबौ वस्तु व्यग्य है।

शक्तिभव-व्यंग्य त्रिविध है:—

(१) शब्द-शक्तिभव, (२) अर्थ-शक्तिभव, (३) उभय-शक्तिभव।

(१) शब्दशक्तिभव

दोहा

शब्द फिरै जो फिरत सो शब्दशक्ति-भव लेख।
शब्द फिरै थिर व्यंग्य सो अर्थशक्ति-भव देख ॥१८॥

जैसे पयोधर शब्द मे जो उरोज व्यग्य है सो तात्पर्य मेघ, घनादि शब्द कहैं नाहीं होत, याते शब्द शक्ति-भव है।

(२) अर्थशक्ति-भव। यथा—

दोहा

ईखन सुषमा-पान को सुख चाहत कत बाल।
निरखन पिय मुख-चन्द ये रहत न सूधे हाल ॥ १९ ॥

इहाँ मुख-चद्र अर्थ ते नैननि मे कमल-तुल्यता, पान ते छवि मे सुधा-तुल्यता व्यग्य है, आनन-विधु, छवि-पान इत्यादि पर्याय हू के कहे होत है। याते अर्थशक्ति-भव है। व्रीडाभाव हू व्यग्य है। एक पद मे ये दोऊ भेद हैं।

वाक्य मे (३) उभयशक्ति-भव होत है। यथा—

सवैया

ज्यौ भरम्यो न रम्यो कित हू नित ही चित हूँ त्रय-ताप तपायौ।
वेद पुराननि ढूँढि फिर्यौ रचि तीरथ सयम नेम उपायौ ॥
कुंजनि आजु 'कुमार' मिल्यौ जु अहीर की छोहरियानि छिपायौ।
पीर हरी हिय धीर धर्यौ व्रज-बीथी पर्यौ हरि हीरा हौ पायौ ॥

इहाँ चौथी तुक के वाक्य मे "हीरा पायौ" जो परमानन्द पाइबो व्यग्य है, सो उभयशक्ति-भव है।

शक्तिभव अलंकृति व्यंग्य, यथा—

सवैया

राम नरिन्द ! तिहारे पयान, धुकै धरनीधर धारनहारे।
भीषम ग्रीषम सूरज तेज प्रताप के ताप के पुज पसारे॥
रोष सतोष निहारत ही अरि गंजन हौ जन-रंजन भारे।
दुज्जन सज्जन को तुम हीं रन-रुद्र, दया के समुद्र निहारे॥२१॥

इहाँ रुद्र=भयानक वा उग्र। दया के समुद्र=मर्यादा-युक्त, वा मुद्रादानी, यह अर्थ तें रुद्र से समुद्र से हो, यह उपमा व्यग्य है।

रसव्यग्य अनेक भाँति है, सो आगे कहिबी।

लक्षणा-मूल (१) अर्थांतरसंक्रमित व्यंग्य। यथा—

दोहा

समुझन गूढौ मूढ जन, लहि धन कौ परकास।
तियनि सिखावत आवन हि जोबन विविध विलास॥२२॥

इहाँ सिखाइबो चेतन धर्म है, ताते अचेतन जोबन धन मे लच्छित है, तामे बिन प्रयास सीखिबौ व्यग्य है, सो प्रकट ही है।

कहूँ लच्छनामूल व्यग्य अप्रकटै है। **यथा—**

सवैया

आनि अचानक आनन में बिकसी मुसक्यानि की बानी सुहाई।
नैननि मे चपलाई "कुमार" बसीकर गौन बसी गरवाई॥

कान्ति प्रकास उरोज-कलोनि लसी बिलसी बसि बैन सुधाई।
अंगनि देखी लुनाई जुन्हाइ सी छाई अछाई नई तरुनाई ॥ २३ ॥

इहाँ बिकसिवौ फूल धर्म है, बसिवौ प्रभृति चेतन धर्म है—सो आनन, नेत्र, गति, उरोज, वचन, जोबन प्रभृति मे लच्छित है। तहाँ बिकसिवे मे सुगन्ध फैलिबौ, बसिवे में नित्यानुराग, बिलसिवे मे युक्तानुराग, मिलन, योग्यता प्रभृति गूढ व्य ग्य है।

लक्षणा-मूल (२) अत्यंत-तिरस्कृत व्यंग्य। यथा—

सवैया

कीन्हीं भलाई भली हमसौ, सु कहा कहिये जग मे जस लीजौ।
जाहिर है घर बाहिर रीति प्रतीति यहै पर-स्वारथ छीजौ ॥
काज सुधारत ही सबको निसि बासर ऐसे सदा सुख कीजौ।
हौं जगदीस सौ माँगौ असीस जु कोटि बरीसक लौ तुम जीजौ ॥

इहाँ विपरीत लच्छना सो अपकारी सो उक्ति है। हम सो लटाई करी, बिराने लटे कौ। आप धन छीजौ सर्व बिसासी हौ, दुख देखौ, वेगि मरौ इत्यादि व्यग्य रूढ है।

व्यग्य के प्रकटता के हेतु—

दोहा

वक्ता, श्रोता, काकु, थल, वाक्य, अर्थ, ढिग और।
देश, समय, प्रकरन प्रभृति रचत व्यंग्य बहु दौर ॥२५॥

(१) वक्ता के विशेष ते व्यंग्य। यथा—

सवैया

तोहि गई सुनि कूल कलिंदि के, हौंहु गई सुनि हेलि हहारी।
भूली अकेली "कुमार" कहूँ डरपी लखि कुंजन-पुंज अँध्यारी॥
गागर के जल के छलकै, घर आवत लौं तन भींजिगौ भारो।
कंपत त्रासनि ये री बिसासिनि! मेरी उसास रहै न सम्हारी॥२६॥

इहाँ कहैया (वक्ता) के विशेष ते स्वेद, कम्प, उसास प्रभृति सुरत-कार्य दुराइबो व्यंग्य है।

(२) सुनैया (श्रोता) के विशेष ते व्यंग्य। यथा—

सवैया

सूनौ पर्‌यौ सब मन्दिर है, बस रैनि पधारियो पंथ! सबेरे।
मेरी रहै इत सेज लखौ, उत सोवत सासु, सुनै जु न टेरे॥
सूझत साँझ परै तुमको न "कुमार" कही यह बात उजेरे।
पंथियमीन! डराति हौ, जो कहुँ गात गिरौ जिनि ऊपर मेरे॥२७॥

इहाँ श्रोता के विशेष ते सभोग कीबौ व्यंग्य है।

(३) काकु जो स्वरविशेष तातें व्यंग्य। यथा—

दोहा

मोहन-मोहन को रचति भूषन दरपन जोहि।
बिन-भूषन हू तरुनि वे पिय हिय लेहि न मोहि?॥२८॥

इहाँ प्रीतम मोहिवे को लीला विलासादि भूषण और हैं, यह काकु तें व्यंग्य है।

(४) अर्थ-विशेष ते व्यंग्य । यथा—

सवैया

माइ रहै खुनस्यानी, अहै गुरु-नारिन मे छन हू न छमै है।
कैसे सखी! उत खेलन आइये, काज "कुमार" सबै घर मै है॥
औसर चौसर के गुहिबे को न, कुंजकलीनि हू बीनि हमै है।
धाम के काम कहूँ बिसराम बनै दिन साँझ के साँझ समै है॥२६॥

इहाँ अर्थ ते तथा कामी को (ढिंग) पाइ बाहिर मिलाप न बनिहै, यहै व्यग्य है। और कुज थल ते, चौसर इहि मिस ते, धाम इहि देश ते, साँझ समय ते, घर ही मिलाप बनिहै, यह उपदेशहू व्यग्य है।

(५) अन्यढिग पाइ व्यंग्य विशेष । यथा—

दोहा

मेरे कंकन-लाल-तन लाल! लखत हौ ईठि।
हौ वह, वे तुम, पै न अब वह सनेह की डीठि॥ ३०॥

इहाँ मेरे ककन-रतन मे सखी-प्रतिबिम्ब देखि औरै डीठि हती, सखी गयें औरे डीठि भई, यह प्रच्छन स्नेह कहिवौ व्यग्य है।

(६) प्रकरण ते व्यंग्य। यथा—

दोहा

दई! इहाँ ठाढ़े कहाँ? यह भय-ठान मसान।
सुत-सनेह तजि जाउ घर, हिय रचि कठिन पखान॥३१॥

यथाच—

सवैया

गीध की बातनि तासौ सनेह, तजौ जिय जो उपजे सुख गाहै।
काल को ख्याल न जानिये हाल जु मेटै रचै छिन मे मन चाहै ॥
भूत परेत को सॉझ समौ, यह देखौ घरीक धौ होत कहा है।
सोनो-सौ गात सलोनौ सुजात तजै सुत जात लजात न काहै ॥३२॥

इहॉ गीध दिन ही मे भच्छनकाज-छम है, सो लोगनि टारतु है। स्यार राति महँ भच्छन-छम है, तातें दिन भर राख्यौ चाहतु है।

यह व्यग्य अपनी अपनी कार्य-सिद्धि गृध्र गोमायूपाख्यान प्रकरण ही तें है।

(७) कहूँ चेष्टा विलासादि तें व्यंग्य। यथा—

दोहा

इमि उरोज मुख ओज इमि ये दिन एसे नैन।
एसी वैस बनी वनी रची सची-सी ऐन ॥ ३३ ॥

इहॉ नृत्य आदि मे हस्तकादिचेष्टा ही ते उरोज, मुख, वैस प्रभृति मे दाडिम, चन्द्रादि की उपमा, तथा अगुलिगननादि मे वैस प्रमानादि व्यग्य हैं।

यथाच—

सवैया

प्यारे! इसारति दीनी विलोकि कै प्यारी तहॉ दृग चाह सौ दीनै।
केलि विलासनि सौ सरसानी हँसै अरसानी सनेह नवीनै ॥

नैन चलाय 'कुमार' त्यौ चंचल ओढ़ि लियौ मुख अंचल झीनै।
बैंदी सु धारि सिधारि गली, उर ऊपर धारि दुवौ भुज लीनै॥

इहाँ चेष्टा ही ते निद्रासमय मे आगम, प्रनाम, बिदा कीबौ, भेंट कीबौ प्रभृति व्यंग्य है।

—— o: ——

इति श्रीहरिवल्लभ भट्टात्मज-कुमारमणि-कृते रसिकरसाले
चतुर्विधव्यंग्य-कथनं नाम
द्वितीयोल्लासः। २॥

तृतीय उल्लास

शब्द-शक्तिभव रस-व्यंग्य

रसबोध मे विभावानुभावादिकौ क्रम नाही लक्षित होत, शतपत्र-भेदरीतिते ताते अलक्षितक्रम नाम है औरव्यग्य लक्षितक्रम नाम है।

रस-व्यंग्य के भेद

दोहा

रस अनुभाव दुहून के त्यौं आभास बखान।
भाव संधि सम उदय त्यौं भाव सबलता जान॥ १॥
रस बिन भाव, न भाव बिन रस, यह लख्यौ विशेष।
स्वादु विशेषहि ते सबै भाव प्रभृति रस लेख॥ २॥
आनँद अंकुर रूप तब भाव थाइ संचारि।
विभावादि कहवाइ वह बढ़ि रस होत विचारि॥ ३॥
ज्यौ मरिचादि सितादि मिलि पानक स्वादु विशेषि।
विभावादि थाई मिलै रसै होत त्यौं देखि॥ ४॥
लौकिक तथा अलौकिकै द्वै जॉनहु रस ठौर।
लौकिक लोक-प्रसिद्ध त्यौ, कबित नृत्य मे और॥ ५॥
शृंगारादिक लोकगत कबित नृत्य मे ल्याइ।
होत अलौकिक है सबै रस आनन्द बढ़ाइ॥ ६॥
सकल-लोक रस के सिरै आनँद-लोक विलच्छ।
रसै एक अनुभवत हैं पंडित सहृदय दच्छ॥ ७॥

आनँदवृंद सुकान्ह रस जगत ताहि कौ रूप।
तातें तिय पुरुषादि-गत सब रस कान्ह-सरूप ॥ ८ ॥
वहै थाइ संचारि वह, वह विभाव अनुभाव।
रस स्वरूप सब कान्ह इक लख्यौ अभेद सुभाव ॥ ९ ॥
मिलि विभाव अनुभाव तहँ संचारी मिलि भाव।
रति प्रभृतिक थिरभाव पुनि रस को रचत भन्याव ॥१०॥
गनि सिंगार रस, हास रस, करुन, रौद्र अरु बीर।
वत्सल, भय, वीभत्स त्यौं अद्भुत, शांत सुधीर ॥११॥

शृंगार-रस-लक्षण

दोहा

कृष्ण देव, रँग श्याम त्यौं रति थाई शृंगार।
गनि संयोग वियोग द्वै तासु भेद निरधारि ॥१२॥

(१) संयोग शृंगार

दोहा

जहाँ परसपर अनुसरत दरस-परस सुखसार।
पिय-प्यारी कौ मिलन तहँ गनि सँयोग सिंगार ॥१३॥

यथा—

सवैया

दोऊ मिले रस के बस बातनि हास-विलासन के रचि बैननि।
आपनी-आपनी चाह "कुमार" दुरावत ताहि प्रतीति की सैननि ॥
कंज दियौ कर ता मिस प्रीतम प्यारीकी बाँह गही सुख चैननि।
लाज लही तिय नाहीं कही पे निहारि रही अधमूँदे से नैननि ॥१४॥

इहाँ नायक-नायिका आलम्बन हैं। विलासादि उद्दीपन, भुजा-क्षेप कटाक्षादि अनुभाव हैं, व्रीडा, हर्षादि सचारी। इन मिलि पूर्ण रति स्थायी सुहृदय-हिये श्रृंगार-रस होत है, ऐसे सब रस होत है ऐसे सब रसहूँनि जानिए।

संयोग के द्वै भेद

दोहा

प्रथम भए संयोग मे भयौ न विरह विचार।
अमित विप्रलम्भक तहाँ रस सिगार निरधार ॥१५॥

यथा—

सवैया

केलि कै रग रची राति दूसरै द्यौस मिले नव संग तमी के।
आनन मे श्रम के जल की झलकी कन काँतिन भाँति कमी के॥
आरसी मे प्रतिबिम्ब भई यौ "कुमार" लखी छवि साथ रमी के।
इंदु सो प्रीति करी अरविन्द मनौ अरविन्द मे बिन्दु अमी के॥१६॥

दूसरौ भेद लक्षण

दोहा

जैसे वसन कषाय में चढ़त अधिक रंग जोग।
त्यौ वियोग पर होत है अधिक सुखद संयोग ॥१७॥

यथा—

सवैया

लोचन नीर अन्हाय के सायक पच को ताप सह्यौ तन सूरौ।
सेज विधान तज्यौ परिधान "कुमार" बिसारौई पान कपूरौ॥

ऐसे वियोग मिलै सुघरी सुखपूर अपूरब भौ बढ़ि रूरौ।
साध्यौ महातप ताकौ दुहूनि मिलेई मिल्यौ फल आनँद पूरौ॥१८॥

वियोग शृंगार-लक्षण

दोहा

परिपूरन रति है जहाँ इष्ट सग नहिं देखि।
विप्रलंभ शृंगार तहँ मानत सुकवि विशेषि॥१९॥
पूर्वरागते मानते त्यौ प्रवासते ल्याइ।
उत्कंठा ते श्राप ते पाँच भाँति सुबताइ॥२०॥

पूर्वानुराग-लक्षण

दोहा

सुनै लखै बाढत विरह बिन मिलाप अनुराग।
विरह जु तरुणी तरुन को भनि सो पूरब राग॥२१॥
थिर न[1]सोभि, सोभित[2]न थिर, थिर सोभित[3]अनुराग।
नील[1], कुसुम[2], मंजीठ रँग[3] त्रिविध सु पूरबराग॥२२॥

यथा—

कवित्त

बैठी कर मंजन झरोखै तू निहारि जब,
तब तें "कुमार" बढ़्यौ अभिलाषवृंद है,
रूप गरबीली बाल हाल सुधि कीन्ही क्यों न,
दीन सुधि-हीन भौ अधीन नँदनंद है।

प्यारे को मृदुल मन मुसक्यानि फासी डारि,
फेर-फेर हन्यौ दृग-कोरनि अमंद है;
अलक गुननि बाँधि, भृकुटी जँजीर साँधि,
उरज गुरज बीच राख्यौ करि बंद है ॥२३॥

दोहा

दूति, सखी, बदी मुखहि गुन को सुनबौ जानि।
चित्र, स्वप्न, साक्षात त्यौ दरसन तीन प्रमानि ॥२४॥

(गुण श्रवण) यथा—

सवैया

छैल छबीले की बात सुनै छकि सी रहै मादक मानौ पियो है।
ताहि को नाम "कुमार" सुहात है ताही को गीत कवित्त कियो है॥
रूप बखान सखीन कियौ तब ते सुनिबेही कौ नेम लियो है।
कान्हर के गुनगान नितू सुनि ही सुनि कीनौ निसून हियो है ॥२५॥

लिखिबौ त्रिविध है।

(१ चित्र-दर्शन) यथा—

कवित्त

कागद मे पाटी मे 'कुमार' भौन भीतिन मे,
चतुर चितेरिन सौ लिखति लिखाई है;
आरसी निहारि निज मूरति को अनुहारि,
मिलिबौ विचारि चित्त रीझति रिझाई है।
जकी सी छकी सी अनमिष डीठ ह्वै रही सी,
बोलति न डोलति थकी सी मोह छाई है;

रूप सौ बिचित्र कान्ह-मित्र को विलोकि चित्र,
चित्रिनि भई तू चित्र पूतरी सुभाई है ॥२६॥

(२ स्वप्न-दर्शन)

दोहा

फनि, नर, किन्नर, सुर, कुवँर लिखे लखे सब ओर।
है दधिचोर किसोर कौ यह किसोर चित-चोर ॥२७॥

(३ साक्षात् दर्शन) यथा —

कवित्त

झूलति हिंडोरे मे थकी सी तू निहारि प्यारो,
चित भयौ थकित लखत रूप तेरौ है,
कहत "कुमार" धार त्रिवली ललित पैरि,
रोमराजी भौर पर्यौ भ्रमत घनेरौ है।
कुच गिरि चढ़त चकित ह्वै चिबुक बीच,
तिल की चिलक छवि छलक मे फेरौ है।
बेसर उरझि रही अलक विलोकि तेरी,
ललक उरझि रह्यौ रीझि मन मेरौ है ॥२८॥

मानतें विरह

(१ लघुमान)

दोहा

जानि आन तिय छाँह निजु दर्पन मे पिय पास।
रूसि रही पिय हँसि गही लही दुहुन रस-रास ॥२९॥

(२ मध्यम मान) यथा—

सवैया

धोखै परोसिनि वाम को नाम सुन्यौ पिय के मुख मानि सही तैं।
खेलति चौपर प्रीतम पास "कुमार" न त्यौ रसरास लही तैं॥
काहे को ठानति नींद बहान हहा ? नहि मानत मेरी कही तैं।
बानि परी, कहा जानि परी रिसतानि परी पट जो अबही तैं॥३०॥

(३ गुरु मान) यथा—

सवैया

रैनि जग्यौ हठ देखि घनौ अलसान लग्यौ मनौ केलि दियौ है।
भोर लौं जागि "कुमार" सखी पछिताई पछाँह को छोर लियौ है॥
प्रीतम पॉय परचौइ चह्यौ, न कह्यौ सखि मानै, यौं मान कियौ है।
तेरे कठोर उरोज की संगति जानिये ओर कठोर हियौ है॥३१॥

(मान छुड़ावन के भेद)

दोहा

साम, दाम, नति, भेद रचि विरस, रसातर ठानि।
मान छुड़ावन के कहे छह उपाय ये जानि॥३२॥
साम प्रभृति जहँ बनत नहि तहॉ विरस को लेखि।
त्रास, हास करि मान को त्याग, रसान्तर देखि॥३३॥

प्रवासवियोग लक्षण

दोहा

दूरदेश-थिति ते जहॉ बनै न मिलिबौ जोग।
भयौ, होत, ह्वै है तहाँ त्रिविध प्रवास-वियोग॥ ३४॥

(१ भयौ [भूत] वियोग) यथा—

सवैया

कीन्ही हरींन सुध्यौ सुहरी सुधि औसर हू मे हरी घरनी के।
औधि बिसूरि बिसूरि "कुमार" बढ़ी जिय पीर सरोजमुखी के॥
चाप चढ़यौ घन मे लखि कै, तन ताप बढ़यौ बिन आगम पी के।
वारि विमोचत वारिद, लोचन वारि है मोचत लोचन ती के॥३५॥

(२ वर्तमान विरह) यथा —

सवैया

वारक जाहि निहारि "कुमार" सुजीवन जीवन आपनौ कीजै।
नंद को नंद सु आनँदकंद बिदेस चल्यौ तन छीन है छीजै॥
जो बिन जीवन जीवन नाहिं सु बात सुनै हिय नाहि पतीजै।
जीवन है बिन जीवन हू ब्रजजीवन हू बिन जो अब जीजै॥३६॥

(३ भविष्यति वियोग) यथा—

कवित्त

प्रात सुनै जात परदेस कान्हप्यारे ! तुम,
प्यारी के विरह ताप हिये न समाति है,
जानति "कुमार" मिलि बिछुरे को दुःख नाहिं,
पूछति फिरति सखियानि अकुलाति है।
आधौई न बीत्यौ जाम आधे तन कीन्ही काम,
कैसे धौ बितावै वाम आगे द्यौस, राति है,
संग हू परी पे खरी तलफति तलप मे,
अलप सलिल परी सफरी दिखाति है॥ ३७॥

यह कार्यवश ते है।

(गुरुवश ते वियोग) यथा—

कवित्त

बरषा विषमताई दुचिताई दूनी सूनी-
सेज मे "कुमार" चित - चेत बिसराइये,
गुरुजन कठिन सठ न जाने पर - दुख,
पिय परबस परदेस रह्यौ छाइये।
धीरज हिरात सुनि नीरद की धीर धुनि,
उसीर - गुलाब - नीर ल्याये पीर पाइये,
सीरे उपचार और ताप को प्रचार घटै,
सीरे उपचार बढ़ी ताप क्यौं घटाइये ॥ ३८ ॥

(४) उत्कठा ते विरह, विरहोत्कठिता के भेद मे जानिये।

(५) श्राप ते विरह, मेघदूतादि मे है, तथा पाडु प्रभृति में है। ऐसे सभ्रम लज्जादिहू ते वियोग —

यथा—

दोहा

मिलि कुंजन बिछुरे घरी बरसत घन घिरि घोर।
ग्रीषम - ताप घटी न, पै बढ़ी ताप दुहुँ ओर ॥ ३६ ॥

यथाच—

सवैया

कैसे "कुमार" सुहात कहूँ बिन देखे दिखात, दसौं दिस सूनौं।
लेत उसासन होत उदास तपै तन जैसे परै जल चूनौं॥

दूर विदेस के वास वियोग, सबै सहिये लहिये हिय ऊनौ।
भैट की आस मे पास निवास मे दाहत है विरहानल दूनौ ॥४०॥

संयोग मे वियोग। यथा—

दोहा

विकच गुलाब सुगंधि लहि लगत गंधवह गात।
पिय-हिय भेटति भुज भरै तिय जिय अति अकुलात ॥४१॥

पूर्वराग विरह की दस दशा—

नयनप्रीति, चिंता, संकल्पन, नींद-नाश, कृशता, रुचिहानि।
लाज-भंग, उनमाद, मूरछा, मृति ये कामदशा दस जानि ॥४२॥

कोऊ क्रम ते ये मानत हैं—प्रथम नयन-प्रीति, फिरि चिंता, फिरि संकल्पन, फिरि निद्रा-नाश, फिरि कृशता, फिरि विषय-निवृत्ति, फिरि लज्जा-नाश, फिरि उन्माद, फिरि मूर्छा, फिरि मृति।

क्रम ते यथा—

कवित्त

जब ते निहारे कान्ह, तब ते तिहारे ध्यान,
याके चित्त चित्र भयौ रूप तुव रैनि-दिन,
धारि जलधार पल धारत न नेकु पल
नैन है, "कुमार" तन छीन छीजै छिन-छिन।
भूल्यौ खान पान भौन, लाज धरै जिय को न,
मदन छकाई बाल देखौ लाल! हाल किन?
काम-सर जालसी कराल सी प्रवाल सेज,
परी घरी-घरी मोह भरी, डरी प्रान बिन ॥ ४३ ॥

प्रवासादि वियोग की दशा १०—

अभिलाषा, चिंता, सुमिरन, गुण-कथन तथा उद्वेग, प्रलाप।
गनि उन्माद, व्याधि, जडता, मृति दसौ दशा विरह के ताप ॥४४॥

दोहा

मिलन चाह अभिलाष है, ध्यान सुचिन्ता जानि।
लखी सुनी पिय बात की सुधि सुमिरन पहिचानि ॥४५॥
कहि गुन कहिबो प्रीति गुन सुन्दरतादिक जाप।
चित उचाट उद्वेग कहि, सूने वचन प्रलाप ॥४६॥
प्रेम छाक उनमाद है, व्याधि विरह की पीर।
जडता चेष्टा - हानि है, मृति बिन प्रान शरीर ॥४७॥

(१ अभिलाषा)

सवैया

जा बिन देखे नहीं कल, तासौ वियोग अहो? विधि वैरी दयौई।
क्यौंहु "कुमार" निहारौ जु प्यारी न न्यारी करौं सुखि मानि नयौई॥
श्रीपति लौ हिय अन्तर में अब राखौ निरन्तर ठान ठयौई।
गौरि के कंत लौं कै मिलि अगही, संग रहौ अरधंग भयौई ॥४८॥

(२ चिन्ता) यथा—

सवैया

गावे वधू मधुरे सुर-गीतनि प्रीतमसंगहुते फुरि आई।
छाई "कुमार" नई छिति में छवि मानौं बिछाई हरी दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूँ दिसि बोली यौं बाल गरो भरियाई।
कैसी करौ हहरै हियरा हरि आये नहीं, उलही हरिआई ॥४९॥

(३ स्मरण) यथा—

दोहा

दुरि दृग दै मुरि द्वार लगि रचि प्रनाम दुहुँ पानि।
चितई, चित मेरैं अजौ वह बिसुरे नहि बानि ॥ ५० ॥

(४ गुण कथन) यथा—

कवित्त

बिन ब्रजजीवन बिलोके ब्रजबालनि के
जीवन रखैया न जतन दरसत हैं,
रास लास हास के "कुमार" वे विलास सौरि
बीस बिसै बिस सो हिये मे बरसत हैं।
छिनन छबीली सो तिरीछे नैन छोरन की,
सहज सनेह चितवन परसत हैं,
कान्ह चित्त-चोर मुख चन्द के चकोर, स्याम
घनाघन मोर मेरे नैन तरसत हैं ॥ ५१ ॥

(५ उद्वेग) यथा—

दोहा

मदन वधिक के कदन मे बचे अधिक जे प्रान।
चन्द पिसाच निसाचरत नहि बचाइ है न्यान ॥५२॥

(६ प्रलाप) यथा—

सवैया

सूनेहि सेज मनावन लागत, लागति है निसि रूसनि थाप की।
कोइल बोलै "कुमार" कहूँ तब बोल न जानै विलास अलाप की ॥

चित्र लिखे लखि तेरि ये सूरति, पूछति छेम तिहारे मिलाप की।
सारी निसा हीकिसाकहैआपकी काम कसाइ कसालेकी तापकी ।५३।

(७ उन्माद) यथा—

सवैया

देखि परै दसहू दिसि मे निसि द्यौसहि नन्द'कुमार' की मूरति।
भैटिबे को उठि दौरि चलै भ्रमसौं भरि नैननि नीरसौं पूरति॥
भौन सुहात न मौन रही गहि, वा मुख की छबि छाक बिसूरति।
तेरो सुभाउ री! कौन भयो? भई बाउरीसी लखि साँवरीसूरति॥५४॥

(८ व्याधि) यथा—

कवित्त

सूखे तन, दूखे मन, पेखउ पियूख-कर-
कर विकराल ज्वाल जाल बरसत हैं,
देखि भेंटि ठाठ के कलिन्दी घाट बाट, सूने
दूने दुख प्रान परबस ह्वै त्रसत हैं।
कहत "कुमार" ये कदम्बन के फूल-भार,
सूल भये मदन - तुनीर से लसत हैं,
बेलिनि नबेलिनि के केलि-कुंजपुंज आली!
खाली बनमाली बिन काली से डसत है॥५५॥

(९ जडता) यथा—

दोहा

मुख न बैन, नैननि पलन हलन चलन तन हाल।
सुतन रतन - पुतरी भई, बिरह तिहारे लाल!॥५६॥

मृति-जो मरण दशा-सो मूर्च्छारूप के चित्त मे चाही बर्निये, नाहीं तो करुणरस होइ जाइ। यथा—

दोहा

तलफि तलफि सूनी तलप कलपि कलपि सुधि-हीन।
प्रानपियारी प्रान-बिन होत अलपजल-मीन ॥५७॥

कोऊ ये अवस्था कहत है—

दोहा

अँग व्याकुलता, पाण्डुता, अरुचि, अधीरज, ताप।
कृशता अरु असहायता, तन्मयता, सलाप ॥ ५८ ॥
मूर्च्छा औ उन्माद ये विरह दसा दस जान।
बिरह कवित्तन मे सबै उदाहरन पहिचान ॥ ५९ ॥
पिय तिय मे जहँ एक के बिरह, मरन है होत।
फिर जीवन की आस तहँ करुन वियोग उदोत ॥ ६० ॥

जैसे महाश्वेता मे कादम्बरी मे है, रति मे है।

इति शृंगाररस-व्यंग्य।

हास्यरस-लक्षण

दोहा

प्रमथ देव, सित रंग है, हास्य सुथाई हासु।
बिकृत वेश, वचगति-सहित आलम्बन है तासु ॥ ६१ ॥

यथा —

निसि मे ससिमुखि बसन मे सौंधौ जानि लगाइ।
प्रात सुकर लै मुकुर लखि हस्यौ तियानि हसाइ॥ ६२॥

करुणरस-लक्षण

दोहा

वरुन देव, रँग धूमिलौ थाई सोक विचार।
आलम्बन मृतबन्धु गनि करुन रसै निरधार॥ ६३॥

यथा —

सवैया

प्रीति के पोष "कुमार" रच्यौ अपराधहू रोष नहीं जिय मे है।
ऐसी धरी निठुराई कहा, दृग खोलि न बोलि न उतरु देहै॥
भोरे सुभाइन भीरु तू भामिनि? केलि के भौनहू जान डरै है।
हेली न संग सहेली अहै कहि कैसे अकेली अकासहि जैहै॥६४॥

रौद्ररस-लक्षण

दोहा

रुद्र देव, रँग लाल तहँ थाई क्रोध विशेष।
वैरी आलम्बन तहाँ रौद्र रसै जिय लेख॥ ६५॥

कवित्त

रामनरपाल सों जुरत जंग बजरंग
धीर वैरी वीरन की हिम्मति छुटति है,
कहत "कुमार" कर धारत कमान बान,
दुज्जन अमान अनीकिनि यों कुटति है।

काटे हय, गय, नर-कंधर कबंधनि तें
रुधिर की धारै अध ऊरध टुटति है,
जावक सलिल जानौ पूरन खजानौ भरी,
नल-जन्त्र चादरी सी चहूँघा छुटति है ॥६६॥

वीररस-लक्षण

दोहा

इन्द्र देव, रँग हेम-सम थाई भाव उछाह।
आलम्बन अरि जेय है वीर रसै निरबाह ॥६७।

(१ युद्धवीर) यथा—

सवैया

देखत लाखन राखस के गन लाखन बानर धीरज नाखे।
लाखन अंगद नील सुग्रीव हनूमत जुद्ध विचार है भाखे ॥
आवत रावन के सुत कौ लखि, राम उछाह हिये अभि लाखे।
धारि रुमचनि कौ तन कंचुक बान कमान हिये दृग राखे ॥६८॥

(२ दानवीर) यथा –

सवैया

कोटि चतुरदस जो मुहरै गुरुदच्छिना देन कही पन धारै।
देत बच्यौ रघु के करवा कर देख, करै जिन मोह बिचारै ॥
कीजिये आज पवित्र "कुमार" निसा बसि होम अगार हमारै।
हेत तिहारेई जीतत हौ धनदै, सु सबै धन देत सवारै ॥६९॥

(३ दयावीर) यथा—

सवैया

जीव के घातक हौ जु सिचा न छुधा बस पातक आतुर जागौ।
दीन दुरयौ सरनागत है, नहि ताहि सतावन को अनुरागौ॥
हौं सिबि नाम महीपति हौं निज देहऊ देहुँ-गौ चाहौ सु मागौ।
आकुल होत क्यौ मोतनको भखियो तनु पोत कपोतको त्यागौ॥७०॥

(४ धर्मवीर) चौथो भेद मानत हैं। यथा—

कवित्त

राज जात क्यौ न आज, जीतौ दुजराज द्रोन,
चिन्ता चितहू तें तोन पाप की बहाइये।
कहत "कुमार" सब कौरव विजय लहौ,
वहौ विधि रूठत सु रूठोई कहाइये॥
भीम अरजुन गुरुजन-सीख मानौ एक,
धरम धरम राज-काज कौ सहाइये।
जाय किन प्रान ? तऊ बात न्यान साँच ही ते,
आन नहीं आनन ही मेरे सु कहाइये॥७१॥

वात्सल्य रस-लक्षण

दोहा

लोकमात दैवत तहाँ, पद्म-गर्भ सम रंग।
नेह थाइ वत्सल गन्यौ तहँ बिभाव सुत-संग॥७२॥

यथा—

सवैया

सीस लसै कुलही, पग पैजनि, मोतिन माल हिये रुचिरो है।
कांति "कुमार" लहै मुतियानि की द्वै दँतिया बतियाँ कहि सोहै॥
मात जसामति गोद लिए, बढ़ि मोद समातु नहीं मुख जोहै।
नंद को नंद, अनंद को कंद निहार री ! मोहन मो मन मोहै॥७३॥

भयानक रस-लक्षण

दोहा

यम दैवत, रँग नील गनि आलम्बन भय-हेतु।
गन्यौ भयानक रस तहाँ भय थाई को चेतु॥७४॥

यथा—

सवैया

घोर प्रलै के घनाघन लै बरख्यौ मघवा व्रज वैर सौं जागत।
थावर, जंगम, जीव भ्रमै भभरे भय में भरि भौननि भागत॥
आकुल गोपिय-गोकुल ग्वाल बिहाल ह्वै अंक तें बालनि त्यागत।
तीर से नीर छरानिछरे बिछुरे बछरा उर गाड़न लागत॥७५॥

बीभत्स रस-लक्षण

दोहा

काल दैव अति काल रँग, घिनि थाई तहँ लेख।
असुचि बात आलम्बिकैं रस बीभत्स विशेष॥७६॥

यथा—

कवित्त

गरदा से परे मुरदानि के उदासे तहाँ,
लीन्हे अंक बैठ्यौ सिरदार रंक प्रेतु है।
लै लै मुख कोरैं ओरै आवत निकट दोरैं,
दाँत काटि आँत काढ़ि कीन्हौ हार हेतु है॥
पीठि जंघ अच्छनि कपोलनि प्रथम भच्छि,
आतुर छुधा सों रच्छ ह्वै रह्यौ अचेतु है।
हाड़नि हू चाखि डारै नाखिन ही आँखिन ही,
मूँदि, संग माखिन ही मास भखि लेतु है॥७७॥

अद्‌भुत रस-लक्षण

दोहा

थाई बिसमय पीत रँग, मनमथ दैवत जानि।
अचिरज युत आलम्बिकै रस अद्‌भुत पहिचानि॥७८॥

यथा—

सवैया

तात को सासन सीस असीस सो धारि वसी वनबास पधार्‌यौ।
एक ही वान सँघारि घरी, दस चारि हजार निसाचर तार्‌यौ॥
राघव बाँधि अपार पयोधि, "कुमार" सबै दल पार उतार्‌यौ।
राखस कोटि मसासमजारि,ससासम मारिदसानन डार्‌यौ॥७६॥

शांत रस-लक्षण

दोहा

हरि दैवत, रँग कुंद सम, शम थाई तहँ होत।
आलम्बन परमार्थ लहि, कहि रस शांत उदोत ॥८०॥

यथा—

सवैया

ये तपसी जपसील सदा बसी, जे परिपूरन ब्रह्महि ध्यावैं।
पुन्य गिरिद्निकंदर-अंदर ह्वै निरद्वंद विनोद बढ़ावैं ॥
ध्यान समै जिनके मृगसावक खेलत अंकहि संक न पावैं।
बैठि विहंगम पास निवास के आनँद आँसुनि प्यास बुझावै ॥८१॥

दया वीरादि मे अहकृति है, यहाँ अहकृति को त्याग है। यह भेद है।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते रसिक-
रसाले रसव्यंग्यनिरूपणं नाम
तृतीयोल्लासः ॥

चतुर्थ उल्लास

अथ भाव-व्यंग्य-भेद—

दोहा

रस अनुकूल विकार सों भाव कहत कवि धीर।
चित्त-जनित आँतर कहत, दूजो है सारीर ॥ १ ॥
द्वैविध आंतरभाव है, थाई अरु संचारि।
स्तम्भादिक जे आठविध ते शारीर विचारि ॥ २ ॥

यद्यपि सात्विकौ आतर भाव है, पै शरीर ते प्रगट होत, यातैं शारीर है।

स्थायी भाव व्यंग्य—

दोहा

माला-मधि ज्यौ सूत्र त्यौ विभावादि मे आनि।
आदि, अंत, रस-माह, थिर थाई भाव बखानि ॥ ३ ॥
रति, हाँसी, अरु शोक, रिस, त्यौ उछाह, सुत-नेह।
भय, घिनि, विस्मय, शम तथा दस थाई गनि एह ॥ ४ ॥

(१) रतिस्थायी भाव-लक्षण

दोहा

इष्ट वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि तरुन तरुनि हिय चाह।
उपजत मनोविकार कछु, रति थाई तिहि माँह ॥ ५ ॥

यथा—

सवैया

कान्ति मनोहर मोहन की दृग पूरि "कुमार" सुधा-सी रही है।
कान दए गुन गान सुने पिय देखन चाह दुरै ही चही है॥
नैननि में, गति में, मति में, मृदु भाव सुभाव की रीति गही है।
नेहलता हिय ही सु लही जु नई दुलही मे सही उलही है॥६॥

(२) हास्य स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

विकृत वेश, वच, कर्म, लहि, मन-विकार कछु होत।
हँसा तहाॅ थिर भाव गनि बाढ़ै हास उदोत॥७॥

यथा—

सवैया

छोटो सौ वेश अपूरब पेखत, लोइन लोइनि के न अघानै।
घेरि नचै चहुँधा पुर-बालक, लै बलि भूप के आँगन आनै॥
देखि हँसी बलिराजवधू सब भोजन को कछु देउ बखानै।
पावन मूरति वामनजू सुनि बैननि नैननि ही मुसक्यानै॥८॥

(३) शोक स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

इष्टनाश लखि, सुनि, सुमिरि होत जु मनोविकार।
शोक सु थाई भाव है, करुना रस निरधार॥६॥

यथा—

सवैया

शम्भु बसी करिबे कौ सुरेसहिं काम पठायो, है काम महा कौ।
भाल के नैन निभालत ही, जरि पावक पावन भौ तनु ताकौ॥
पीउ विनासन हेतु विषाद, विलोकि मनोभव की अबला कौ।
रोष भयंकर में उपज्यौ, जिय अंकुर संकर के करुना कौ॥१०॥

(४) रिस स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

वैरि पराभव तें भयौ जो आनँद प्रतिकूल।
मन-विकार सो रिस यहै, जानि रौद्र रसमूल॥११॥

यथा—

सवैया

जानकी कों हर लै गयौ राखस नीच न आपनी मीच निहारी।
ताप-तप्यौ हियरा सियरातु न जो सिय राघव पास न धारी॥
राम को सेवक रंक हौं आजु निसंक उलंघतु वारिधि-वारी।
रावन अंग कलक समेतहि पंकज-सी लखौ लंक उखारी॥१२॥

(५) उत्साह स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

सौरज, दान, दया, धरम लहि आनँद अनुकूल।
मन-विकार सु उछाह है वीर रसहि हिय-फूल॥१३॥

यथा—

उठत अंग रोमंच सुनि, रन-दुंदुभि-धुनि घोर।
उर धीरज-अंकुर मनौं उग्गि उठे चहुँ ओर॥१४॥

(६) वत्सल स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

छोह भरी मुख तोतरी सुनि बतियाँ, लखि केलि।
सुत-सनेह वत्सल रसहिं थाई आनँद बेलि ॥१५॥

यथा—

कान्हर कौ विहसत वदन निरखि जसोमति मात।
गहि अँगुरी अंगन चलत अंगनि सुख न समात ॥१६॥

(७) भय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

नृप गुरु मुनि अपराध लहि, विकृत जीवरव लेखि।
उपजत मनोविकार कछु, भय थाई तहँ देखि ॥१७॥

यथा—

सवैया

दल भार अपार यौ राम के संग बढ़ै मनौं सिंधु तरंग बढ़ै।
बलवंतनि सौ रनजीति कहानि "कुमार" कहाँ न जहाँन पढ़ै॥
सुनि गाजत पावस की रितु अंबर घोर घनाघन जोर मढ़ै।
अरि-वग्ग यों दुग्ग दरीनि दुरे भ्रम-भीत से भीतरते न कढ़ै ॥१८॥

(८) घिनि स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अशुचि वस्तु सुनि, लखि, सुमिरि उपजत मनोविकार।
घिनि थाई सो जानिये, रस बीभत्स अधार ॥१९॥

यथा—

मारि दुसासन, फारि उर, रुधिर अंग लपटाइ।
आवत भीम, तिन्है मिले धर्मराज दृग नाइ ॥२०॥

(९) विस्मय स्थायी भाव-लक्षण

दोहा

अचिरज की कछु बात लखि, सुनि मन विकृत जु होत।
विस्मय थाई भाव सो अद्भुत रसहिं उदोत ॥२१॥

यथा —

सवैया

सारद पूनौ जुन्हाई विसारद पारद से छवि-पुंज पसारे।
चारु "कुमार" सबै छिति छावत छीर पयोनिधि-पूर विचारे॥
चंद अमंद विलोकि तहाँ सब लोक के लोइन कौतुक धारे।
रीझे न एक त्यों मेरे विलोचन तो-मुखचंद निहारनहारे ॥२२॥

(१०) शमस्थायी भाव-लक्षण

दोहा

तत्व-बोध, दुख, दोष लहि जग अनित्य पहिचानि।
उपजत मनोविकार कछु शम थाई हिय मानि ॥२३॥

यथा—

सवैया

जा सनबंध तें बंधु गनै निज, अंध ! यहौ तन नाँहि ठयौ है।
होत "कुमार" न क्यौ निहचिन्त, सुखी जन मे जनवादि गयौ है॥
चेततु चेतन रूप इतै सुमिरे विष ये विष मोह छयौ है।
रे चित ! चंचल वंचक तू, जग चुंबक बीच को लोह भयौ है ॥२४॥

इति स्थायीभाव-व्यंग

संचारी भाव-व्यंग्य—

दोहा

रति प्रभृतिक थाईनि मे उपजत मिटत सुभाव।
यातैं संचारी कहे निर्वेदादिक भाव ॥ २५॥

तथाच भरत —

श्लोकाः

निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूयामदश्रमा ।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्तामोहो धृतिः स्मृतिः ॥ २६ ॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा ।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्रापस्मार एव च ॥ २७ ॥
स्वप्नो विबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्था तथोग्रता ।
मतिर्व्याधि स्तथोन्माद स्तथा मरणमेव च ॥ २८ ॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः प्रयान्ति व्यभिचारिताम् ॥ २९ ॥

(१) निर्वेद-लक्षण

दोहा

तत्त्व-बोध, आपत्ति, दुख, ईर्ष्यादिक तें आनि।
निज चिंता चित-वृत्ति जो, सो निर्वेद बखानि ॥ ३० ॥

यथा—

सवैया

तिय-हेत मँगाइ मनोरम फूल बिसाल है माल रसाल रची।
घनसार घनौं घसि कुंकुम, चंदन, चंदमुखी-कुच खौरि खची ॥

सुधि सेवा सिपारसि नाम उचारि "कुमार" विचारत बुद्धि नची ।
जड हौं कछु चित्त रचाइ यहै हरिकी अरचा चरचा न रची ॥३१॥

(२) ग्लानि-लक्षण

दोहा

आधि, तृषा, रति, प्रभृति जो लहैं गहै बल-हानि ।
कछु मलीन चित-वृत्ति जो, सोई कहियतु ग्लानि ॥ ३२ ॥

यथा—

सवैया

जानै कहा ? नवला अबला, अबलाजन जो छल रीति करी है ।
भोरतें साँझ "कुमार" त्यौं साँझ तें भोरलौं जागि जगाई खरी है ॥
पौढ़ि रही परजंक न जागति, मोहू सो लागति रोष भरी है ।
लाल ! भली यह बाल मली अब मालती-माल-सी हाल परी है ॥३३॥

(३) शंका-लक्षण

दोहा

जो डर जिय अपराध को संका-भाव सुमानि ।
वदन सोख वैवर्न्य तहँ, पार्श्व-विलोकन जानि ॥ ३४ ॥

यथा—

सवैया

हौं तो घरी घर तें इत भोरहि, गोहरे गाइ दुहावन आई ।
आपनें स्वारथ ही के अहीर ! न जानौ "कुमार" जु पार पराई ॥
घेरु घनौ ब्रज गाँव को जानत जानन देहु, करौ मनभाई ।
लागि कपोलनि क्यौ दुरिहै यह जागी रदच्छद की अरुनाई ॥३५॥

(४) असूया-लक्षण

दोहा

पर-उतकर्ष न चित सहै, यहै असूया भाव।
दोष-दृष्टि दृग-अरुनता लहि तहँ रोष सुभाव ॥ ३६ ॥

यथा—

सवैया

एक समैं ससिसेखर के सिर चंद्र-कला लखि रोष भुलानी।
है निज प्यार की प्रीतम के यह प्यारी "कुमार" सिरै सनमानी ॥
बात कही न कछू, है रही गहि मौन, लही नहि सीख सयानी।
पाइ परै पिय, यौं गहि मान अयान सुभाइ रिसानी भवानी ॥३७॥

(५) मद-लक्षण

दोहा

सुख संमोह दसा कछू मद जो मादक खाइ।
दृग घूमत, अध वचन तहँ, हसित रुदित हरु भाइ ॥३८॥

यथा—

सवैया

गुन-गौरि अहै मद जोबन रूप के तोमें "कुमार" भरे सब है।
तुव घूमत से सहजै दृग-कंज लसै अति मंजु ललामी गहै ॥
सु इतेपर मादक खाइ कछू सखि आनँद बैननि भूलि कहै।
यह रूप तिहारे निहारनहारेई ह्वै मतवारे-से भूलि रहै ॥३९॥

(६) श्रम-लक्षण

दोहा

रति, गति प्रभृति अयास तैं चित्त-खेद श्रम लेखि ।
स्वेद, साँस, निद्रादि तहँ, तृषा शिथिलता देखि ।।४०।।

यथा—

सवैया

हेली गई तुहिं आज अकेलियै साँझ समै जल-केलि तरंग में ।
रैन लौं आवत गेह "कुमार" सम्हारति है न उसास उमंग में ।।
छूट गयौ कुच कुंभनि कुंकुम, काँपति थाकि रही सब अंग में ।
जानिये नीर अन्हाई किधौं श्रमनीर अन्हाई कन्हाई के संग में।।४१।।

(७) आलस्य-लक्षण

दोहा

जागर, श्रम गति प्रभृति तैं गर्भादिक तैं आनि ।
होइ जु जिय असमर्थता सो आलस पहिचानि । ४२।।

यथा—

सवैया

भोर निहारत भामिन की छबि, डीठि लगी गहि एकटकी है ।
द्वार लौं आइ हरैं पग धारि "कुमार" निहारिये हारि जकी है ।।
प्रीतम-संग में, प्रेम-उमंग में, केलि के रंग में, जागि छकी है ।
आधे रहे कहे आनन बैन हैं, नैन हैं कातर, गात थकी है ।।४३।।

(८) दैन्य-लक्षण

दोहा

दुख, दारिद, बिरहादि तें जिय न ओज अधिकात ।
दैन्य भाव तहँ जानिये, ताप नैनजल-पात ॥४४॥

यथा—

सवैया

लूट्यौ सौ गेह, घनौ बरसै घन, तेसोइ दारिद दीह सतावै ।
सासु जरा-जुर-जोर सों जीरन, वीर ! न कोउ सहाइ सुभावै ॥
प्रान-पियारे बिदेस पयान "कुमार" रच्यौ, न अजौं घर आवै ।
यों बिन भीजिये ठौर बिसूरि वधू दृग-नीरद नीर भिजावै ॥४५॥

(९) चिंता-लक्षण

दोहा

इष्ट बात पायै बिना ध्यान सुचिता लेखि ।
साँस, ताप, आँसू प्रभृति तन-कृशता तहँ देखि ॥४६॥

यथा—

सवैया

ध्यावै गिरीसहि तू गुनगौरि ! सुजानिये ह्वै गई पीउमई है ।
आँसू-प्रवाह उमंगत नैननि, गग-तरंगनि धार ठई है ॥
तापस-चार बिचार "कुमार" यहै दृग-पावक झार छई है ।
गोरे कपोलनि मे दुति-पाँति कलाधर कान्ति की भाँति भई है ॥४७॥

(१०) मोह-लक्षण

दोहा

भय, विषाद, विरहादि तैं नहिं जु तत्त्व-निरधार।
सोई कहियतु मोह तहँ, भ्रम संताप संचार ॥४८॥

यथा—

सवैया

गावत गीत, न भावत मीत है, भीत मनौ पट पीत बिसार्यौ।
बोले न बैन, बजावे न वेनु, यौं जागत जामिनि जामनि चार्यौ॥
नंदकुमार है भूल्यौ सबै सुधि, मार "कुमार" कहा करि डार्यौ?
बैरिनि बंक विलोकि निसंक भल्यौ व्रज गाउँ अतंक है पार्यौ ॥४९॥

(११) धृति-लक्षण

दोहा

क्रोध, लोभ, भय, मोह मे जिय-दृढता धृति जानि।
वच-हुलास, सुख-पूर्णता, ज्ञान, धैर्य तहँ मानि ॥५०॥

यथा—

अहि भूषन, भख गरल, गथ भसम, बसन गज खाल।
विषय-तृषा जगदीश को बस करि सकै न हाल ॥५१॥

(१२) स्मृति-लक्षण

दोहा

संसकार-भव ज्ञान जो सो स्मृति भाव बताइ।
सदृश ज्ञान चिंतादि तहँ, पूरब अनुभव ल्याइ ॥५२॥

यथा—

सवैया

न्यौते गए कहुँ देखि "कुमार" झरोखे में झाँकत ओट अली की।
सो मुसक्यानि सनेह की बानि न भूलै, अजौ चित तें हित ही की॥
नैन बिसाल रसाल लखी, तन ओढ़े दुसाल मसाल-सी नीकी।
मेरे भई हिय मे विधि-अंक-सी बंक चितौनि मयंकमुखी की॥५३॥

(१३) व्रीडा-लक्षण

दोहा

लाज पराजय प्रभृति तें गनिये व्रीडा भाव।
दृग-छिपाव सुर-भंग हरु तँह, अति सलज सुभाव॥५४॥

यथा—

सवैया

संग रमै रति-संगर मे अबला नवला गहि लाज की सैनी।
भूषन के खनके परजंक ससक ह्वै अंक दुरै पिकबैनी॥
बीच भुजानि उरोज सरोज—कली-से दुराइ रहै सुखदैनी।
नूपुर को गहि राखति है करवारिज सो बरवारिजनैनी॥५५॥

(१४) चपलता-लक्षण

दोहा

राग, द्वेष, क्रोधादि तें अति उताइली लेखि।
भाव चपलता है तहाँ, निंदा, कटुबच, देखि॥५६॥

यथा—

सवैया

नाम सुनै अरि कंपै सुनै अरि है उठि धावत रोष छए ही।
जुद्ध विचार प्रचार "कुमार" सकै लखि कौन कमान लए ही॥
जानिये नाहिं तुनीर तैं लेत न लागत हूँ पर पार गए ही।
राम के बान प्रमानि परै दल दानव के बिन प्रान भए ही॥५७॥

(१५ हर्ष लक्षण)

दोहा

इष्ट-लाभ, गुरु नृप कृपा-भव सुख, जानौ हर्ष।
दृग-प्रसाद, हितवचन, तहँ तन-रुमंच उतकर्ष॥५८॥

यथा—

कवित्त

फरकत वाम-भुज-मूल, अनुकूल वाम-
लोचन, उरोज अंग सगुन बताइ है।
फूलत रसालनि बिसाल धरैं सौरभ को,
हरै हरै आवत सुखद सीत बाइ है।
पंचम अलाप ख्याल कोकिल खुसाल हाल,
गावति भावति बोलि लालन कों ल्याइ है।
हेली हिय अंतर निरतर उछाह बढ़्यौ,
आवत वसंत आजु कंत घर आइ है॥५९॥

(१६ आवेग-लक्षण)

दोहा

राज, अगिन, जल, प्रभृति भय संभ्रम कहि आवेग।
सुख, दुख, इष्ट, अनिष्ट तैं तहँ चित-हित उद्वेग ॥६०॥

यथा—

सवैया

आगि लगी निसि लागै कहूँ भय भारी भरी नर नारि भुलानी
काहू को नेक रही न सवाँर "कुमार" कछू सुधि सार न जानी ॥
ताही समै पिय प्यारी प्रबीन नवीन मिले रसकेलि सुहानी।
सींचत पानी न आगि बुझानी सो त्यौं इनकी बिरहागि बुझानी ॥६१॥

(१७ जडता-लक्षण)

दोहा

इष्ट, अनिष्ट, लखै, सुनै, जिय जो सुधि बिन होय।
कहिये जडता तहँ नयन-निमिष न मुख - वच जोय ॥६२॥

यथा —

सवैया

है सियरी सियरे उपचार खरे उपचार खरो तन तावै।
जानौ खरो सियरौ न कछू कहु कैसे "कुमार" हिये सुधि ल्यावै॥
प्यारी की देखिये दीन दसा, कहुँ को अबही हरि सौं कहि आवै।
बोलत बैन नहीं, पल चैन नहीं, पल नैननि नेकु लगावै ॥६३॥

(१८ गर्व-लक्षण)

दोहा

गुन, सरूप, बल, कुल प्रभृति मद कहियतु है गर्व।
अविनय आलस प्रभृति तहँ अन्य निरादर सर्व ॥६४॥

यथा—

सवैया

गोरस बेचै गरूर भरी तन गोरी गहीली खुले अचराई।
सुंदर ठौनि उठौनि उरोजनि जोवन ओज की रोज भराई॥
भौह मरोरि हँसै मुख मोरि "कुमार" निहारि हरै हियराई।
घालै सुईखन तीखन तीर से, पीर करै न अहीरि पराई ॥६५॥

(१६ विषाद-लक्षण)

दोहा

जो अनिष्ट-सदेह जिय, सो विषाद गनि भाव।
चिता चाह सहाय की तहँ गनि विविध उपाव ॥६६॥

यथा—

सवैया

रोकतु है मग नंदकुमार "कुमार" सु क्यौं कुल-कान रहै री।
छैल छबीलो छकै छबि मे अब नाजन क्यौं अब लाज लहै री॥
मोहि रहै अली मोहि निहारि सराहत चाहत बाँह गहै री।
ताप तयौ हिया पाप भयौ कहा आपको आपनो रूप यहै री ॥६७॥

(२० औत्सुक्य-लक्षण)।

दोहा

खन बिलम्ब नहि चित सहैं, सो उतसुकता मानि।
इष्ट-चाह, सुमिरन प्रभृति अँग-आलस तहँ जानि ॥६८॥

यथा—

पिय - आगम वितयौ प्रथम - सुख मंगल विधि वाम।
सरबरबस तौं दूसरौ भयौ दिवस को जाम ॥६९॥

(२१ निद्रा भाव प्रसिद्ध है)

यथा—

सवैया

केलि के मंदिर सुंदरि सोने की बेली-सी सोवै नवेली सुहाई।
चारु "कुमार" भुजा उर सोभ विलोकन लोभन जानि जगाई॥
नील निचोल के अंचल मे इमि गोल कपोलन की दुति पाई।
ज्यौं जमुना-जल के प्रतिबिम्ब परी झलकै शशि की छबि छाई॥७०॥

(२२ स्वप्न)

यथा—

सवैया

कैसे कहौं निसि को अपनौ सपनौ सखि! नाँहि कह्यौ कछु जाई।
हौं ब्रजगाँउ गली चली जाँउ गयौ कितहूँ मिलि मीत कन्हाई॥
हौ तो "कुमार" लजाइ रही दुरि छैल छबीले सो जान न पाई।
छैंकि छुई छतियाँ छल सौ,बल सौ भुज भेंटि,हिये गहि लाई॥७१॥

(२३ बोधजगिवो)

यथा—

सवैया

प्रात जगी अलसात विलासिनि, रैन रमी रति - रंग घनेरै।
घूमत नैन "कुमार" घनी छबि छाइ रही न छुटे मन मेरै॥

बाँधति केस दुवौ भुज सौं, गहि यौं मुख-कांति लखी दृग फेरै ।
चंदहि घेरै घनौ तमजाल, मनौं तम को चपला-जुग घेरै ॥७२॥

(२४ अमर्ष-लक्षण)

दो०।

वैरि - अहकृति - नास की चाह, अमर्ष प्रमानि ।
निंदा, तर्जन, सिर - चलन, नैन - अरुनता जानि ॥७३॥

यथा—

सवैया

कीन्हौ महाअपराध है तात को घात को जी मे गन्यौ कछु त्रास न ।
हौ दुजराज हौ राम अकेलै करौं सब छत्रिय वैरि-विनासन ॥
तौलौ जगौ जुगुनू-गन से गन वैरिन के, लघु तेज प्रकासन ।
जौलौ प्रचंड प्रभाकर-सौ कर सो न लियो फर सा पर-सासन ॥७४॥

(२५ अवहित्था-लक्षण)

दोहा

आकृति वचन छिपाइबौ गनि अवहित्था भाव ।
सकुच अन्य दर्शन तहाँ, मिस चेष्टादि सुभाव ॥७५॥

यथा—

प्रिय संगम रति-रंग सुधि दई भई जो राति ।
गनै नौल तिय, कौल की पखुरी खरी लजाति ॥७६॥

(२६ उग्रता)

यथा—

सवैया

तोर्‌यौ सरासन सोर सुनै इत आवत राम ये रोष महारत।
लोहू के तालनि तर्पन के अजहूँ नहि छत्रिय वैदि पिसारत॥
दारुनधार कुठार हनें अति दारनि के उर-दारक दारत।
जानी नहीं जिय नैंकु दया, निज दीन महा जननी कों सँघारत॥७७॥

(२७ मति-लक्षण)

दोहा

ज्ञान, शास्त्र, गुरु-नय प्रभृति उपदेशादि विचारि।
जो यथार्थ निरधार जिय, सो मति भाव निहारि॥७८॥

यथा—

कवित्त

एकै यह केसव कलेस-हर सबही कौ,
स्वारथ कौ सारथ न साथी देह साथ के।
कहत "कुमार" हरि जग को पालनहार,
चार्‌यौ वेद आगम गवैया गुन-गाथके॥
जैसे नीकी जोति जिमी, वीज नाखि राख्यौ किन,
सबै अकारथ बिन बरखेते पाथके।
रचत अकाथ पुरुषारथ उछाह केतौ,
होइगो निबाह एक हाथ रघुनाथ के॥७९॥

यथाच—

सवैया

संकर सेस विरचि "कुमार" सबै वस जासु भये भ्रुकुटी में।
कोटिनि यौ बरह्मांडनि की घटना प्रकटी, मिटी जा चुकुटी मे॥
सो परमानँद ब्रह्म लियौ पहिचानि ही लाल लिये लकुटी मैं।
गोपवधू-सग देख्यौ पर्यौ दुर्यौ पीतपटी मे निकुंजकुटी मे॥८०॥

(२८ व्याधि-लक्षण)

दोहा

ज्वर वियोग वातादि तै जिय-दुख, व्याधि बताइ।
कप, शोष, कृशतादि तहँ तन-बाधा बहु भाइ॥८१॥

यथा—

सवया

ज्यौ ज्यौ गुलाब को नीर उमीर पटीर लगावत जाम बिहानै।
त्यौ त्यौ घरी घरी होति खरी, मन त सियरी तन को यहु जानै॥
वेदन को सब भेद न पावत वैद निवेदन कै कै भुलानै।
आऐ तिहारेई ताप घटै कछु जानत कान्ह! हौ न्यान निदानै॥८२॥

(२९ उन्माद-लक्षण)

दोहा

काम, शोक, भय प्रभृति तै चित-भ्रम कहि उन्माद।
जानि तहाँ रोदन, हसन, वृथागमन, बकवाद॥८३॥

यथा—

सवैया

रोचत नाँहि कछू न सकोचत मोचत है जल लोचन दोऊ।
बात भली अली जानि "कुमार" कही इतही न सही किन कोऊ॥
जानत नाँहि कछू पहिचानत आन को आन बतावत सोऊ।
नाम तिहारो लै बोलत डोलत त्यौ कहिये तो कहा कहै कोऊ ॥८४॥

(३० त्रास-लक्षण)

दोहा

अकस्मात मन छोभ जो सोई कहियतु त्रास।
स्वेद, कंप, सुर-भग तहँ तन-रोमंच प्रकास ॥ ८५ ॥

यथा—

सवैया

केलि के गेह अकेली गई, छल जाने नवेली कहा? सखी प्यारी।
छैल छबीलै गही उत बाँह "कुमार" डरी हहरी कँपि भारी॥
बोली बुलाये, न डोली डुलायेहु, खोली खुलाये न घूँघट सारी।
कोरि निहोरि निहोरि रहै, पिय ओर नहीं मुँह मोरि निहारी॥८६॥

(३१ वितर्क-लक्षण)

दोहा

संशय की जिय-बात कछु, सो वितर्क गनि भाउ।
भ्रू अंगुलि सिर चलन तहँ, लखि निषेध ठहराउ ॥ ८७ ॥

यथा—

सवैया

हेली ? तिहारेई संग उमाह मे माह मे प्रात कलिंदी ह्वै आई।
धोखौ बढ़्यौ जिय जानि कुमार अहे परसे यह अंभ-तताई॥
धूम की धार "कुमार" निहारि अरी! किन जो वहु ओर तै छाई।
कौने भली चलवीचिनि माँह अली! जल बीच मे आगि लगाई।८८॥

(३२ अपस्मार-लक्षण)

दोहा

अपस्मार कहि भूत - ग्रह - शोकादिक - आवेश।
कम्प, फैन मुख, अँग निबल, तहँ सुधि को नहि लेश॥८९॥

यथा—

चल अंगुलि दल सिथिल बल मुंचत फैन प्रसून।
तरुवर पवन-प्रचंड-हत गिरत मनौ दुख दून॥९०॥

मूर्च्छा याही में है।

(३३ मरण प्रसिद्ध है)

यथा—

सवैया

तजि प्रान गिर्‌यौ रनभूमि मे रावन, बाहु महाबल मोह छकै।
फिरि जीवन जानि कै मीच-कथा नभ बीच बखानत सिद्ध जकैं॥
कर तीषन पूखन ज्यौ न पसारत, मारुत छ्वै न सकै अलकैं।
सुरलोक ससंक विमानिनि अंक न होइ निसंक निहारि ससंकैं॥९१॥

दोहा

संचारी तैतीस सब कहे भरतमुनि ल्याइ।
गुपत क्रिया साधन जु छल भाव कहे कविराइ ॥ ६२ ॥

सवैया

चंद उदोत अमद गह्यौ निसि, देखि अनंद लह्यौ ब्रजबालनि।
वेश सखी को "कुमार" बनाइ गए नँदनंदन प्रेम रसालनि ॥
राधिका संग सखीगन मे वन मे रचि गेद कदम्ब की मालनि।
कुंज तमालनि के घनजालनि दोऊ गए मिलि खेलत ख्यालनि ॥६३॥

इति संचारी भाव

——:o:——

अथ आंतर भाव

दोहा

विभावादि परिपोष ते थाई कहे प्रधान।
जहँ न पोष तहँ थाइ ये संचारी रस आन ॥ ६४ ॥
ज्यौं थाई तिय पुरुष के प्रीतिहि रति निरधारि।
यहै पुत्र गुरु देव नृप सौति प्रीति संचारि ॥ ६५ ॥
ज्येष्ठ प्रभृति मे हास त्यो शोक अचेतन मोँह।
पुत्रादिक पर क्रोध कहि कार्य प्रभृति उछाह ॥ ६६ ॥
मृग-छौनादिक नेह त्यौं वीर प्रभृति भय लेखि।
हिंसक में घिन, शम खलनि, ज्ञानी विस्मय पेखि ॥ ६७ ॥

इति आंतर भाव

——:o——

अथ शारीर सात्त्विक-भाव लक्षण—

दोहा

चित्त सत्त्व गुन को गहै प्राननि मे वह आइ।
प्रान रचत तन छोभ तहँ सात्त्विक भाव गनाइ ॥ ९८ ॥
भूमि-तत्त्वगत प्रान ते स्तभ भाव है होत।
जल ते आँसू, तेज ते स्वेद, विवर्न उदोत ॥ ९९ ॥
वायु-तत्त्वगत प्रान तें देह-कम्प, रोमंच।
प्रलय रचै आकास-गत प्रान हेतु ये पंच ॥१००॥

यथा रसमञ्जर्यां श्लोक —

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्च स्वरभङ्गोऽथ वेपथु.।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका. स्मृता. ॥ १०१ ॥

दोहा

भय सुखादि ते गमन को रोधन स्तम्भ[1] प्रमान।
क्रोध, हर्ष, श्रम प्रभृति ते तन-जल स्वेदहि[2] जान ॥१०२॥
कहि रुमंच सुख, सीत, भय प्रभृतिहि रोम उमग[3]।
वे पथु गनि तन-कंप त्यों,[4] विकृत वचन सुरभंग[5] ॥१०३॥
मुख-छबि आन विवर्नता[6], आँसू[7] दृग-जल जान।
सकल चेष्टा - हीनता प्रलय भाव[8] पहिचान ॥१०४॥

(१ स्तम्भ) यथा—

सवैया

बाल नवेली अकेली पठाइ सहेली चली, पिय बाँह गही है।
कीन्हौ गयौ सिर-कम्प "कुमार" नहीं मुख नाहिनै नाहि कही है ॥

हाथ छुयौ न, छुटायौ न अचल, चचल नैननि लाज लही है।
चन्दमुखी ब्रजचन्द के आनन चन्दहि न्यात निहारि रही है॥१०५॥

(२ स्वेद) यथा—

दोहा

छ्वै कपोल, स्रोननि धरी मजुमंजरी लाल।
दूजी जल-कन-मंजरी, तिय-मुख छाजति हाल॥१०६॥

(३ रोमंच) यथा—

परी तान पिय-गान की तिय काननि अनकूल।
रोम-कदवनि फूलि भौ तन कदंव को फूल॥ १०७॥

(४ स्वरभंग ५, वेपथु, ६ वैवर्ण्य) यथा—

सवैया

हेली गई पिय-बाग अकेलियै देखन केलि की कुंज सुहाई।
सीकति-सी थकि-सी छकि-सी रही काँपति गातनि ताप तताई॥
आजु निहारयौ "कुमार" कहूँ घन-से तन सौ मन-मीत कन्हाई।
तेरी घनी छबि मे छनमेछबि आन है आनन चन्द मे छाई॥१०८॥

(७ अश्रु) यथा—

दोहा

मुकत-माल के हाल लखि पियहिय अंक बिसाल।
ललित होत सखि! सौति-हिय द्दग जल-मुकतामाल॥ १०९॥

(८ प्रलय) यथा—

दोहा

छकी प्रेममद सौ, थकी परि सुख-सिन्धु अथाह।
सोई, माई मोह मे, गोई पिय हिय-मॉह ॥ ११० ॥

कोऊ जृम्भा नवम भाव कहत हैं।

यथा—

दोहा

बाल निरखि नँदलाल-मुख खरी महल अँगिराति।
रंगभरी मोरति तनहि भुज-जुग जोरि जॅभाति ॥ १११ ॥

इति सात्त्विक भाव।

अथ अनुभाव

दोहा

अनुभविये रस भाव जिहि, तेई कहि अनुभाव।
भुज-उतछेप कटाच्छ हरु तनु मन वचन सुभाव ॥ ११२ ॥
कायिक, सात्त्विक, मानसिक त्यौ आहार्य विचारि।
कहे सबै अनुभाव हैं जानि लेहु विधिचारि ॥ ११३ ॥
कटाच्छादि कायिक कहे, हृदय जुसात्त्विक कार्य।
आनन्दादिक मानसिक, स्वांग कहौ आहार्य ॥ ११४ ॥
भुज आच्छेप कटाच्छ हरु तिय के है अनुभाव।
ते निरखत नायक, हिये गनि उद्दीपन भाव ॥ ११५ ॥

विषय-भेद ते होत है, यौ विभाव अनुभाव ।
तेई अंग ह्वै और के, है सचारी भाव ॥ ११६ ॥

(१) शृङ्गाररसानुभाव

दोहा

लहि प्रसाद दृग, मधुर वच, धृत प्रमोद, मृदु हास ।
अनुभविये शृंगार रस बहुविध अंग-विलास ॥११७॥

यथा—

कवित्त

सौंधे सन्यौ वागौ मन प्रेम-रस पागौ कित ,
चित अनुरागौ बस भये बार बारहौ ।
पलन ही नैननि कहत हौन वैननि पै ,
रसभरी सैननि लहत सुख-सार हौ ॥
नेह सरसात हौ "कुमार" अरसात, मद
मंद मुसक्यात बलि होत बलिहार हौ ।
बेर-बेर चाहि तुम हेरि-हेरि रीझन हौ ,
फेरि-फेरि हमसौं करत फेर-फार हौ ॥११८॥

यथाच—

सवैया

झाँकी खरी खन खीझति रीझि "कुमार" रिझाइ हियौ तरसावै ।
भौंह मरोरति, मोरति है तन, अंग अनंग भरी दरसावै ॥
छैल कितौ छल छैवै को कीन्हो, छबीली न छाँह तहाँ परसावै ।
डीठि हनै तिरछी बरछी-सम सूधीचितौनि सुधा बरसावै ॥११९॥

(२) हास्यरसानुभाव

दोहा

विकृत दृष्टि, मुख, गमन लखि विकृत नाम, वच, वेष ।
विकृत हँसी लहि, हास्यरस अनुभव रचौ विशेष ॥१२०॥

यथा—

थूल बाल बनि पूतना-पय पीवत नँदलाल ।
ताहि पुकारत हाल लखि हँसत ग्वाल दै ताल ॥१२१॥

(३) करुणरसानुभाव

दोहा

मोह, रुदित, उर-घात छिति-पात प्रभृति दुख बात ।
अनुभविये रस करुन तहँ, विधिनिंदा उतपात ॥१२२॥

यथा—

सवैया

भाल के लोचन-पावक-ज्वाल जर्यौ पिय पेखति मोह छयो है ।
लै लै उसास परी छिति मे, छन हाथ हन्यौ हिय सोक नयो है ॥
देखि घनो जु मनोज-वधू को विलाप मनौ रवि ताप तयो है ।
मोंचत आँसू दसौदिसिमे निसिमे विधुते मिस ओस ठयो है ॥१२३॥

(४) रौद्ररसानुभाव

दोहा

भुज हथ्यार आच्छेप लहि, भ्रकुटि कंप रिस भाव ।
अधर-दंस कर-मलन हरु गनत रौद्र अनुभाव ॥ १२४ ॥

यथा—

कवित्त

रामभुज देख्यौ खग्ग जग्गत समर अग्ग,
रचत समग्ग वैरि-वग्ग कतलान है।
संकियतु विषम भयंकर भुजंग यहै,
अरि-प्रान पवन को जाको खान पान है॥
खन मे खुलत खल-मुख पानी सोखि लेत,
ताही तै "कमार" भर्‌यौ पानिप अमान है।
दीहदल दानवनि दलत कृपा न याके,
याही तें जहान मे, कहान मे, कृपान है॥ १२५॥

(५) वीररसानुभाव

दोहा

लहि सौरज. धीरज, दया, धर उछाह, परभाव।
वैरि-निरादर विनय, धृति, वीर रसहि अनुभाव॥१२६॥

यथा—

सवैया

मंदिर अंदर में दिकपाल दुरे रन जासो पुरंदर हार्‌यौ।
संगर कों, सुत रावन को सोई आवत संग सजे दल चार्‌यौ॥
साँझ समैं इमि फौज मे सोर सुनै उर-जोर उछाह है धार्‌यौ।
रामजू साधत संध्याविधान नहीं.क्रम ध्यान कोन्यान बिसार्‌यौ॥१२७॥

(१ दयावीरानुभाव) यथा—

दोहा

व्याकुल गोपी ग्वाल लखि दए दयामय नैन।
लख्यौ न गिरिधर कंध करि गिरत पीत पट बैन ॥१२८॥

(२ दानवीरानुभाव) यथा—

सवैया

मीत पुरातन बाम्हन दीन को देखि मिल्यौ हसि दूर ते ज्यौंही।
धूरि भरे पग धोए, दयौ निजु आसन, बैठि गए ढिग भौंही ॥
तान मुठी भखि तंदुल तीन हूँ लोक-विभौ दई चौथी को त्यौं ही।
हाथ गह्यौ हरि को हरि-वामा सुदामा को दीबे रही अब हौं ही ॥१२९॥

(६) वत्सलरसानुभाव

दोहा

सिर-चुंबन सुत अंग सँग दरस परस अभिलाष।
वत्सल मे दृग-जल प्रभृति अनुभावहि को भाष ॥ १३० ॥

यथा—

सवैया

बैन सुन्यौ वनते हरि आये बने नट-वेष की भाँति गही है।
मात जसोमति द्वार ही दौरि गई, सुत देखन कौ उमही है ॥
कान्हर को मुख चूमति, घूमति, लाइ हिये, निधि मानौ लही है।
आँचर पोछति गोरज-धूलि है, फूलि हिये सुख भूलि रही है ॥१३१॥

(७) भयानकरसानुभाव

दोहा

सिर दृग कर पग कंप लहि तालु कंठ मुख सोख।
भीति-रीति अनुभवत हैं भय रस मे परिपोष ॥ १३२ ॥

यथा—

सवैया

दोउ जुरे दल दीह दिलीस, के धीरन के हिय धीरज छाजै।
बाढ़ी तराभरी तोपनि की विकराल प्रलै के मनौ घन गाजै॥
सूखे से आनन दूखे से रूखे से कायर कूर कपै तन लाजैं।
सुंड,सकोरि जजीरनि तोरि,डरे, विडरे, भभरे,गज भाजै॥१३३॥

(८) बीभत्सरसानुभाव

दोहा

मुख दृग नाक सकोरिबौ नेन घूमिबौ लेख।
तुरत गमन तें अनुभवत, रस बोभत्स विशेष॥ १३४॥

यथा—

सवैया

रनभूमि हनै अरि-जुत्थ घनै कटि लुत्थ कराल परे दरसै।
भखि गिद्ध सृगालनि अध्ध किये चुनि चौंच न ऐंचत आँतन सै॥
जिहि रूप निहारत वारत प्राननि लोचन लोभित ह्वै तरसै।
तिन देहनि खेह भरी उघरी दुरगंध सरी लखि लोक त्रसै॥१३५॥

(९) अद्भुतरसानुभाव

दोहा

साधुवाद, उल्लास दृग, लहि प्रसाद, गति रोध।
तन-रुमंच सुरभंग, ते कीजे अद्भुत बोध॥ १३६॥

यथा—

सवैया

भीषम द्रोन महारथ से पुरुषारथ सौ भिरे भारत माहीं।
पूरन वैर सों पूरौ पराक्रम कीन्हौं है पारथ कर्न तहाँ हीं॥

जुद्ध-प्रवीनता जोहि दुहूँन की, मोहि रहे सिव सिद्ध महाँ हीं।
देवन के दृग रीझे विशेष, अजौ अनिमेष ह्वै लागति नाहीं॥१३७॥

(१०) शान्तरसानुभाव

दोहा

जग अनित्यता, त्याग, मति, गुरु-उपदेश प्रचार।
कहे शान्त अनुभाव है, वेदान्तादि-विचार ॥ १३८ ॥

यथा—

कवित्त

जनम गवाँयौ वादि जन तू सवादि विष,
विषयनि मादन विषादहू अघाइगौ।
कहत "कुमार" सनसार है असार ताहि,
मानि सुख-सार अघ-ओघनि हू छाइगौ॥
चंचल वंचक मन रचक न जान्यो कान्ह,
भव-पारावार बीच नीच तू समाइगौ॥
हरिनाम गुन को बिसारि, धारि औगुन को,
घरी घरी बूड़ति घरी सी बूड़ि जाइगो॥ १३९ ॥

इति अनुभाव।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज-कुमारमणिकृते रसिक-
रसाले स्थायिभाव सचारिभाव - अनुभाव-
निरूपणंनामचतुर्थोल्लास॥ ४ ॥

पञ्चम उल्लास

अथ विभाव

दोहा

स्थाइ भाव रामादिगन, सामाजिक जिय आनि।
जे विशेष भावित करैं, ते विभाव पहिचानि॥ १॥
होत जाहि आलम्बि रस, सो आलम्ब विभाव।
रस-उद्दीपन जे करैं, ते उद्दीप विभाव॥ २॥
तहँ नायक अरु नायिका रस सिंगार आलम्ब।
यथाजोग औरै रसहि भनि आलम्ब-कदम्ब॥ ३॥

नायक—लक्षण

दोहा

सब गुन-नेता, निज गुननि बस नेता सब लोक।
सोई नायक जानिये मेटै निजजन-सोक॥ ४॥
त्यागी, छमी, धनी, तरुन, सुन्दर, कला-प्रवीन।
नायक कहि गुन आठ युत संगर-धीर, कुलीन॥ ५॥
थिरता, सोभा, ललितता, गंभीरता, विलास।
तेज, त्याग, गुन-माधुरी आठ सत्वगुन वास॥ ६॥
औरै गुन भरतहि गुनै व्यस्त समस्त विचारि॥
यातें ढीठें शठादि ते भेद होत निरधारि॥ ७॥

सुभ सरीर, नीरज-नयन, गुन-नीरधि गभीर।
पीर-हरन भट भीर मे समर-धीर रघुबीर ॥ ८ ॥

कवित्त

भाग जसुधा को, वसुधा का आभरन पूरौ,
सुधा-पूर, व्रज-वधू - लोचन - चसक कौ।
रूप कौ निधान, रस-कला सावधान महा—
दान सदा जान पर-पीर के कसक कौ॥
कुल कौ मसाल, बलबड वैरी - उरसाल,
पालक "कमार" है दिसाकऊ दसक कौ।
गुन कौ जनैया, निजजन कौ चिन्हैया पायौ,
कुँवर कन्हैया लोक ठाकुर ठसक कौ ॥ ६ ॥

दोहा

धीर शान्त, धीरोद्धतै, धीर ललित निरधार।
धीरोदात्त कह्यौ तथा, नायक है विधि चार ॥ १० ॥

(१) धीर शान्त

दोहा

विद्या-पूरन, ब्रह्मकुल, वीर, सदय हिय माँह।
सम गुन-जुत माधव प्रभृति धीर शान्त है नाह ॥ ११ ॥

(२) धीरोद्धत

दोहा

निजसराह-रुचि चण्ड चित, रन-प्रिय धरि अभिमान।
नायक धीरोद्धत गन्यो, भीम प्रभृति है न्यान ॥ १२ ॥

(३) धीर ललित

दोहा

नहि सराह, प्रिय, सदय हिय, गुनमय, सुचित, सुभाइ ।
धीर ललित नायक गन्यौ युधिष्ठिरादि बनाइ ॥१३॥

(४) धीरोदात्त

दृढव्रत, छमी, गँभीरबुधि, विजयी साचा धीर ।
उत्तम धीरोदात्त गनि, ज्यौ नायक रघुवीर ॥१४॥

(अन्य भेद)

दच्छिन अरु अनुकूल, सठ, ढीठ, भेद ये चार ।
मिलै धीर ललितादि सब सोलह भेद विचार ॥१५॥

(१) दच्छिण

सकल तियनि पर एकसम जाकी प्रीति लखाइ ।
सो दच्छिन नायक गन्यौ रस-बस चतुर सुभाइ ॥१६॥

यथा —

जँह जँह सोलह सहस तिय, तह तँह बसि नँदलाल ।
महलनि महलनि निरखि गति थके देवरिषि हाल ॥ १७॥

सवैया

खेलत कान्ह, कदम्ब चढे लखि गोपी कदम्ब रची मन भाई ।
घेरि चहूँ दिसि माँगतीं फूलनि फूली हिये लहि प्रीति सुहाई ॥
काहू चह्यौ कर-कंकन, हार, विहार को कंदुक काहू बताई ।
फूल बहार के भार भरी इक डार है नंद"कुमार" नवाई ॥१८॥

(२) अनुकूल

दोहा

जासु प्रीति इक तरुनि पर, एकै भाँति बिसेखि ।
सो नायक अनुकूल कहि कवित नृत्य मे लेखि ॥१६॥

सवैया

लाज बड़ी मे गड़ी-सी रहै कहा झाँकिहूँ झाँकत झेरु ठयौ है ।
देखि सुनी तिय आन सुहाति न न्यान तू मोहन मत्र दयौ है ॥
तो बिन देखैं "कुमार" नहीं कल देख्यौ भलौ यह नेह नयौ है ।
नंद कौ नंदन है ब्रजचंद पै ता मुख-चन्द-चकार भयौ है ॥२०॥

(३) शठ

दोहा

रचि अपराधहि तरुनि सों निरपराध-सो होइ ।
कहि प्रछन्न, प्रकाश, इमि शठ नायक विधि दोइ ॥२१॥

ज्येष्ठा कनिष्ठा के उदाहरण मे प्रछन्न शठ है । यौ उदाहरन एसो चाहिये । यथाच—

(१ प्रच्छन्न शठ)

सवैया

रैन जगे कहु भोर पगे किहि और लगे सँग संगम जोऊ ।
प्यारी मनाई मिलाइ दई हौं "कुमार" न प्यार बतावत सोऊ ॥
रीति तिहारी बिहारी न जाने सु प्रीत प्रतीत मिले रहौ दोऊ ।
मो हिय हैं डर न्यान लगै, तिय कान लगै न चबाइनि कोऊ॥२२॥

(३ प्रकाश शठ)

सवैया

वेष सखी कौ बनाइ "कुमार" सखीनि मे खेलत कान्ह दुलारौ ।
रैनि मिल्यौ न मिल्यौ इनही कौ निकुंजनि केतो प्रचार बिचारौ॥
बाँधि भुजानि सौं जान न देहुँगी ब्यौत बन्यौ बलि प्रीतम प्यारौ ।
पायौ दुर्‌यौ चितचोर सु चोर है चोर-मिहीचनि खेलनवारौ ॥२३॥

(४) धृष्ट

दोहा

करि अपराधहि निडर जिय, खीझै, झुकै न लाज ।
नायक ढीठ बताइये बरबस रचै सुकाज ॥२४॥

सवैया

भोर गये लखि रोष भरी तिय अंक दुरैबे को अंक लगाई ।
यों समुझाई "कुमार" कही, निसि जागत जागी नहीं अरुनाई ॥
मेरे बसी मन मे, तन मे, तुम ही हिय मेरे न और सुहाई ।
नैनन मे तुव नैन बसै झलकी दृग अंचल की सु ललाई ॥२५॥

दोहा

पति, उपपति, बैसिक तथा मानी चतुर सुभाइ ॥
उत्तम मध्यम अधम ता नायक बहुत बताइ ॥ २६ ॥
परिनेता तियवस सुपति, परपति उपपति, ठाइ ।
वेश्यारत बैसिक गन्यौ, मानी मान सुभाइ ॥ २७ ॥
क्रिया वचन चतुरा इहीं मिलै सु चतुर प्रमान ।
इक प्रोषित कै तिय मिलित सब पति द्वैविध जान ॥२८॥

परिकीयादि हू में पति शब्द लाक्षणिक है ।

दोहा

उत्तम लेहिं मनाइ तिय-हिय बस रस के काज।
मध्यम तिय-रोषहि रचै, अधम तजै डर लाज ॥२६॥
निज समान वैरी नृपति प्रतिनायक कहि न्यान।
उपनायक भाई, सखा, फौजदार, दीवान ॥३०॥
सेवक, सुभट, विदूषकै अनुनायक पहिचानि।
पण्डित, प्रोहित, गुरु प्रभृति धर्म-सहायक जानि ॥३१॥
विप्र, विदूषक, हास-प्रिय गुन-पारग विट चेट।
पीठमर्द रस-बस तरुनि देइ मिलाइ सहेट ।३२॥

इति नायकविचार।

अथ नायिका-लक्षण

दोहा

नायक के सम गुननि जुत कही नायिका लेखि।
प्रतिनायक, उपनायिका सौति, सखी हरु देखि॥ ३३ ॥
भेद सुकीया, परकिया, सामान्या है तासु।
परिनीता पति-विनयमय परम-धरम सुकिया सु॥ ३४ ॥

प्रत्येक पतिन सो परिणय ते द्रौपदी हू मे स्वकीया-लक्षण है।

पतिव्रता स्वीया

दोहा

परिनेता के बस सदा हिय-रिस कौ नहि ठौर।
पतिव्रता स्वीया सुभनि साधारन है और॥ ३५ ॥

खण्डितादि भेद स्वीया मे मानिवे को प्रतिव्रता जुदी मानिये। **यथा—**

सवैया

बैन न आन के कान परै, नहिं नैननि आन की छाँह गही है।
बोले ही बोलति, डोलति डोलेही, नाह छबीले की छाँह ठही है॥
सूधे सुभाइ, सुधा-सनी बानि, "कुमार" विलास नई यै नई है।
प्रान तें प्यारौ है प्यारे को जानति, प्रानपियारे के प्रान भई है॥३६॥

अन्य स्वीया। यथा—

सवैया

नैन बसे पिय रूपहि मे पिय के रस ही रस बात सुहाई।
'रूसति है तिया प्रीतम सो' यह बात सुनै हू सही नाह ठाई॥
याके "कुमार" सदा प्रिय-प्रेम उछाह की ऊषमता हिय छाई।
मान की सीख सखीनि धरी पै घरी घनसार लौं फेरि न पाई॥३७॥

स्वकीया-भेद

दोहा

मुग्धा, मध्या, प्रोढतिय, स्वीया है विधि तीन।
परकीयहु मे मध्यता तथा प्रौढता बीन॥ ३८॥

आदि पुरान मे नवीन ब्याही पितृगृहस्थित होइ, सो उढा स्वीया चोथौ भेद गन्यौ है। यथा—

सवैया

वेदी के पासहिं, पावक के ढिग पावक कैसी सिखा लगै उज्जल।
भाँवरै देत विदेह-सुता, लखि राम को रूप बिमोहि छकी पल॥
पानि सौं पानि गह्यौ रघुनंदन, यौ कर अंगुलि काँपी है ता थल।
प्रात के वात के लागै सनाल ज्यौं, लाल कमोदिन के दल चंचल॥ ३९॥

याहीको भेद, पति-घर गये नवसगम ते नवोढा है। **यथा—**

सवैया

संग सखी मिलि लै गई केलि के मंदिर सुंदर कान्ति खरी है।
गौने के रैनि मयकमुखी परजक में प्रीतम अङ्क-भरी है॥
प्यारे को हाथ"कुमार" परयौ कहुँ नीबी के छोर त्यों जोर डरी है।
यौ हहरी न धरी थिरता ज्यौ घरी जल ते बिछुरी मछरी है॥४०॥

मुग्धा

दोहा

मुग्धा अतिडर मध्यमा कहि समलज्जाकाम।
लघुलज्जा प्रौढा कही, रति-रस सरस सकाम॥ ४१॥
मुग्धा मे नवमदन, नव—जोवन, अति ही लाज।
भूषन-रुचि, रति-वामता, बरनत सुकवि समाज॥ ४२॥

(१) नवमदना मुग्धा

कवित्त

लोचन प्रवीन, कटि छीन होति छिन-छिन
हीन होति सौति-मति गुन-गन राह मे।
गात सुकुमार, चारु चीकनें, उजार छबि
जाहिर "कुमार" चाह प्रीतम-सराह मे॥
अंगनि मनोज, ओज-सग ही उरोज बढै
रोज बढै रंग पिय-मिलन उमाह मे।
लोग देखि बाल की लजान लगी डीठ दुरि
जान लगी, लाल लखि न्यान लगी चाह मे॥४३॥

(२) नवयौवना मुग्धा

सवैया

देखत प्रीतम को दुरिहू दृग - कज ये पावै विकास घनेरौ।
त्यौ कच कोकनि के जुग सावक चाहै 'कुमार" सकास बसेरौ ॥
जावक सौ रँग, सौति के नैन चल्यो घट तेरो अयान अँधेरौ।
गातनि कैसे दुरायो है जात, प्रभात-सो जोवन रूप उजेरौ ॥४४॥

नवयौवना मुग्धा द्विधा है —

दोहा

जोवन ज्ञात, अज्ञात ते द्वैविध को तँह जान।
सो मुग्धा नवजोवना द्वैविधि बरनि प्रमान ॥ ४५ ॥

(१ ज्ञातयौवना)

सवैया

कंदुक एक लिये कर सुंदर, नन्द-कुमार तिया तन मेली।
हार "कुमार" बनावत ही कर ऊँचे कै फूल की गेद सुभेली ॥
अंचल गौ उर ते चलि त्यो पिय के दृग चंचल देखि नबेली।
नैननि ही मुसक्यानी सखी सु बहौ बरजा करि सैन सहेली ॥४६॥

(२ अज्ञात यौवना)

सवैया

पाइनि मंद गयन्दन की गति, पेखि सखी गन मे भ्रम ठानै।
कान लौ लोचन गौन "कुमार" सु स्रौन धरे जलजात प्रमानै॥
रोमनि राजी बिराजी लखै, रसना मनिनील प्रभा पहिचानै।
जानै न जोवन आपनी देह मे कैसे तिहारे सनेह मे जानै ॥४७॥

(३) लज्जावती मुग्धा

सवैया

सँग प्यारे के चौपर खेलौ, हसौ, सकुचो न कछू सखियाँजन सो।
पिय की मनुहारि करौ, मनुहारि जु चाहती, नारि इलाजन सो॥
लखि भाजि न जैये, सभाजन की जिए लाज न कीजिये साजन सों।
हिय जोरचिहौ हित ता जन सो बचिहो तब मैन के ताजन सों॥४८॥

(४) भूषणरुचि मुग्धा

सवैया

कचुकी सौंधे सनी सुबनी पहिरी चुनरी चटकीली सुरग सों।
दर्पन देखि "कुमार" सरूप सिगार सिगारति प्रीति-उमंग सो॥
एक कही, करि हेली हहा, यह पावै सही करि सोभा तरग सो।
राखति भूपन मे रुचि रंग तौ लाल मिलाउरी सोने से अग सॉ॥४६॥

(५) रतिवामा मुग्धा

सवैया

खोली तनी कितनी विनती सो तऊ अँगियाँ अँग बाहु दुरायौ।
त्यौ पहिरावत हार "कुमार" रच्यौ पियहू अपनो मन भायौ॥
कुंकुम कौ अँगराग रचावत गाढ़े उरोज ज्यौ हाथ लगायौ।
त्यौहू खरे नख-रेखनि प्यारीहू प्रीतम के उर राग बनायौ॥५०॥

(६) वय सन्धि मुग्धा

दोहा

शिशुता मे जोवन जहाँ न्यारौ जानि न जाय।
वय सन्धि मुग्धा तियहि बरनत है कविराय॥ ५१॥

यथा—

सवया

देखि हौ जू इक गोपसुता छबि छूटे नई छन जो लगि जाति है।
गातनि दीपक-सी दुति, सोहति मोहति है, मुरि जो मुसक्याति है॥
यों सिसुताई मे सौने-से अंग "कुमार" नई तरुनाई सुहाति है।
केसरि रंग में ज्यो मिलि सग मे ईंगुर की अरुनाई दिखाति है॥५२॥

विश्रब्ध नवोढा

दोहा

रति-रस सों पिय-सग सो जाके कछु परतीति।
सो विश्रब्ध नवोढ तिय बरनत कविता-रीति॥५१॥

यथा—

कवित्त

सुनि सुनि कान दै तिहारो गुन-गान न्यान
रीझति रिझावति बिहसि अँगराइकै।
अंगनि सिगारिनि कसत आँगै रस पागै
राउरे द्दगनि लागै दुरति लजाइकै॥
जानि अनुराग बाग बेलिनि के देखिबे को
ल्याई हौ लिवाइ, बडे भाग मिलौ आइकै।
भेंटौ अब लाल! हिये अबला लगाइहेम—
बेली-सी अकेली आजु केली-कुज पाइकै॥ ५४॥

मध्या

दोहा

उन्नत जोबन, काम त्यौ बंकवचन, लघु लाज।
बरनत सुरत-विचित्रता, मध्या मे कविराज॥ ५५॥

(१) उन्नतयौवना मध्या

सवैया

चंचल लोचन, अचल मे मुसक्यात, कपोलनि बात सुहाई।
ऊँचे उरोज निहारि चलै, पग मद गयंदन की गति पाई॥
ऐसी लसी नवजोवन संग नवेली के अंग "कुमार" लुनाई।
चूनौ मिलै जिमि मंगली-संग मे रोचन रंग मे रोचि सुहाई॥५६॥

(२) उन्नतकामा मध्या

सवैया

रूप अनूप तिहारो है लाल! सुबाल नवेली कर्यौ दृग अंजन।
ताते कहूँ खन न्यारे न राखति प्यारे तियानि के मान के भंजन॥
जोलौ "कुमार" इते तुम आये हौ, तोलौ तमासो लखौ मनरंजन।
प्यारीके नैन झरोखनि झॉक सपेखे परे पिंजरा जिमि खंजन॥५७॥

(३) वक्रवचना मध्या

सवैया

तैसो सुहात न और कछू चित ज्यौ रसकेलि कलानि की बातै।
कैसे के कीजै "कुमार" घरी घर-काज को घेरि रहै चहुँघातै॥
देख्यो सुहात न द्यौस तुम्है, दिन रैनिहू रैनि बसें जिय जातै।
सुंदर स्याम कहावत हौ, यह रूप है राउरो सॉवरो तातै॥५८॥

(४) लघुलज्जा मध्या

सवैया

कैसे रचो पिय पास विलास "कुमार" हुलासनि को सुख लूटै।
रूप अनूपम देख्यो चहौ सखि! संग को नेह नहीं हिय टूटै॥

मान को मोचन मोहन देखत लोचन को तो सकोच न छूटै।
कौन इलाज करौ इहि लाज को जो बिन काज मनोरथ खूटै ॥५९॥

(५) रतिविचित्रा मध्या

कवित्त

प्रीतम निहोरैं प्रीति-रीति-रस भोरै चंद-
मुखी चित चोरै, रमी सुरति-उमंग मे।
झनक चुरीनि, खन भूषन खनक, मुख
जलकन, बनक झनक अँग-अग मे ॥
छूट्यौ अगराग, टूट्यो लाज को विभाग बाजी
रसना निवाजी कामराजी रनरंग मे।
उरज उतंग चढ़ी हार गंगधार-संग,
अलक पसार कीन्हौ जमुना को संग मे ॥६०॥

प्रौढा

दोहा

अधिक काम, जोवन सरस, अतिरति-मोहन मानि।
विविधभाव, लघुलाज ये प्रौढ़ा तिय मे जानि ॥ ६१ ॥

(१) अधिक कामा प्रौढा

सवैया

केलि के बातनि राति के जाम बितीत करै है खरे रस रास सो।
चाहत दोउ "कुमार" प्रवीनता जीति नई रति-रीति प्रकास सो ॥
प्रीतम कोक-कला-चतुराई के जेते रचै उपदेस हुलास सों।
भेद तहाँई नयौ समुझाइ, रिझाइ रच्यौ बस प्यारी बिलाससौ॥६२।

(२ सकल तारुण्या प्रौढा)

कवित्त

नेह - मद छाई चितवनि चतुराई त्यौं
"कुमार" सुकमारताई मालती बिसारिये।
गति गरवाई, खुलि छाई है गुराई गात,
बातनि सरसताई सुधा-निधि धारिये॥
प्यारी के निहारि पानि, पगनि, दृगनि लाली
कोकनद-कांति त्यौं गुलाब वारि डारिये।
आनन समान नहीं होत, याही दुःख मॉह—
मुख मॉह छॉह छपानाह के निहारिये॥ ६३॥

(३ रतिमोहिनी प्रौढा)

कवित्त

चातुरी कला के अबला के कोक-केलि-सग
अंग - रंग बाढ़त अनंग ठौर - ठौर है।
मनित, रनित, काम-सासन की आसन की,
हासनि विलासनि की भॉति-भॉति दौर है॥
पूरत मनोरथ, सिपारस अपार सुख—
रीझत, रिझावत, रसिक - सिरमौर है।
आनँद की फुरति जु पावति न सुरति है,
प्यारी की सुरति तहाँ सुरति न और है॥ ६४॥

(४ विविधभावा प्रौढा)

कवित्त

झूलति हिंडोरे बाल लाल सो "कुमार" कहै
सुरति सुरति-सी जताइ मुसक्याति है।
विमल कपोलनि पै अलक झलक सोहै,
मुख श्रमजल-कन छलक दिखाति है॥
चंचल है अंचल सुहात गोरे गात खुलि
कटि की लचक मचकति मे सुहाति है।
मुरि मुरि मुरक मे पीठि फेरि जाति है, पै
फेरि फेरि प्यारे ओर डीठि फेरि जाति है॥ ६५॥

(५ लघुलज्जा प्रौढा)

सवैया

प्रीतम के बस प्यारी पगी दृग-डोरि लगी तजि लाज सुभावै।
प्यारे करी दृग की पुतरी, पुतरी-सी नचै पिय जो मन भावै॥
बोलनि बोलै बलाइ तिहारी "कुमार" बिहारी ज्यौं रीझि रिझावै।
सैननि ही हिय की कहि जात, सु नैननि ही सबबात बतावै॥६६॥

स्वकीया, पति-प्रीति के भेद ते ज्येष्ठा कनिष्ठा द्वै भाँति है। अधिकप्रीति तें ज्येष्ठा, अल्पप्रीति ते कनिष्ठा। यथा--

ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा

दोहा

दोऊ ढिंग हैं बाल इक आँखि न नाँखि गुलाल।
अंक माल दूजी लई चूमि कपोलनि लाल॥ ६७॥

इति स्वकीया

परकीया

दोहा

परपति सो अनुराग रचि, परकीया तिय होइ।
प्रथम अनूढा जानिय, अपर परोढा सोइ ॥ ६८ ॥

अनूढा पित्रादि-वश्य है, परोढा पति के वश्य है, तातें अन्य सो अनुरागिनी होय सो परकीया है। अनूढा गान्धर्वविवाहोत्तर स्वीया होति है। जैसे शकुन्तला महाश्वेतादि हैं। यथा—

श्लोकः—

य कौमार हर स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा ।
ते चोन्मीलितमालती-सुरभयः प्रौढा कदम्बानिलाः ॥
साचैवास्मि, तथापि तत्र सुरतव्यापार - लीलाविधौ।
रेवा-रोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥ ६९ ॥

इहि श्लोक मे प्रथम अनूढा परकीया है, फेरि ऊढा भये स्वीया है।

(१ अनूढा परकीया)

सवैया

बैठी कहूँ इक गोपसुता गुरुनारिनि में गुनगौरि सुहाई।
कैसे मिलै वह कान्हकुमार, सो काहू सखी यह बात सुनाई ॥
ऐसे मे आइ कढ्यौ कितहू तें "कुमार" कहै, वह छैल कन्हाई।
प्यारी निसा-रतिकी करि सैननि नैनइसारति कीन्ही बिदाई॥७०॥

(२ परोढा परकाया)

कवित्त

माइ-घर कैसे कैसे कीजिये विलास हास,
कठिन है वस वास पीहर-निवास मे।
बिन देखे कल न परति, तलफत चित,
रचिये "कुमार" जैसे केलि-रस रास मे॥
आये मेरे काज ब्रजराज कछू काज-मिस,
ननँद जिठानी बानी बोलै उपहास मे।
पास नहीं सखी, भेंट आस नहीं, त्रासन तें—
सासन दुसासन परोसी आस-पास मे॥ ७१॥

परकीया-भेद

दोहा

निपुना, त्यों रतिगोपना, जान लच्छिता, और।
वचन क्रिया की चतुरई निपुना द्वैविध ठौर॥७२॥

पहिचानवारे सों जो चतुराई रचै सो निपुना है। बिन पहिचान—वारे सों चतुराई रचै सो स्वय दूती है। यह भेद मानिये।

(१ स्वयं दूती)

सवैया

आधिक जाम करौ विसराम "कुमार" अरामकी कुंज इतै है।
अंत वसंत के ग्रीषम की लपटै न घटै, दिन साँज समै है॥
छाँह घनी पियौ नीरजनीर, सु सीत समीर लगैं सुख दैहै।
हाल लखौ फल लाल रसीलो रसाल-लता में कहूँ मिलि जैहै॥७३॥

(२ वचनविदग्धा)

दोहा

विवि खजन मिलि रमत तहँ, जहँ होत निधि-ठान ।
इमि खजननयनी कह्यौ, लखि हरि रूप-निधान ॥७४॥

(३ क्रियाविदग्धा)

दोहा

नवल कमल की लखि कली, हिये लगाई लाल ।
हाथ अगूठी लाल लखि हिये धर्यो हसि बाल ॥७५॥

यथा—

सवैया

देखै अटा चढ़ि दोऊ घटा, दृग लागे दुहून सो प्रीति लही है ।
दै पठयो कुसुमीरँग को पट, यौ पर प्रीतम-प्रीति कही है ॥
चूनौ मिलै हरदी रँग रोचन प्यारे "कुमार" पठायो सही है ।
बाढ़त रंग है एकत संग ही, सग भये बिन रंग नहीं है ॥७६॥

याही मे सखी-वचनादि भेद हैं

गुप्ता—

दोहा

भयो, होत, ह्वैहै सुरत, ताहि दुरावे नारि ।
गुप्ता परकीया तहाँ तीन भाँति निरधारि ॥७७॥

(१ वर्तमान सुरतगोपना)

दोहा

प्रातहि गनपति पूजिहौ, निसा अकेली जाइ ।
ल्यावत केतकि फूल हौ कंटक कुटिल मझाइ ॥७८॥

सवैया

तोहि गई सुनि कूल कलिंदी के, हौंहू गई सुनि हेली हहारी।
भूली अकेली "कुमार" तहाँ डरपी लखि कुंजनिपुंज अँध्यारी॥
गागर के जलके छलकै घर आवत-लों तन भीजिगौ भारी।
कंपत त्रासनि येरी बिसासनि! मेरी उसास रहै न सम्हारी॥७६॥

(२ वृत्त, ३ वर्तिष्यमाण सुरतगोपना)

सवैया

फूल बहार निहारनि काज "कुमार" तहाँ गई तो सँग मैं हौं।
भोर अकेलियै आजु चली, डरपी चटकाहट-सोर सुनैहौं॥
भौंरनि दौरि डसी चहुँघा लगे कंटक के छत कैसे दुरैहौ?
फेरि अली वहि कुंज-गली न गुलाब-कली कहुँ बीनन जैहौ॥८०॥

लक्षिता

दोहा

हृदय - सखी जहँ नारि को लखै जार - संभोग।
तहँ प्रछन्न, प्रकास कहि दुविध लच्छिता जोग॥८१॥

(१) प्रच्छन्नलक्षिता

सवैया

ध्यान धरौ रहै जाको सदा, कहूँ न्यान मिल्यौहै वहै मनभायो।
रंग में साध्यो भलो अपने गुन बाध्यो अराध्यो सो देव सुहायो॥
हार के बीच 'कुमार" बहार मे, प्यार मे प्यारे को राखि रमायो।
काहू नहीं लखि पायौ अली! यह लाल तू पायौ सुहौ सुखपायो॥८२॥

(२) प्रकाश लक्षिता त्रिधाः— मुदिता, अनुशयना, साहसिका च।

(१ मुदिता)

सवया

भींति गिरी तँह ऊँचौ रचावत मंदिर सुंदर के दुचिताई।
कैसे बनै अब मीत अगार के और विलोकन की मनभाई।
देखी "कुमार" बनाई तहाँ, मनभावन भौन के पास सहाई॥
द्वारी अटारी के पाखेमे पेखत राजी ह्वै राजनि रीझि दिवाई॥८३॥

यथाच—

बीज बयौ तब ही ते बये हिय मे पियकेलि-विलास खरे हैं।
अंकुर होत हितै अँकुरे, जल सींचत, सीचि गए सुथरे हैं॥
बाढ़त त्यौ ही "कुमार" बढ़ै, सँग फूलत ही अँग फूल भरे हैं।
मीत सकेत के हेत तिया के मनोरथ-खेत फरे ही फरे मे॥८४॥

दोहा

पिय ढिग पठई दूतिका ताहि सिखावति बाल।
पहुँची तह, जहँ कुंज ही मग देखत नँदलाल॥८५॥

इहाँ हू मुदिता है।

(२ अनुशयाना)

दोहा

लखि विघटन संकेत को, जाके अनुशय होइ।
कहत जु अनुशयना यहै, परकीया कवि लोइ॥८६॥

ताके भेदः—विघटितसकेता, अप्राप्तभाविसकेता, शकितसकेत-गमना।

(१ विघटित सकेता)

तजी पीतपट रुचि भजी वदन पीत रुचि हाल।
सन वन सूखत देखि कें, तन मन सूखत बाल ॥८७॥

(२ विघटित वर्तमानसकेता)

सवैया

हार ब नावन हाल चह्यौ हौं अहैं अपनै कर साँझ सबेरै।
देखत बाग बहार "कुमार" यों वारि गई लखि संगहि मेरै॥
कौन धो वैरिनि वैर परी, न परी दृग हू कहुँ कुंज के फेरै।
बेल कली लखि बीनि लई, सखि छीनि लई, छबि आनन तेरै॥८८॥

(३ विघटित भविष्यत्सकेता)

दोहा

कुंज-भवन ह्वैहै सघन, इभि सींचत नित नीर।
तपत हियौ रचिहै अपति सखि! यह सिसिर समीर॥८९॥

(४ अप्राप्तभाविसकेता)

दोहा

नव चंपक-कुजनि निरखि, सुमिरन पिय घर जात।
सुनै सरस सरसीनि में तित फूले जलजात॥ ९० ॥

(५ शकितसकेता जारगमना)

कुंज-कुसुम हरि-कर लख्यौ, वर तरुनी रचि सैन।
बिबस दिवस के अन्त जिमि, जलज सजल करि नैन॥९१॥

(३ साहसिका)

सवैया

ज्यौं बरजी, तरजी गुरु नारिनि, त्यौं त्यौं तजी कुल-कानि ढिठाई।
सीख न की सखियानि की हौ अँखियानि लखे लखि रूप इठाई॥
हेरि हियौ हरिलीन्हौ "कुमार" कहा निठुराई अहो हरि ! ठाई।
बाउरी हो गई, राउरी प्रीति, ठई हमको ठग कैसी मिठाई॥९२॥

कुलटा

श्लोक

परोढां वर्जयित्वा च वेश्या चाननुरागिणीम्।
आलम्बनं नायिका, स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः॥९३॥

इहि कारिका मे स्वीयाही शृङ्गारालम्बन ह्वैकै अनूढा परकीया आलम्बनहै।

श्लोक

अनूढा च परोढा च परकीया द्विधा मता।
व्रजेश-व्रजवासिन्य एता प्रायेण विश्रुता॥ ९४॥

इत्यादि आदिपुराणके वाक्य ते रतिपुष्टा, ताते परकीया परोढा ऊ आलबन है। कुलटा वेश्या कहूँ न कहो, पे जहाँ एकत्र रतिपुष्टता होय, अन्यत्र पुरुष परीक्षा-मात्र ते धन-प्राप्ति ते प्रीति होय, तहाँ कुलटा वेश्या ऊ आलम्बन। होय यथा—

श्लोक

रति-रसलालसया सखि ? सकलयुवानः परीक्षिता हि मया।
हृदयानुरञ्जन-विधौ मधुरिपुणा क समो भविता ? ॥९५॥

इत्यादि उदाहरण कुलटा के हैं।

अनेकनि मे वा धनही मे प्रीति बरनै, रसाभास ही है।

सामान्या

दोहा

अनव्याही, बहु पुरुष सो रचै चतुर संभोग।
फल रागहि सामान्य तिय, होय कहत कवि लोग ॥९६॥

स्वर्गगत शूरतातपः प्रभावादि अनुरागिणी सुरवेश्या है। सौदर्यादिफलानुरागिणी नलकूबरादि-अनुरक्त रम्भा है। मृच्छकटिक मे चारुदत्ता अनुरागिणी वेश्या है। तहाँ यह लक्षण सम्भव है।

कहूँ वित्ताभिलाषोपाधि हूँ मे एकत्र अनुराग-दार्ढ्य है। अन्यथा अभिनय मे रोमाचादि न सम्भवै। केवल वित्तानुरागिणी कल्पितानुरागिणी आलम्बन नाही।

सामान्या तीन भाँति है—स्वतन्त्रा, जनन्याद्यधीना, नियमिता।

(१) स्वतन्त्रा

सवैया

नेह निहारन ही सो भयौ बसु लोक सबै, वसु दै मन भायो।
गीत-कला गुन-गान मे तान में मैनका रंभा को मान घटायो ॥
केते मिले मनभावन पै, हरि छैल छबीले ही मोहि रिझायो।
हेली यहै रति नेम हौ पायौ, है तायौ-सो हेम है, प्रेम सुहायो॥९७॥

(२) जनन्याद्यधीना

सवैया

लोक विलोकनि भोर परे, घर द्वार खरे, धन देत हहारी।
मेरे न चाह कछू धन की, मन को इक गाहक, प्रीति निहारी ॥

ए हौ रह्यौ तुम ही मिलि कै मन, प्यारे! यहै तनु जानौ तिहारी।
हारी हौ एक जु रोकत न्यारी कला-गुनगीत सिखावनहारी ॥९८॥

(३) नियमिता

वदीग्रहण तें वा धनदानादि ते जो गृह ही पात्रादि राखी होय सो नियमिता कही। यथा—

दोहा

'मोल लई वित दै' यहै कहौ न कबहूँ बोल।
चित-वित दै इक लाल? तुम, मोहि लियौ बिन मोल ॥९९॥

इति सामान्या।

अथ अवस्थाभेद तें अष्टविध नायिका कहियतु हैं। अन्यसम्भोग-दुःखिता, मानवती, गर्विता ये तीन भेद न्यारे गने हैं। आदि—दोऊ भेद खंडिता में, गर्विता स्वाधीनपतिकादि में गनिये, न्यारे नाहीं। गर्विता प्रेम, गुण, रूप, यौवन-गर्व ते चारि भाँति है।

(१) प्रेमगर्विता

दोहा

निसदिन दृग ते न्यारियै नहि राखत पिय मोहि।
क्यौं छनदा छन खेल को, सीख कहौ सखि! तोहि ॥१००॥

यथा च—

आन पियारी सो कहूँ रचौ बिहारी! प्रीति।
तौ बिसेष करि जानि हौ मो असेष रस-रीति ॥१०१॥

(२) गुणगर्विता

सवैया

गीत कवित्त कलानि "कुमार" दुहूनि गनी है घनी चतुराई ।
नेह नयो, नई केलि को रंग, दुहू परबीनता जीति जताई ।
प्यारे लियौ कर बीन बजावत, तान नवीन तहाँ उपजाई ।
प्यारी अलापि के राग यहै, मधुरी धुनि बीन ते बानि सुनाई ॥१०२॥

(३) रूपगर्विता

दोहा

अंग, अंग छबि की बनक, कनक कनक दुति-हीन ।
कहि दूखन भूषन न तन, भूषत पिय परबीन ॥१०३॥

(४) यौवनगर्विता

सवैया

कंचन-सो तन, कंचुकी गाढी कसै तन झाँकी ही ठाढी प्रमानी
नेह लग्यौ ब्रजनाइक सों, सँग लागी फिरै, लखि रूप-लुभानी ॥
छ्वै निकसे मग माँह "कुमार" बुल्यान ही सों हँसि बोलति बानी ।
तोरति अंग, मरोरति ओंठि, उठी छतियानि फिरै इठलानी ॥१०४॥

१ स्वाधीनपतिका

दोहा

जासों पति अतिरम-भर्यौ सदा रहत आधीन ।
सो अधीनपतिका प्रिया बरनत सुकवि प्रवीन ॥१०५॥

यथा —

सवैया

तेरे सदा रस के बस प्यारौ "कुमार" रचै सोई जो तुव भावै।
ताही सनेह सो माती फिरै, रँगराती, कहा सखि सीख सिखावै ?
मेरे भई रिस पावक जो, पग जावक प्यारे के हाथ दिवावै।
छैलछबीलौ तो छाती लगाइये,पाइ छुवौ जनि पाइ छुवावै॥१०६॥

यथाच—

दोहा

मानतु आन तिया-सुरति, सुरति तिहारी ल्याइ।
ज्यो पखान सेवत तहाँ, निज - दैवत हिय ध्याइ ॥१०७॥

(परकीया स्वाधीनपतिका)

सवैया

क्यौं कुल-कानि सो कानि रहै, जुग-सो खन बीतै बिना हरि हेरे।
मेरे ही द्वार "कुमार" लख्यौ, मिस ठानि कछू निसि साँझ सबेरे॥
बीस बिसै बस कान्हर मे मन, कान्ह बस्यौ मन क्यौ फिरै फेरे।
हौही भई इक कान्हमई, कहा लोक कहै बस कान्हर तेरे॥१०८॥

एसे सामान्या तथा मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा स्वाधीनपतिका जानिये।

२ वासकसज्जा

दोहा

पिय आगम निहचै धरै, साजति सेज सिंगार।
वासकसज्जा तिय यहै, चाहति मिलन बिहार ॥१०९॥

वासक के निमित्त जो सज्ज होय, सो वासकसज्जा है।

श्लोक

वारश्च,[१] ऋतुकालश्च,[२] प्रवासादागमस्तथा[३] ।
प्रसादनं[४] च रुष्टाया नायिकायास्तथोत्सव[५] ॥ ११० ॥
नवोढाभ्युपपत्तिश्च[६] षडेते वासकाः स्मृता ।

तातें एष्यत्पतिका वासकसज्जा ही मे मानिये। यथा—

कवित्त

सौंधे सों लिपायो, छिरकायो लै गुलाब नीर,
अगर घिसायो, घनसार सो सघन है।
फूलनि सुहायो, छबि छायो, बिछवायो सेज,
अतर मँगायो, रति - केलि के सदन है॥
भूषन उज्यारो, त्यौं "कुमार" हिय धार्यौ हरि,
वसन सुधार्यो, तन रंगित रमन है।
वार वार झाँकी, द्वार—आवन गमन जानि,
आजु मनभावन को आवन भवन है॥ १११ ॥

(एष्यत्पतिका वासकसज्जा)

कवित्त

अँगनि बिबस ठाढ़ो औधि के दिवस बाल,
प्राननि धरति, प्रानपति ध्यान धारि कै।
प्यारे मनभावन को आगम "कुमार" तो लौं—
दूर ही तें सखी कह्यो, लह्यो निरधारि कै॥
साजति मिलन - साज आनँद है पूर्यौ अँग
अँगिया दरकि गई याही अनुहारि कै।

वैरी जो विरह बस्यौ कुच-गढ़ बीच सोई
लाजि, गयौ भाजि कोट कंचुकी बिदारि कै ॥११२॥

वासकसज्जा-भेद, मुग्धादि मे स्वकीया परकीयादि मे जानिये ।

३ उत्कण्ठिता

दूहा

बसि सकास कछु काज-बस, नहि पिय पहुँचै पास ।
होय तहाँ उत्कंठिता तरुनि विरह के त्रास ॥ ११३ ॥

इहाँ प्रियमिलन-निश्चय मे वासकसज्जा है। मिलन-निश्चया-ऽनिश्चय मे विरहोत्कण्ठिता है। मिलन-निराशा मे विप्रलब्धा है, पास स्थिति मे। दूर स्थिति में मिलन-निराशा मे प्रोषितपतिका है। ताते विरहोत्कण्ठिता मे उत्कण्ठा-सहित ही विरह दमयन्यादि मे, गीत-गोविन्दादि मे बरन्यो है। केवल विरह बरनै, अवस्थान्तर होत है। उत्कादिक जाति नाहीं, जोई अवस्था कवित्त मे समुझि परै, सोई भेद जानिये ।

उत्कण्ठिता—द्वै भाँति है। एक कार्यविलम्बितसुरता, दूजी अनुत्पन्न-सभोगा ।

(१) कार्यविलम्बितसुरता

सवैया

प्यारो सिधारयो नहीं किहि हेत ? सकेत-निकेत में बीति गौ जामै ।
जो पिय आपने पास हि पाइहों, राखों छिपाइ हौं केलि के धामै ॥
भेटि भरों अकवारि "कुमार" बिसारि हों, बाढ़ो वियोग इहा मै ।
हार करै हियरा-मधि राखि हों, राषिहो त्यौ करिकै कजरा मै ॥११४॥

(२) अनुत्पन्नसभोगा

पूर्वानुराग मे साक्षात्, श्रवण, चित्र, स्वप्न-दर्शन तें अनुत्पन्न-सभोगा उत्कण्ठिता चारि प्रकार है।

(१ साक्षाद्दर्शनानुतापा)

सवैया

माथै किरीट, छरी कर लाल है, सालस आयौ गयद की गैलनि।
मोहन मेरी गली मुसक्यात, अली! निकस्यौ रचि नेह की सैननि॥
कैसे "कुमार" बनै मिलिबो, न परै कल, क्यौ मन की कहौ बैननि।
पीरी पिछौरी को छैल लख्यौ, तब तें छबि छूटे नहीं छन नैननि॥११५॥

(२ गुणश्रवणादर्शनानुतापा)

सवैया

ते धनि है सुनि कै सुर जे, उर धीरज धारती मोह महा तै।
मो तन को मनमोहन प्रान भो, ताहि मिलाउरी ल्याइ हहा तै॥
कानन तें कहुँ कान परी धुनि, बाँसुरी-तान "कुमार" तहाँ तै।
न्याउ से औघट प्रान परे भटकें, घट आवै री! न्यान कहाँ तैं॥११६॥

(३ चित्रदर्शनानुतापा)

सवैया

चित्र लिखाई, दिखाई है सूरति, काम तें सुन्दर रूप अमोलौ।
कान्हमई छबि छाकि भई सु"कुमार"पर्‌यौ सुधिसार में जोलौ॥
मोहि रहै कहै बाँसुरी-तान सुनाइये गान, अहो! मुख खोलौ।
प्यारे! रहौ गहि मौन कहा? इहा आए हौ, मौनहिं क्यों नहि बोलौ?
॥११७॥

(४ स्वप्नदर्शनानुतापा)

सवैया

नैन लगे हरि सो, न लगे पल, भैट रची सपने बड़ भागे।
आनँद सों मिलि प्यारी कहै दुख तौ लो गये खुलि लोयनि जागे॥
जो फिरि मीत "कुमार" मिलै तो, किसा कहौ जैसी दसा अनुरागै।
राखि हिये अभिलाषकै नींद परी पटतानि, पै आँखि न लागै॥११८॥

४ विप्रलब्धा

दोहा

संगम-सुख वंचित भई बढ़ै विरह तें ताप।
तहाँ विप्रलब्धा कही, मिलै न पिय ढिग आप॥११९॥

श्लोक

'विप्रलम्भा वंचने स्याद्विसंवादवियोगयोः।'

यह अर्थ ते—जो भैंट मे वंचित होय, सो विप्रलब्धा कही॥

यथा—

कवित्त

साजति सिगार साज सखी परिहास काज,
लाजनि बितायौ जाम जामिनी को आप तें।
पहुँची "कुमार" कुंज-पंथ मे थकित भई,
अकथ मनोरथनि मनमथ-दाप तें॥
पहुँच्यौ पछाँह चंद, चन्दमुखी-पास पिय
पहुँच्यौ न, त्रास बढ़यौ रतिपति चाप तें।
नैन जल-बिन्दु-धार मोती-हार उर भई,
हार भयौ चूनौ, विरहागिनि के ताप तें॥१२०॥

(१) पतिवंचिता

दोहा

दुरि निकुंज, देखी दसा मो आकुलता हाल।
हिय लागी, लगि है न हिय, तब दुख जानौ लाल ! ॥१२१॥

सवैया

कुंज दुरयौ पिय खोजत ताहि, गये जुग-से जुग जाम तमी के।
जागी सँजीवन ओषधि-सी जिय ताप, मिलाप भए बिन पी के॥
बाढयौ "कुमार" पयोनिधिपूरि-सो पूर तहाँ बिरहा तन ती के।
चद-उदौ लखि लोचन च्वै-चले चंदपखान-सेचंदमुखी के ॥१२२॥

(२) सखीवंचिता

सवैया

प्यारे को ल्याइ दुराइ तू राखति, खोजि थकी यह को दुख जानै।
जीवन-संसय, सोक सँताप ज्यों ऐसी हँसी क्यों बिसासनि ! ठानै॥
मो जिय पैठि ज्यो आकुलता लखि है सखि ! मेरी दसा पहिचानै।
जो हसि प्रानपती मिलतौ नहि,तो मिलते नहि प्रान हिरानैं ॥१२३॥

५ खण्डिता

दोहा

आपुन पे प्रिय-प्रेम को खंडन, तहाँ निहारि।
रससिंगार अनुकूल रिस, रचै खंडिता नारि ॥१२४॥

खण्ड प्राप्ता खण्डिता, इहि अर्थ ते मानवती, अन्यसम्भोग-दुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता, ये भेद खडिता ही के मानिये। कलहांत-

रिता मे रिस-शान्तिमात्र ही है। प्रेम-खडन अन्यस्त्री-सम्भोग-जनित ही होत है, यातें शृ गाररसानुकूल रिस कही। यथा—

सवैया

काहू पिया रति-रंग के चीन्ह निसा रमि प्यारे के अंग मढ़ाये।
प्यारी निहारि "कुमार" तहाँ नहि आनन आदर-बोज पढ़ाये॥
भौह चढ़ाइ, बढाइ के रोष—हिये, पिय ऊपर नैन बढ़ाये।
मानौ मनोज हि ओजसो लाल-मरोजके बान कमान चढ़ाये॥१२५॥

धीरादिभेद

दोहा

धीरज तथा अधीरजे धैर्याधैर्य प्रमानि।
धीर', सुअधोरारिसहि धीराऽधीरा जानि ॥१२६॥
मधुर वचन धीरा कहै, गहै अधीरा रोष।
धीराऽधीरा मध्यमा ठानति रिस रस-पोष ॥१२७॥
रिस दुराइ धीरा भनै, हनै अधीरा खीझि।
धीराऽधीरा प्रौढ तिय रचै, चतुर वच रीझि ॥१२८॥

(१) धीरा

कवित्त

सोहति "कुमार" टीक लागी है कपोल पीक,
जावक की लीक भाल, छबि की तरंग सों।
आलस-वलित जागे, राते नैन कोर जामे
नखनि के छत लागे, बने अँग अँग सों॥

लाल लाल चीन्ह, भुज-मूल मे अतूल सोहैं—
हार मुकतानि के, कठोर कुच-संग सो।
जाही बाल-प्रेम सो तिहारौ मन रंग्यौ लाल,
ताही तन रँग्यौ हाल लाल लाल ! रंग सों ॥१२९॥

(२) अधीरा

सवैया

आनि कहौ मधुरे इत बोल पै, डोलत आन के हाथ बिकानै।
ताही को जावक भाल लिखाये हौ, होत सिखाये कहा सिख मानै॥
आए "कुमार" हौ भोर ही भौन, इते चित भौ न कछू सतरानै।
कौन इलाज करै अबलाजन, साजन कै जब लाज न जानै ॥१३०॥

(३) धीराऽधीरा

सवैया

प्यारी के प्रेम रहे पगि हौ, जगि हौ पिय ! कौन के रैनि बिताई।
बातैं अलीक कहौ न, अलीक मे जावक-लीक है ठीक लगाई ॥
रूप अनूप तिहारौ निहारि 'कुमार" चहौ रिझवारि कहाई।
आनन आन की डीठि लगै न यौ ईठि के अंजन-रेख बनाई॥१३१॥

(३ वक्रोक्तिगर्विता खण्डिता)

दोहा

दुरे नहीं उर माल - मधि, दीजे सो उर माल।
बिन-गुन गुहि लीन्हैं कुसुम केसरि केसरलाल॥१३२॥

(मानवती खंडिता)

सवैया

राखी दुराइ भले जदुराइ ! बिहारी तिहारी जो प्यारी कहाई ।
लागत ताहि हिए लगे चीन्ह हैं, जागत जा-सँग रैन बिताई ॥
आपने नेह के थाप को जावक, छाप "कुमार" जो भाल बनाई ।
सो मिटि जाइगी पाय परै परौ पाय, परौ जनि पाय कन्हाई ! १३३॥

(अन्यसम्भोगदु खिता)

दोहा

पिय-रति दूती प्रभृति मे लखै, सुनै, अनुमानि ।
दु खित तिया सोई इतर-भोगदुःखिता मानि ॥१३४॥

यथा—

तहाँ पठाई नहि गई, भई गई करि हाल ।
कंज लैन कित धौ गई, भई रेख लगि नाल ॥१३५॥

पुनर्यथा

उझकत झाकिनि हौ लखी, गई जु मो-हित काज ।
रची छैल छल-गति अली, बची भली भजि आज ॥१३६॥

६ कलहान्तरिता

दोहा

रिस मे पिय-अपमान रचि, रिस तजि फिरि पछिताइ ।
कलहान्तरिता तिय यहै, कवित नृत्य मे ल्याय ॥१३७॥

(१) ईर्ष्याकलहान्तरिता

सवैया

रोष रच्यौ, तिय दोष तिहारेई, प्यारे ! करौ रस-पोष परेखौ ।
पायन हू परि प्यारी मनाइये, प्रीति की रीति है बंक बिसेखौ ॥

नेकु तिहारे निहारे बिना कलपै जिय, क्यो कल धीरज रेखौ।
नीरज-नैनी के नीर भरे, किन नीरद से दृग-नीरज देखौ ?॥१३८॥

(२) प्रणयकलहान्तरिता

सवैया

गातनि हीं मिलि एक भये, रस-बातनि हीं मिलि मोद बढ़ायौ।
जोवन,रूप,कला,गुन,ग्यान, गुमान की गाहनि ज्यौ उरझायौ॥
एक ही सेज रिसाइ रही, पिय बॉह गही न, हौ मान्यो मनायौ।
प्रीतम भौन तें जान दयौ,तजि मौन हियो गहिहौ न लगायौ॥१३९॥

७ प्रोषित पतिका

दोहा

प्रिय-प्रवास के हेतु तें, विरह-दुखित जिय होय॥
तहँ प्रोषितपतिका तरुनि, मानत पंडित लोय॥१४०॥

इहॉ वर्तमानसामीप्य मे आदिकर्म मे 'प्रोषित' शब्द मे क्त प्रत्यय-विधान तें, प्रोषित विद्यते यस्मिन् स'=प्रोषित । प्रोषित. पतिर्यस्याः सा=प्रोषितपतिका । इहि अर्थ ते प्रवत्स्यत्पतिका, प्रवसत्पतिका, प्रवसितपतिका ये तीनौ भेद प्रोषितपतिका ही मे मानत हैं।

(१) प्रवत्स्यत्पतिका

सवैया

प्यारे के गौन की बात सुनी, तिय भौन मे वंदति दीपक-बाती।
सॉझ के कौल सी कौलमुखी सखियानि मे सूखि गई रँगराती॥
प्रीतम के सँग पौढ़ी "कुमार" पे जान्यौ मनोभव प्रान को घाती।
नीदौ नहींनियराति,हिराति,लगी हियरा,सियरातिन छाती॥१४१॥

(२) प्रवसत्पतिका

सवैया

क्रूर अक्रूर के आगम ही, ब्रज-बालनि नैननि नींदौ बिनासी।
गौन की गैल निहारि "कुमार" रचै जिय त्रास, पिसाच-दिसा-सी॥
गोकुल-चंद बिलोके बिना, बसि है दृग मे छिन चंद निसा-सी।
बीसबिसै बिस-सी बगराइ, चल्यौ ब्रजते ब्रजवासी बिसासी॥१४२॥

(३) प्रवसितपतिका

सवैया

आँखिनि देखि लगै झर आगि-सी छूटै गुलाल मुठी भरि झोरी।
सूनौ लखै ब्रज, दूनौ बढै दुख, खेलं, हँसै कहुँ को ब्रज-गोरी?
औधि "कुमार" वसंत की दै, बिसराइ दई वृषभानु-किसोरी।
हाय? उतै कुबजा कुलटा-सग, हेली हहा? हरि खेलि हैं होरी॥१४३॥

(४) परकीया प्रवत्स्यत्पतिका

सवैया

प्रीतम को प्रसथान कह्यौ, ढिग बाग मे काहू सहेली सयानी।
फूली लता-मिस देखन को निकसी, जिय-आकुलता अधिकानी॥
सीख "कुमार" पयान की सैननि पीउ कही, त्यो रही मुरझानी।
मध्यसखीनिमेकौलमुखीनिरखीनिसिकौलनि-सीकुम्हिलानी॥१४४॥

कोऊ विगलित-प्रस्थानपतिका प्रोषितपतिका भनत हैं। यथा—

दोहा

ललन-चलन सुनि बाल के, हाल चले-से प्रान।
फिरि आयो प्रसथान सुनि, फिरि आये अस्थान॥१४५॥

८ अभिसारिका

दोहा

रचि बनाव जो प्रेम-बस, तिय पहुँचे पिय पास।
कहियतु सो अभिसारिका, चाहति केलि-विलास ॥१४६॥

निज पास पिय को बुलावै, सोऊ अभिसारिका कहत हैं।

लखति चंद-छबि चंदमुखि, झाँकी - द्वार उघारि।
लियौ खैंचि कर धारि पिय, स्वेत पिछौरी डारि ॥१४७॥

इहाँ वासकसज्जा जानिये।

एसौ उदाहरन दीजे तो अभिसारिका होत है। **यथा—**

सवैया

प्यारे को रूप लख्यौ जब ते, तब तें तजी नैननि नींद बिन्हारी।
प्रीति अरी! हिय मे खटकै, हटकै खरी त्यो गुरु लाज विचारी ॥
हाथ तिहारे "कुमार' है जीवन, यों सखिसो कहि बोली न प्यारी।
जीवननाथ! जिवाइये जू घनस्याम! चलौ घन की अँधयारी॥१४८॥

तहाँ अभिसार-समय —ज्योत्स्ना, अँधियारी, दुपहर, साँझ, वर्षा प्रभृति अनेक हैं। उत्सवादि-दर्शन, सखी, वृश्चिक-दश आदि ब्याज हैं। **यथा—**

दोहा

लखि न परी ग्रीषम खरी, बिषम दुपहरी माँह।
लपिटि अरुनपट, लपट-सी चली सघन-घन छाँह ॥१४९॥

(१) ज्योत्स्नाभिसारिका

कवित्त

लाजनि रचति भेर भली अभिसार - बेर
हेरत वे मग, जाकी प्रीति सो पगति है।
चीर छीर - फैन - सो पहिरि, तन आभरन
मोती - हीर - हार - सँग सोभा उमगति है॥
परति दुराई क्यो गुराई, यो "कुमार" कहै,
चंदन, कपूर, अंगराग सो जगति है।
पूरन घनेरी यह चंद्र की उजेरी आजु,
तेरी मुखचद्रिका मे चेरी-सी लगति है॥१५०॥

(२) कृष्णाभिसारिका

कवित्त

नीलपट - लपिटी, लपट ऐसी तन, तैसी —
निपट सुहाई मृगमद - खौर हेरिये।
नैकु उघरत अंग, छबि की तरग बढ़ै,
घन - सग जामिनी मे दामनी निबेरिये॥
सुकवि "कुमार" मारभूप की मसाल मनौ
गई कुंज-जाल, तहाँ छाई है अँधेरिये।
खोलि मुखचंद चंदमुखी लखै जाही ओर,
ताही ओर जोर महताब-सी उजेरिये॥१५१॥

(३) वर्षाभिसारिका

दोहा

कर अखण्ड जल-धार की डोरि, अधारहि धारि।
चली मनोरथ-पथ अली, बरखा-निसि वरनारि ॥१५२॥

(४) व्याजाभिसारिका

सवैया

मंजन कों जमुना-तट - कुंजनि, भोरहि खजन-नैनि पधारी।
भेंट भई न सहेट मे प्यारे सो, प्यारी यहै चित चित है धारी ॥
तौ लो "कुमार" निकुंज की ओर कहूँ चितचोर लख्यौ गिरिधारी।
'हौं हरपे जलधार न ढ़ारी है' यो कहि, फूल के बाग सिधारी ॥१५३॥

ये भेद स्वकीया, परकीया, सामान्या मे तत्तत्स्वभाव मिलै जानिये।

(५) नवोढाऽभिसारिका

सवैया

चौंर छुटी अलकै, मुख घूंघट, सारी अँध्यारी ढपी मृगनैनी।
नूपुर और सनाबजै भूषण, केसरि-आड है आँकुस-पैनी ॥
पौढ़न को पिय-पास नवोढ वधू चली मत्तमतंगज-गैनी।
केता रचै अडदार तऊ, गडदार गई, लै सखी सुखदैनी ॥१५४॥

एसैं मध्या प्रगल्भा मे जानिये।

ये भेद अवस्थाकृत हैं, ताते यथासम्भव नायक मे हू होय सकैं।

"हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव" (गीत गोविन्द)

इहाँ कलहान्तरित नायक है।

नायके उत्कठित, मानी, अभिसारक, वासकसज्ज (हू) होत है, पत्नी कौ मातृ-गृहादिगमन में प्रोषितपत्नीक है।

इति नायक-नायिका-निरूपण।

—:○—

अथ रस-चेष्टा

जोवन मे शृङ्गाररस चेष्टा कहियतु भाव।
होइ कदाचित पुरुष में, तिय मे सहज सुभाव ॥१५५॥

उक्तं हि श्लोक—

यौवने सत्वजाः स्त्रीणामष्टाविंशतिरीरिता।
अलङ्कारास्तत्र—भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजा ॥१५६॥
शोभा, कान्तिश्च, दीप्तिश्च, माधुर्य च, प्रगल्भता।
औदार्यं धैर्य्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजा ॥१५७॥
लीला, विलासो, विच्छित्ति, विब्बोक किलकिंचितम्।
मोट्टायित, कुट्टमितं, विभ्रमो, ललितं, मदः ॥१५८॥
विकृतं, तपनं, मौग्ध्य, विक्षेपश्च कुतूहलम्।
हसितं, चकितं, केलिरित्यष्टादश-संख्यकाः ॥१५९॥

दोहा

लीला, विभ्रम, ललित पुनि त्यो विच्छित्ति, विलास।
ये पाँचौ शारीर है, कहै भाव-परकास ॥१६०॥
मोट्टायित अरु कुट्टमित, विहसित अरु विव्वोक।
ये अन्तर के भाव मे गन्यौ चार को थोक ॥१६१॥
किलकिंचित इरु जानिये आंतर अरु शारीर।
इमि सब भावनि की उपज, मानत है कवि धीर ॥१६२॥

इनके लक्षण —

दोहा

जोवन मे चित सरस मे कछू चाह, कहि भाव।
अधिक चाह यह हाव है, हेला अधिक सुभाव ॥१६३॥

(१) भाव

सवैया

बाल न जानति बंक विलोकि "कुमार" न बोलति बोल रसीलौ।
बात कहै रस की सखियानि मे, जानि परै चित चाह-गहीलौ ॥
सूधेई लोचन सो अवलोकिबौ, लागतु है अनुराग-रँगीलौ।
डीठि चलै वहराइ कहूँ ठहराइ तहाँ, जहाँ कान्ह छबीलौ ॥१६४॥

(२) हाव

सवैया

कुंज तें आवत कान्ह "कुमार" तहाँ मग में कर-गेंद है मेली।
खेलै सखीनि मे गोपसुता उत बीच ही आपनें हाथ सों झेली ॥

अंचल गौ उर ते चलि चंचल सैननि दै मुसक्यानी सहेली।
नैन रिसोहे करैं सखि सो,है हँसौहे रचै हरि सोहैं नवेली ॥१६५॥

(३) हेला

सवैया

गौने के द्यौस सलौने सुभाइ सो, बैठे हैं चौक दुऔ रसभीनै।
जोरि कह्यौ पट-छोर सखीनि "कुमार! जुरैं हित नेह नवीनै" ॥
यों सुनिकै मुसक्याइ, लजाइ, पिया मिस ही पियत्यो दृग दीनै।
औ पिय को हियरो नियरो,लखिचचललोचन अंचल झीनै ॥१६६॥

शोभा, काति, दीप्ति-लक्षण

दोहा

तन-दुति जोवन रूप-रति-रस-बस सोभा जानि।
बढ़ैं अधिक यह काति है, अतिबढि द्रीपति मान ॥१६७॥

(४) शोभा तथा (५) कान्ति, यथा—

कवित्त

गई है न गौने, दई ! कौने धों सलोने गात—
सौने - कैसी दुति, तन तिय के गढ़ी रहै।
गति गरवाई, अवलोकनि सनेह छाई,
पाई चतुराई, मनो मैन सों पढ़ी रहै॥
मधुर, सुहानी, सुधा-रस - सानी, मृदुवानी
आनन "कुमार" मुसकानियै चढी रहै।
बाढ़त बिलास रंग जोवन-विकास - संग
कान्ति अंग-अंगनि अनंग की मढ़ी रहै ॥१६८॥

(६) दीप्ति

कवित्त

मौन मे सहज गौन रचति किसोरी तहाँ,
होरी - कैसी झरप झरोखनि ह्वै लेखिये।
जतन हजार हूँ 'कुमार" अभिसार समै—
दुरै न दुराई यो गुराई गात पेखिये ॥
दीपति पिया मे ऐसी, दीपक-सिखा मे नाँहि,
चपला मे, चद की कला मे न बिसेखिये।
भारी अँधियारी मे मझाई कुंज-गली जहाँ
तहाँ-तहाँ छाई-सी जुन्हाई अजौं देखिये ॥१६६॥

माधुर्यादि-लक्षण—

दोहा

सहजहि सुन्दरता अधिक, यह माधुर्य बिसेषि।
लाज कमी ते ढीठ-चित, प्रगल्भता यह लेखि ॥१७०॥
सदा विनय चित-वृत्ति जो, सो उदारता मानि।
अति थिरताई होति जिय, धैर्य भाव पहिचानि ॥१७१॥

(७) माधुर्य

सवैया

भौंह बँटा-सी बढ़ी मुसक्यानि, कपोलनि सों ससिको अनुहारै
गात बिराजत माजे-से, काहे को आँजे-से नैननि अंजन धारै ॥
अंगनि कांति "कुमार" निहारत, प्यारी क्यों मो दृग अंतर पारै।
दूषन लों सब भूषन जानि, अहे सुकुमारि उतारि न डारै ॥१७२॥

(८) प्रगल्भता

सवैया

अंचल झीने मे चंचलनैनि, "कुमार" निहारि रहे रस-पागी।
छूटी लटै लटकी-सी चलै, न डरै नव-जोवन के मद जागी ॥
अंग सो अंग लगाइ गई, सुलगाइ गई-सी अनंग की आगी।
घालि गई मृदु तूल-सो फूल,सु पीर अतूल-सी सूल-सी लागी॥१७३॥

(९) औदार्य

सवैया

सग तिहारोई चाहत अग ये, गाहत आनंद - वृंद फरे-से।
आन सुनै न "कुमार" ये कान, तिहारे अहो ! गुनगान भरे-से ॥
लोचन राउरे रूप-सुधा पिये, नैकु न लोक की लाज डरे-से।
प्रान तुम्है बिन, प्रान के नाथ ! ये जानिये आन के हाथ परे से ॥१७४॥

(१०) धर्य

दोहा

बरजि बरजि गुरुजन थकौ, दुरजन बकौ हजार।
बध्यौं प्रेम-गुन छुटत क्यो ? मन मेरो रिझवार॥१७५॥

(११) लीला लक्षण

वचन अग गनि भूषननि जो पिय की अनुहारि।
सोई लीला भाव है, रस-बस साजति नारि ॥१७६॥

'हम कैसे बनैहैं' इहाँ वचन अनुहारि है। यथा—

सवैया

पास सखी के विलास को हासु, धरै जिय प्रेम, प्रकास प्रबीनौ।
प्यारौ "कुमार" बसै जिय मे, तिय तातें रच्यौ पिय-वेष नवीनौ॥
प्रीति-पगी पगरी हरि की धरि सीस, अहै हरि यों चित लीनौ।
रूप अनूपसो जीति रतीको, रतीपति को जुवती जय कीनौ॥१७७॥

(१२) विलास-लक्षण

दोहा

मन, वच, द्दग, गति प्रभृति में कछु विशेष रस लेखि।
पिय-दरसन सुमिरन भये, भाव विलास बिसेषि॥१७८॥

यथा—

सवैया

साँकरी खोर अचानक भैंट भई, हरि आवत कुजगली सों।
बाल चली मुरि लाजनि नंद "कुमार" छुई कर कंज-कली सो॥
खीझि के भौहनि मोहन कों मुसक्यानि अकोर दै रीझ भली सों।
लोचन-कोर नचाइ, रचाइ गई चितचाइ, बचाइ अली सों॥१७९॥

(१३) विच्छित्ति-लक्षण

दोहा

थोरेई भूषन प्रभृति अँग-सोभा अधिकाइ।
वरनि-भाव विच्छित्ति सों, मानत हैं कविराइ॥१८०॥

यथा—

सवैया

केसरि रंग रँगी अँगिया, तन सादिबै सारी सों कांति पसारी।
कुंकुम-रेख बनी बिधु-बेष लिलार मृगंमद खौरि सुधारी॥
सादियै सादी मे साहि बिनी यह एसी न और "कुमार" निहारी।
लाल! लखौ अबला अब लागति, भोरजुन्हाई-सीभूषनवारी॥१८१॥

(१४) विव्वोक लक्षण

दोहा

आदर हू की ठौर तिय रचति निरादर-रीति।
प्रेम, हँसी, गर्वादि तें गनि 'विव्वोक' प्रतीति॥१८२॥

यथा—

सवैया

घालिये कैसे छरी? कर कॉपत, त्यो बरजोरी के बाँह मरोरी।
मीड़ौ कपोल, उरोज, अबीर लै, नेकु मुरे अँगिया तन छोरी॥
केती"कुमार"है गोपकिसोरी जु हौंहू कहा कछुकीन्ही है चोरी?
बैर परौ ब्रजनायक मेरे ही, ऐसे कहौ, कैंसे खेलिये होरी? १८३॥

पुनर्यथा—

आन मिलौ वरहू बरजे हु अचानक घाटनि बाटनि होऊ।
मोह मिठाई-सो बैननि बोलत, डोलत, सैन बतावत, सोऊ॥
डारत फाँसी-सी हाँसी"कुमार"लगावत गाँसी-से लोचन दोऊ।
काहूसों कान्ह ठगाइ रहे, ठग! ठाढे रहौ न ठगाइहै कोऊ॥१८४॥

(१५) किलकिंचित-लक्षण

दोहा

त्रास, हास, सुख, दुख, रुदित, रुष प्रभृतिक इक संग।
रचति तरुनि रस-बस छकी, सो 'किलकिंचित' रंग॥१८५॥

यथा—

कवित्त

जोबन रसाल, अलबेली - सी नबेली बाल,
केली के सदन हेम-बेली-सी सुहाति है।
लागी प्रीति नई या "कुमार" निरसंक भई,
प्रेम - रस रंग - मई अंग अरसाति है॥
सद - रद अंकनि कपोलनि, मयंक - मुखी
उघरत आँचर, अचानक रिसाति है।
खीझि सतराति, हँसि रीझि अरसाति,
परजंक मैं लजाति, पिय-अंक मे न जाति है॥१८६॥

(१६) मोट्टायित-लक्षण

दोहा

पियहि सुमिरि, लखि, सुनि, गुननि, चित में चाह जताइ।
तिय अँगिराइ, जँभाइ जँह 'मोट्टायित' सु बताइ॥१८७॥

यथा—

सवैया

काननि तान "कुमार" परी, तब तें हिय तेरो फिरै सँग दोरयौ।
काम भुजंग करी बस है, सु अरी! अरसाति भलै मन मोरयौ॥

गानरच्यौ पिय तौचित-चोरीकी, न्यान तुही पियको चित चोरच्यौ।
बाँधि अरी! दृगडोरनिसो इहि अगमरोरि निसंगमरोरच्यौ॥१८८॥

(१७) कुट्टमित-लक्षण

दोहा

गहन केस कुच, अधर रद देत, सम्भ्रमहि ठानि।
तिय कँपाइ सिर नहि कहै, यहै 'कुट्टमित' मानि॥१८९॥

यथा—

सवैया

जासो "कुमार" मिल्यौ मन है, सु मिली गली आपने गोप-किसोरी।
छल छबीलै छुई छतियाँ, मुख चूमत, छैकि करी बरजोरी॥
सीस कँपाइ, दुऔ कर को झहराइ, रिसाइ कै भौह मरोरी।
पून्यौनिसाकेनिसाकर-सोमुखखोलि, निसाकरीसाँकरीखोरी॥१९०

(१८) विभ्रम-लक्षण

दोहा

पिय-आगम संभ्रम प्रभृति, आनँद कै भरि आव।
भूलि भूषननि तिय धरै, सोई 'विभ्रम हाव'॥१९१॥

यथा—

कवित्त

केसरि पगनि धारी, जावक सु धारि खौरि,
ओढ़नी कै ओढी सारी, बाढी छवि न्यारियै।
उलटी कुचनि तानी कंचुकी न जानी, आँजि
सेंदुर सयानी, नैन अंजन बिसारियै॥

आगम बिहारी को "कुमार" इत प्यारी सुनि,
कँचन-नूपुर कर-अंगुरिनि धारिये।
हार कर्यौ रसना है, रसना है हार कर्यौ,
चाहत विहार कर्यौ, भूली सी निहारिये ।।१६२।।

ललित तथा मद-लक्षण—

दोहा

अंगन अति सुकुमारता कह्यौ 'ललित' है हाव।
'मद' कहि जोबन रूप गुन प्रेमहि गरब सुभाव ।।१६३।।

(१९) ललित

यथा—

कवित्त

देखौ चलि हाल बाल ल्याई हौं ललित लाल!
जाकी सुकुमारता "कुमार" अधिकाति है।
अंगनि सो लागै, लागै कठिन-सो पिय-वास,
मालती गुलाब पास ल्याए न सुहाति है।।
भूषन-विचार कहा? केसरि की खौरि भार,
डार-सी लचकि बेसम्हार भई जाति है।
मंद पग धारि, चारु चाँदनी पसारि,
केलि-घर लों पधारि, हारि हारि अरसाति है ।।१६४।।

(२०) मद

यथा—

सवैया

सुंदरि ठौनि उठौनि उरोजनि, कौन न धीर की धीरता-धाइक?
त्यौंही "कुमार" विलोकति वैरिनि बंकविलोकनि सों दुख-दाइक।।

जोवन-रूप कसे मदमाते, सितासित लाल रँगे बहु भाइक।
लागि रँगीली रसाल बिसाल,ये सालत हैं दृगसाल-सेसाइक॥१६५॥

(२१) विकृत-लक्षण—

दोहा

स्तम्भ, लाज, दुख प्रभृति सों हियौ रहै जहँ छाइ।
बचन कह्यौ नहिं जाय कछु, 'विकृत' भाव तहँ ल्याइ॥१६६॥

यथा—

सवैया

आजु अली! इहि मेरी गली निकस्यौ, तहँ प्रीतम मीत सुहायौ।
कीन्हौ प्रनाम कछू मिससों,मुसक्यानिकी बानिसों मोहि रिझायौ॥
आनन ओर चितै रहि रीझि, हौ होतु "कुमार" यहै पछितायौ।
बोलि न पासलियौ, हरि आयौ,गरौभरिआयौ,गरे न लगायौ॥१६७॥

तपन तथा मौग्ध्य-लक्षण—

दोहा

तन-सँताप पिय-विरह तें 'तपन' भाव यह ल्याइ।
जानि कहै जु अजान लों बात 'मौग्ध्य' तहँ ठाइ॥ १६८॥

(२२) तपन

यथा—

कवित्त

आगम असाढ़ के उकाढ़ बढ्यौ ताप तन,
लाग्यौ नेह गाढ़ हिय अब कैसे नाखिये?

करि गयौ परबस, सरबस हरि गयौ,
हरि गयौ ब्रज ते, "कुमार" कासों भाखिये ?
हियौ होत टूक-टूक कूकत कलापिनि के,
कोकिल-अलापनि क्या जीवौ अभिलाखिये।
धीरज हिरात घन गरजि-गरजि उठै,
प्यारे-बिन बरजि बरजि प्रान राखिये ॥ १९९ ॥

(२३) मौग्ध्य

यथा—

सवैया

मालती-मंजुकलीनि को हार, "कुमार" रच्यौ पिय सौतिन आगे।
मानिक-मौतिन-माल के संग, हिये पहिरायौ अली अनुरागे॥
मेरे हुलास बढ़्यौ अति ही, चहुँ पास विकास सुवाससो जागे।
हौं समुझी मुकताहल ये फल हेली चमेली के फूलनि लागे॥२००॥

(२४) विक्षेप-लक्षण—

दोहा

आधे भूषन-रचन, अध बचन, डीठि, गति मानि।
तिय जो कौतुक सों रचति, सो 'बिच्छेप' बखानि॥२०१॥

यथा—

कवित्त

देखति तमासौ पिय-देखन के मिस प्यारी,
झाखति झरोखे मे बिलोकी सखी वृंद में।
आधी कहै बात, आधे भूषन सुहात गात,
आधौ दीन्हौ जावक है पगनि अनंद में॥

अधं खुल्यौ घूँघट, "कुमार" आधी चितवनि
चित्त बनि चुभ्यौ सुखकंद नँदनंद में।
बादीगर ख्याल रचै नजरि के बंद कौ, ये
होति है नजर-बंद प्यारी मुखचंद मे॥ २०२॥

(२५) कुतूहल-लक्षण

दोहा

नीकी बात सुनै, लखै चित जो चंचल होत।
तहाँ 'कुतूहल' नाम को तिय में भाव उदोत॥ २०३॥

यथा—

सवैया

'आवत कान्ह "कुमार" इतै गली' काहू अली यह बोल सुनायौ।
त्यौही चली उठि भौन ते भामिनि, अंजन एक ही नैन लगायौ॥
हार बनावत हाथ लिए मुकतागन अंगन लों छुटकायौ।
प्रीतम-आगम-आतुरमानौसुचातुरचौक-सोपूरि बनायौ॥२०४॥

हसित तथा चकित-लक्षण—

दोहा

जोबन मे हँसि हसि उठै 'हसित' भाव यह लेख॥
भय संभ्रम तें चौकिबो, 'चकित' भाव सु विशेष॥ २०५॥

(२६) हसित

यथा—

सवैया

आँचर ऊँचे उरोज चलै, अँग गोरे खुले हियरा तरसावै।
भूलति हेली हिंडोरै इतै, सुधि भूलति-सी मिस बात बनावै॥

मोसों "कुमार" मिलै भरि अंक, निसंक भई उत नैन मिलावै।
बेर हि बेर कहै न हहा,हरि हेरि हि हेरि कहा हसि आवै॥२०६॥

(२७) चकित

यथा—

सवैया

केलि-समै रस मे रद्-रेख गई लगि प्यारी-कपोल मे ऊढि कै।
पीठि दै रूठि रही परजंक ही, अंक-भरी न खरी रस लूटि कै॥
जो लौं"कुमार"मनाइये तो लगि गाजिउठ्यौ घनघोर है टूटिकै।
सो सुधि छूटिसकै नहिये,जु अचानक चौंकलगी,छन छूटिकै ॥२०७॥

(२८) केलि-लक्षण

दोहा

प्रीतम-रसबस प्रेम सों रचति विलास अनेक॥
'केलि' भाव तह तरुनि को बरनत सुमति विवेक॥ २०८॥

यथा—

कवित्त

ढारति, भरति, छिन गागरि को नागरि! तू
रीझति खिझति ईठि दीठि झर लाई है।
विहसत कंज-सो "कुमार" तेरो मुख सोहे
भूली बुधि सुधि फूली निधि मनौ पाई है॥
कासों सतराति, इतराति ठाढ़ी मो सो कहा ?
नैननि चढ़ावे पिय नैननि चढ़ाई है।

नाहके मिलति कहा मेरे गरै डारि बाँह,
नाँह गरै डारि बाँह, बाँह ज्यो गहाई है ।।।२०९ ॥

इति रस-चेष्टाभाव-निरूपण

दोहा

दूति, सखी, बाला तथा परिव्राजिका और ।
धाय प्रभृति तिय पुरुष के गनि सहाय रस-ठौर ॥ २१० ॥

इनकी क्रिया मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ, परिहास, परस्पर-प्रशंसा, विनोद, मानापनोद, उपदेश, रहस्य-प्रश्न, प्रसादन प्रभृति जानिये । दिङ् मात्र यथा—

सवैया

तेरे विलास विलोकि "कुमार" रतीक गनी रति रूपमनी है ।
जौलौं मिली ब्रजनायक सो नहि,तौलों न तू गुन-रासि गनी है ॥
बाउरी! साँउरो रूप रँगे बिन, नैननि बादि बड़ाई घनी है ।
तैंही विरंचि रची रुचि सो,रुचि सो रमनीय बनी रमनी है ॥२११॥

—:❀:—

उद्दीपन भाव-लक्षण—

दोहा

उद्दीपन सहृदय-हिये जिहि थाई रस पूरि ।
ते उद्दीपन भाव गनि, सकल रसनि मे मूरि ॥ २१२ ॥
ऋतु, सुगन्ध, भूषन, कुसुम, कवित, नाच, संगीत ।
उपवन, उज्जल बात सब, रस सिंगार के मीत ॥ २१३ ॥

जल, दोला, पांचालिका, कंदुक, -नेत्र-निमील ।
द्यूत, केलि, हल्लोस कों गनि उद्दीप सलील ॥ २१४ ॥
१ शृंगारोद्दीपन ।

यथा—

कवित्त

बरसत मेह, सरसत नेह प्यारी पिय,
भरे सर सरित हरित बन पेखिकै ।
अँग बनै बसन सुगन्ध घने रसरंग,
मोहत अनंग-बस संग ही बिसेखिकै ॥
चमकत चपला "कुमार" उर लागे दोऊ,
प्रीति रीति पागे, अनुरागे प्रेम लेखिकै ।
होत सुख मगन अँगन ठाड़े महल के,
सघन घनाघन गगन छाये देखिकै ॥ २१५ ॥

दोहा

अँग-सोभा भुज दृग चलन, तिय पिय के अनुभाव ।
तेई होत परस्परहि, लखि उद्दीपन भाव ॥२१६॥

(१ नायिका के अनुभाव नायक को उद्दीपन) यथा—

सवैया

देखी सखीनि मे जा दिन ते, जिय ता दिन तें दिन रैनि रटै ज्यों ।
नेह बढ़ै, वह रूप चढ़ै दृग जीउ "कुमार" भौ चक्र चढ़ै ज्यो ॥
कुंज-गली मुसक्याइ चली, कहुँ फेरि चितै चितु वाही पढ़ै त्यो ।
मैनमई मन मेरे गड़ी, गढ़ि ठाढ़े उरोज की काढ़े कढ़ै क्यों ? ॥२१७॥

(२ नायक के अनुभाव नायिका को उद्दीपन)

यथा—

सवैया

आइ गयौ बनि वेष निमेष मे कुंज-गली इहि कुंज-विलासी।
छ्वै कढ़्यौ गातनि बातनि आनि "कुमार" सबै कुल-कानि विनासी।
कैसे बनै मिलिबौ, मिलिये रहै नैन सलोने सरूप विकासी॥
लोचन कोर लगाइगौ गाँसी सी हाँसी मे सो व्रजगाँउको वासी॥२१८

इत्यादि जानिये।

२ हास्योद्दीपन—

दोहा

विकृत वेष, भूषन, वचन, विकृत नाम गति, अंग।
विकृत हसी, चेष्टा प्रभृति, होत हास रस-रंग॥ २१६॥

३ करुणोद्दीपन।

दोहा

इष्ट-नाश, दाहादि लखि, वध, बँधनादि सु देखि।
व्यसन, दु:ख, दारिद्‌ प्रभृति, दीपन करुन विसेषि॥२२०॥

४ रौद्रोद्दीपन।

दोहा

मद, आयुध, भुज-बल-कथन, लहि रिपु-दल-संहार।
क्रुद्ध जुद्ध-उद्धत वचन, दीपन रौद्र मँझार॥ २२१॥

५ वत्सलोद्दीपन।

दोहा

सुत-विद्या, शौर्य्यादि गुन, विविध पराक्रम लेखि।
उद्दीपन वत्सल रसहि, भाव अनेक विसेषि॥ २२२॥

६ भयोद्दीपन ।

दोहा

विकृत सत्व,रव सून्य गृह,रन,वन,निरखि मसान ।
नृप, मुनि, गुरु अपराधहू दिपन भयानक न्यान ॥ २२३ ॥

७ अद्भुतोद्दीपन ।

दोहा

लोक अपूरब कर्म, वच, रूप, कला-गुन लेखि ।
इंद्रजाल, माया प्रभृति, दीपन अद्भुत लेखि ॥ २२४ ॥

इति उद्दीपन

— ❀ —

भाव के अन्य भेद

दोहा

सौतिन सों हितु परसपर, बंधु-विरह नृप मीति ।
गुरु, दैवत, हरि-भक्ति में भनत भाव रसरीति ॥ २२५ ॥
ज्येष्ठ प्रभृति के हास्य मे, अचेतननि मे शोक ।
पुत्रादिक पर क्रोध मे, कहत भाव कवि लोक ॥ २२६ ॥
कार्य प्रभृति उतसाह मे, जोध प्रभृति भय जानि ।
हिंसक प्रभृति हि घिनि लखै,ज्ञानी विस्मय मानि ॥ २२७ ॥
बंधु गेह-कलहादि तें भयौ जानि निर्वेद ।
मृग-छौनादिक-नेह मे मनोभाव को भेद ॥ २२८ ॥

१ भाव-सन्धि । यथा—

सवैया

चंद-मुखी कुच-कुंभनिसों, परिरंभ-अरंभनि के सुखसारनि ।
लंक में राखस-जो धनि को चित चाहत है हितकेलि बिहारनि ॥

होत इतै हिय उद्धत आतुर, सुद्ध है जुद्ध उछाह प्रचारनि।
जोर सुनै चहुँओर बढ़ी,रन दुंदुभि की घनघोर धुकारनि॥२२६

इहाँ धैर्य आवेग भाव की संधि है।

२ भावोदय। यथा—

सवैया

केलि के मंदिर दोउ मिले, मिलि कीन्हे "कुमार" विलास नवीनै।
प्यारी कहै रम के बम के, रत के मन के उपदेस प्रवीनै॥
प्यारे दए सुधि गौने की रैनि के, त्रास के भाव सबै हठ भीनै।
नैन-सरोज लजाइ, नवाइ, उरोज दुराइ दुओ भुज लीनै॥२३०॥

इहाँ धैर्य आवेग भाव को उदय है।

३ भाव-शबलता। यथा—

सवैया

चंद को बंस कहा यह सुद्ध है? बात विरुद्ध कहा यह सोहै।
क्यो मुख देखौ पियूख मयूख-सो दूषनि हानिको ग्यानि जु मोहै॥
मोसो कहा कहिहैं बुध सन्त ये, कैसे लहौ हिय धारिये जोहै।
रे जिय! धीरज क्यो न धरै,तरुनी-अधरै जु पिये घनिकोहै?२३१॥

इहाँ शुक्रसुता पर आसक्त ययाति की उक्ति मे वितर्क, उत्सुकता, मति, शका, दैन्य, धैर्य, भाव की शबलता है।

समाप्त उत्तमकाव्यप्रकरणम्।

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसाले आलम्बनोद्दीपनविभावव्यंग्य-
कथनं नाम पञ्चमोल्लास. ॥ ५ ।

षष्ठ उल्लास

अथ मध्यम काव्य-प्रकरण

दोहा

व्यंग्य प्रगट१ अतिगुप्त कै२, व्यंग्य और को अग३।
वाच्यसिद्ध को अंग४ पुनि, काकुकथित५ गनि संग ॥ १ ॥
गनि सन्दिग्ध प्रधान६ को त्यों ही तुल्य प्रधान७।
व्यंग असु दरन, आठ इमि मध्य काव्य कहि न्यान ॥ २ ॥

(१) अतिप्रकट व्यंग्य

"राखति भूषन में रुचिरंग तोलाल मिलाउरी सोने-से अंग मे॥"

इहाँ "मिलाइवौ" शब्द-शक्ति भव व्यग्य प्रगट है। यथाच—

दोहा

लहि वन-वास, निवास दुरि, बसि विराट नृप-पास।
सरबस दै परबस बसत, बरबस जीवन-आस ॥ ३ ॥

यहाँ "जीवन तें मरण भलौ" यह लक्षणामूल व्यंग्य प्रगट है।

(२) अतिगुप्त व्यंग्य

दोहा

देखत डर है बिरह को, बिन देखै चित-चाह।
देखे बिन देखे तुम्हैं नहीं चैन हिय-माँह ॥ ४ ॥

इहाँ "मिलकै फेरि जिनि बिछुरो" यह अति गुप्त व्यंग्य है।

(३) अन्यांग व्यंग्य

सवैया

चाह बिभूति की चित्त रहै, दिन रैनि हू सूल नजीक यहै है।
भारी जटानिको जूट परयौ सिर, सोमैं धरयौ जियजानि हितै है॥
चिंतिन भौ अरधंग हौ अंगनि देखी दिगम्बरता प्रगटै है।
सेवत तोहि भयौ सिवहौ पे बिषाद यहै, न सखा धनदै है॥५॥

इहाँ 'विभूति' प्रभृति श्लेष तैं सदाशिव रूप-प्राप्ति व्यग्य है। सो "सिव हौं भयौ" यह वाच्यार्थ को अग है।

एसें अलक्षितक्रम व्यग्य लक्षितक्रम को (अरु) लक्षित क्रम व्यग्य अलक्षित क्रम व्यग्य को अग जानिये।

एसे अन्य रसभावादि को अन्य रसभावादि अग। यथा—

दोहा

हाथ यहै मीडत कुचनि, मनि-मुदरी उजियार।
यह रसना-गुन कंचुकी नीबी-खोलनहार॥६॥

इहाँ भूरिश्रवा को कट्यो हाथ देखि जुवतीनि के विलाप मे करुणरस को शृंगार अग है।

यथाच—

सवैया

वंदतु लोक "कुमार" सबै मुनि कुंभज के तप पुंज-उज्यारे।
दीनौ घटाइ है विंध्य बढ्यौ रवि रुंधत देव सबै डर डारे॥
पीवे को पानिय पानि-पुटी धरयौ सिधु के नीर है मच्छविहारे।
अंजुलि एक मे एकहि बार दुऔ हरि के अवतार निहारे॥७॥

इहाँ मुनि-प्रीतिभाव को अद्भुतरस अग है।

यथाच—

सवैया

काननि वृंद बिलंद गिरिंदनि सिंधुनि हू धरि धीर सुभावै।
है धरनी बरनी धन एक तू, यों रसना भुव के गुन गावै॥
जौ लौं लखी नरनाह को चाह धरै भुवभार न आलस पावै।
हैरहीगूँगीसीदेवीगिराजकि-सीथकि-सी नकछूकहिआवै॥ ८॥

इहाँ भुव की प्रीतिभाव प्रभु-प्रीतिभाव को अग है। एसें और भेद अनेक जानिए।

(४) वाच्यसिद्ध—अग व्यंग्य। यथा—

सवैया

ज्यो ज्यों चढै त्यों बढ़ै मन मे भ्रम जोर मढ़ै जिय मोह प्रचारै।
बूड़त जीउ घरी लो घरी घरी हेली हरी बिन कौन निवारै?
मंत्र न तंत्र कछू चलै यापर, अन्तर दाह निरन्तर धारै।
मेघ-भुजंगनिको विषमे विषदेखौ वियोगिनि बालनि मारै॥ ६॥

इहाँ विष कहै जल, तहाँ जु हालाहल व्यग्य है। सो "मेघ-भुजग" वाच्यसिद्ध को अग है।

(५) काकुकथित व्यग्य—यथा—

दोहा

हनत दुसासन वीर नहिं संघारत अरि-सब।
चूरत हौ नहि गुरज सों दुर्जोधन को जब॥ १०॥

(६) सन्दिग्धप्रधान व्यंग्य

दोहा

लसत हसत-से दीह दृग, विहसत विमल कपोल।
चंद-मुखी मुखचंद लखि नँदनंदन चित लोल ॥ ११ ॥

इहाँ 'मुख देखत है' यह अर्थ प्रधान है कि 'कपोल चुंबन चाहत' यह व्यंग प्रधान है, यह संदेह है।

(७) तुल्य प्रधान व्यंग्य

दोहा

भले रूप गुन जाल को ख्याल पसारत लाल ?
खंजननैननि के बँधत दृग खंजन इहि हाल ॥ १२ ॥

यहाँ पर हृदय-ग्राहक रूप गुण उदारता, वाच्य है। अरु मुख देखिबे ही में दृग-बंधन यह व्यंग्य है। यह दोनों तुल्य प्रधान हैं।

(८) असुंदर व्यंग्य

सवैया

भोरहीं प्रीतम को लखि दूरते आदर भाव सुभाव जतायौ।
आसन दै निज पास "कुमार" इवा धरि पान सुगंध सुहायौ ॥
'प्यारो भयौ शाम आवत' यो कहि, लै कर बीजन आप डुलायौ।
सारसलोचनी आरसी दै कर, पानी सयानी सखीसो मगायौ ॥१३॥

इहाँ "रैन के चिह्न मेटौ" इह वाच्यार्थ तें व्यग्य सुंदर है।

जद्यपि एसो विषय नाही जहाँ उत्तम अथवा मध्यम काव्य न

होय, पै ताही प्रधानता तें तौन उदाहरण है। अंगागी रस पै अंग प्रधान तें मध्यम है। अगी के प्रधान में उत्तम है। इत्यादि जानिये।

इति श्रीयुत हरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसाले मध्यमकाव्य-विचारो
नाम षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

सप्तम उल्लास

अथ चित्र-काव्य-प्रकरण

शब्द-चित्र अनुप्रास

दोहा

तुल्य आखरनि को जहाँ रस अनुगुन है न्यास ।
अनुप्रास कहि द्वै तरह छेक, वृत्ति, परकास ॥ १ ॥

(१) छेकानुप्रास

दोहा

व्यंजन तुल्य अनेक जहँ एकै बार निहार ।
छेकन को प्रिय 'छेक' यह अनुप्रास निरधार ॥ २ ॥

यथा—

चैत चंद, सौरभ पवन, पिक कूकति कल बैनि ।
मनौ भयौ मनभावती मनभावन-सँग रैनि ॥ ३ ॥

इहाँ चैत, चंद, पवन पिक, कूकति कल, इत्यादि छेक हैं ।

(२) वृत्त्यनुप्रास

दोहा

व्यंजन एक अनेक वा सम जहँ बार अनेक ।
'वृत्ति' नाम को प्रास तहँ जानौं सुमति विवेक ॥ ४ ॥

जैसे चंद, वृंद, मद, गीत, मीत, भली, अली, सुगन्ध, निबन्ध यह वृत्तिप्रास है।

लक्षण

दोहा

मधुर आखरनि वृत्ति यह भनि 'वैदर्भी' नाम।
उद्भट 'गौडी', उभय सम 'पांचाली' अभिराम॥ ५॥

इनही सों उपनागरिका, कोमला, परुषा कहत हैं।

(१ वैदर्भी) यथा—

दोहा

ताप-कंद इक कंदरप, लहि मुख-चंद सहाय।
मलय बंध मिल गंध वह अंध कियौ जग हाय॥ ६॥

(२ गौडी) यथा—

खण्ड खण्ड भुव मण्डलहिं मण्डतु दण्डि अदण्ड।
चण्ड चण्डकर-सो तपै तुव परताप उडण्ड॥ ७॥

(३ पांचाली) यथा—

सवैया

दूरि तें भौंह कमान-सी तानिकै, बान-सी बंक चितौनि है दीन्ही।
ऐसी न चाहिये तोहि विलासिनि! बीस बिसैन दया दिल चीन्ही॥
कीन्हौ री! कान्ह निहारिभलेसुधि-हीन,अधीन, नतू सुधि लीन्ही।
सूनी गलीचलि ओट अलीके, भलीदुरिचोटकटाछनि कीन्ही॥ ८॥

लाटानुप्रास—

दोहा

तातपर्य के भेद ही, अर्थ एक ही ल्याइ।
फेरि शब्द कहिये वहै प्रास 'लाट' कहि जाइ ॥ ६ ॥

यथा—

सवैया

बोलति वैन "कुमार" सुधा-से सुधानिधि-सी मुख-कांति पसारी।
जोर जग्यौ तन मे नव जोबन, जोबन मे प्रिय नेह निसारी ॥
जीति लई अँग जेव सों केसरि, केसरि रंग बनी अँग सारी।
प्यारी भई हरि नैन-वसीकर नैन-बसी बिसरै न बिसारी ॥१०॥

यथाच—

दोहा

जाके ढिग तिय, तासु है अनल ताप हिम-धाम।
जा ढिंग तिय नहि, तासु है अनल-ताप हिम-धाम ॥११॥

यमक—

दोहा

अर्थ-सहित आखर बहुत, जहँ सुनियतु है फेरि।
भिन्न अर्थ के भेद ही 'यमक' नाम तहँ हेरि ॥१२॥

यथा—

सवैया

पूरन के सरिता सरसीउ, अपार बिसारद वारिद ये हैं।
कीन्हे हरे वन हैं नव ग्रीषम के रविसार दवारि दये हैं ॥
देखि इन्हें हिम-सैल प्रकास वे, तुच्छ बिसारद वारिद ये हैं।
सेत भये निज कीरतिसों अब सुच्छ बिसारद वारिद ये हैं ॥१३॥

यथाच—

चाह सिंगार सवाँरन की, नव वैस बनी रति वारन की है।
सोभा "कुमार" सिवारन की सिर सोहति, जोहति वारन की है॥
हंसनि के परिवारन की पग जीति लई गति वारन की है।
याहि लखै सर वारन की छनकौ रति के पति वारन की है॥१४॥

यमक-भेद—

दोहा

चरन अंत, मधि, आदिहू सकल अर्ध आवृत्ति।
श्लोक अर्ध मे सकल मे बहुत यमक की वृत्ति॥१५॥

(१) चरण के आद्यन्त मे शृंखला-यमक। यथा—

सवैया

घन के निरखे तन ताप तई, दिन वे ही भले हैं निदाघन के।
घनकेलि "कुमार" हियै सुधिकै, सुधि भूलति आगम सावन के॥
वन के भर सोहैं भरी सरिता, अब क्यों मनभावन आवन के।
वन केकिनि कूकत हूक उठी हिय लागत घात, मनौ घन के॥१६॥

(२) मध्य में शृंखला-यमक। यथा—

दोहा

लेत जितौ हरि हरि बरस, दिनकर कर परकासु।
घरी एक जल जलद वर, बरसत सतयुग तासु॥१७॥

(३) सबै पद मिलै पंक्ति नाम यमक। यथा—

दोहा

धीरज के बल धारि नहिं, धीरज के बल धारि।
धीरज के बल धारि कहँ, धीरज के बल धारि ॥१८॥

(४) युग्मनाम यमक। यथा—

दोहा

लाल न सोहैं जोहि दृग, लाल नसो है जोहि।
काम दहै यह तोहि तें काम दहै यह तोहि ॥ १९ ॥

(५) पहिलौ चौथो, दूजौ तीजो पद मिलै, परिवृत्ति यमक।

यथा—

दोहा

जात कहा उत सैन दै, कै मनु हारि सुनैन।
कै मनु हारि सुनैन छबि जात कहा उत सैन ॥२०॥

(६) अर्द्धावृत्ति समुद्गक

दोहा

अवनी के वर सोहनै, भुव-हित संग रसाल।
अवनी के वर सोहनै, भुव हित संग रसाल ॥ २१ ॥

श्लोकावृत्ति, महायमक जानिये। चरन मध्य द्वै, तीन, चार, भाग करि यमक रचै समुच्चय नाम अनेक भेद हैं। दिङ्मात्र यथा—

सवैया

देखि "कुमार" अनूप अनूपम, रूप कहा हिय धीरज धारे।
हौ तुम ही इक ताप-निवारक, वारक देखे ही नंददुलारे ॥

एहो ! विदेस को जान कहौ, न कहौ रहै क्यौं करि प्रान हमारे।
मानत हौ तुम मोहित जो, मति मोहि तजो मति मोहि पियारे ॥२२॥

एसै और भेद नलोदय प्रभृति मे देखिये।

पुनरुक्तवदाभास

दोहा

एकार्थक पुनरुक्त सो शब्द परत जहँ जानि।
'पुनरुक्तवदाभास' तहँ अलंकार पहिचानि ॥ २३ ॥

यथा -

सवैया

बाहु बली तुव सूरज तेज, प्रताप को पुंज जहान बखानै।
तू बर जोर सदा अरि वैरिनि, डारत है करिकै कतिलानै ॥
नैकु रिसात ही अत्र गहै जयपत्र लहै नृप भू पर न्यानै।
दीन करै परबा जनि कों, यह तो करवाल, कृपा नहि जानै ॥२४॥

इहाँ तेज प्रताप, बर जोर, अरि वैरिन, नृप भूप, करवाल कृपाल ये पुनरुक्तवत् हैं।

अथ बंधचित्र

(१) एकाक्षर

दोहा

सैसि सैखि साँसै ससै, सौ सौ सो ससु सोस।
सांसि सांसि ससौ सुसौ, संसु संसु ससि सोस ॥ २५ ॥

(२) द्वयक्षर

दोहा

सासु ससुर सारे सरस, सारी सो ससुरारि।
रसरूरौ रिस सार सिसु, रासि रोस सो रारि ॥ २६ ॥

की की कै कै के किका, कूकै केका काक।
कल कौ को कल कलकि कै, कीलै कोकिल काक ॥ २७ ॥

(३) त्र्यक्षर

रचत रोच चरचत चितै चितै चितै चितराति।
चारु चातुरी रुचि रचै, चोर-रीति रति राति ॥ २८ ॥

(४) चतुरक्षर

दोहा

कोपि कोपि लोपे कलपि, कलप लोक को पाल।
गोकुल-गोपी गोपकुल-पाल, कृपाल, गुपाल ॥२९॥
है है हाहा हाह हो रारै रौरै रारि।
जीजै जोजै जैज जौ, धूधं धोधी धारि ॥ ३० ॥

(५) एक वर्ग

दोहा

थिति, निधान निधि, थान निस, दीननि दीनै दान।
दुनी धनी नँदनंदनै, नीधन धनै निदान ॥ ३१ ॥

(६) निरोष्ठक

दोहा

सीतलकर हर-सिररतन, राजत कला-निधान।
नखत-राज निसि चरत नित, धरत कलंक निदान ॥ ३२ ॥

(७) गूढ चतुर्थपद

दोहा

हास कलोलनि फागु बस, अबला निबलनि पाइ।
रचत लाल ! मनभाइयै, हाल गुलाल चलाइ ॥३३॥

(८) प्रश्नोत्तर

दोहा

गनियतु पंचन मे यहै पच प्रपंच विवाद।
मिलै पंच मे तीसरो, बात जानिये वाद ॥ ३४ ॥

(९) भिन्न प्रश्न

दोहा

बरन तीन मे बसति यह, बरन तीन मे औरि।
भूषन इक अरु राग इक कहौ सुकवि ! दिलदौरि ॥ ३५ ॥

एसे अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, अनुलोम, प्रतिलोम आदि भेद 'विदग्धमुखमण्डनादि' तें जानिये।

दोहा

खड्ग प्रभृति के आकृतिहि, वर्ण रचत जहँ देखि।
तिहि बंधहि के नाम सो चित्र अलंकृत लेखि ॥ ३६ ॥

विस्तार-भय तें इहाँ न लिखे।

इति शब्दचित्रप्रकरण

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज कुमारमणिकृते
रसिकरसालग्रन्थे चित्रकाव्यनिरूपणम्'
नाम सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

अष्टम उल्लास

अथ अर्थचित्र-प्रकरण (अलंकार)

उपमालंकार—

दोहा

बरन्यौ है उपमेय जँह, तह उपमान बखान।
दुहुँन धर्म इक ठानि कहि, समता वाचक ग्यान ॥ १ ॥
इनि चारयौं मिलि तुल्यता लसति चारु जिहि ठौर।
पूरन 'उपमा' कहत हैं, बुध जन बुधि की दौर ॥ २ ॥
सकल चित्र-रूपहिं धरति, यो उपमा यह एक।
हरति चतुर-चित ज्यौं नटी, धरि-धरि स्वाँग अनेक ॥ ३ ॥

यथा—

सवैया

बान समान छुटे धुरवा, पुरवाई धुँधीरनि धूरि-सी छावै।
दुंदुभि-सी गजै घोर घटा, गजपाँति-सी बिज्जु कृपान-सी धावै॥
बूंदै बड़ी बरछी-सी लगै, बिन नंद-"कुमार" धौ कौन बचावे ?
छातीडराति,हिराति है धीरता,पावस-राति अराति-सी आवै ॥४॥

उपमा भेद

दोहा

इनि चारयो मे एक, दो, तीन-हीन जँह देखि।
आठ भाँति 'लुप्तोपमा' अर्थ-चित्र मे लेखि ॥ ५ ॥

१ वाचकलुप्ता, २ धर्मलुप्ता, ३ उपमानलुप्ता, ४ धर्मवाचकलुप्ता, ५ वाचकोपमेयलुप्ता, ६ वाचकोपमानलुप्ता, ७ धर्मोपमानलुप्ता, ८ धर्मोपमानवाचकलुप्ता ।

क्रमते यथा—

कवित्त

छन छबि गोरी, भोरी१, बिधु-सो वदन२, तन-
सोहति मदन-तिय काति ३ अभिराम है।
दृगनि ४ कपूर भई, निरखति मोहि गई,
हरिनी के नैननि ५ को सुषमा सुठाम है।।
रूप निरमल, दरपन छबिभाल६, मुख-
कंज-सो हसनि हरि निरखि सकाम ७ है।
कंठीरव-कटि,८ कल कंठी - कंठसुर, नील-
कंठ-केसपास नीलकंठ कैसी वाम है ॥ ६ ॥

इहाँ छन छबि-सी गोरी, विधु-सी वदन, सुदर तन, रति-तन-कैसी कांति, कपूर-सी-सीरी लगी, हरिनी के नैननि-कैसी नैननि मे शोभा विशाल है, दरपन-छबि-सी भाल-छबि है, कंज विकसनि-सी मुख विहसनि सोहै, कठीरव-कटि-सी कटि सूक्ष्म है, यह विवक्षित है। तहाँ तौन लोप जानिए।

(१) मालोपमा

दोहा

खंजन-से, वर कंज-से मनरंजन सुख दैन।
सरफर-से, वर सफर-से, मंजु मुखी के नैन ॥ ७ ॥

इत्यादि मालोपमा है।

(२) अभूतोपमा

दोहा

जो मयंक निज अंक ते डारे अंक निकारि।
तौ निहारि, अनुहारि ये, तुव मुख सो वरनारि ! ॥ ८ ॥

इत्यादि अभूतोपमा-भेद अनेक हैं।

अनन्वयालंकार—

दोहा

एकहि को उपमेयता उपमानता प्रमानि।
चित्र 'अनन्वय' कहत है, कवित माँह पहिचानि ॥ ९ ॥

यथा

सवैया

सुंदरि ! चंद-मुखी इक तोहि मे, सुंदरता-सम सुंदरताई।
सील-सो सील, सयान सयान-सो, तोमे निकाई-सी न्यान निकाई ॥
प्रीतम के अनुराग-सो भाग सो, तेरो सुहाग सुहाग-सो भाई।
रूप-सो रूप, अनूप बन्यौ बनी तो-सी तुही विधि एक बनाई ॥१०॥

इहाँ कहीं साधारण धर्म कहूं नाहीं, ताते द्वै भेद हैं।

उपमानोपमालङ्कार

दोहा

है उपमेय परस्परहि, सोई है उपमान।
भनिये 'उपमानोपमा', अर्थ-चित्र तँह न्यान ॥ ११ ॥

यथा

तारे तुल तारे कुमुद, तारे कुमुद सँकास।
सरवर लसत अकास सो, सरवर-सम आकास ॥ १२ ॥

प्रतीपालंकार—

दोहा

जहँ प्रसिद्ध उपमान जो, सो उपमेय रचाइ।
तहँ 'प्रतीप' भूषन भनत, पंच प्रतीप सुभाइ॥ १३ ॥

(१) प्रतीप। यथा

सवैया

चंदमुखी ! मुख-सो तुव चंद, सुपावस-वारिद-वृंद दुरायौ।
नैन-से नीरज नीर दुरे, तुव गौन-सो हंसनि-गौन रचायौ॥
देखि "कुमार" तिहारेई अंग-सी बातनि जो बिसराम-सो पायौ।
तोसों वियोग दै बैरी बिधाता अहो? इनहीं सो वियोग बनायौ॥१४॥

(२) प्रतीप

दोहा

जहाँ अन्य उपमेय लहि, बन्यं निरादर देखि।
दूजौ भेद प्रतीप को जानौ तहाँ बिसेषि॥ १५ ॥

यथा—

रंचक ऊँचे उरज लहि, नहि गहि गरब गँमारि !
अतिरंगी नव नारँगी, बाग-बहार निहारि॥ १६ ॥

(३) प्रतीप

दोहा

जहाँ बन्र्य उपमेय लहि, अन्य निरादर ल्याइ।
तीजौ तहाँ प्रतीप को तीजौ भेद बताइ ॥ १७ ॥

पूर्व प्रतीप तें तृतीय विपरीत है—दूजे में निरादर मात्र तें भेद है—

यथा—

दोहा

कत दीपति ! दामिनि दमक तकि घन-संग उमंग।
लखी स्याम निसि राधिका, तो-सम स्यामल संग ॥ १८ ॥

(४) प्रतीप

दोहा

जहाँ बन्र्य तें अन्य मँह, उपमा वचन-निषेध।
चौथो भेद प्रतीप को बरनत तहाँ सुमेध ॥ १९ ॥

यथा—

कवित्त

राखिये दुराय कौने कौने, गोन आये देखि,
सोने-से सलौने अंग मौने तिय गहतीं।
गुन-गनआगरी ये नागरी 'कुमार' लखि,
नख सिख-रूप अनमिष नैन रहतीं ॥
जुरि जुरि आवतीं है सोभा के सराहिबे को,
हेली ! ये गवेली न नवेली भेद लहतीं।
बाढ़त हँसी है, मेरे जिय मे बसी है मेरे,
घर बसी ससी-सो वदन तेरौ कहतीं ॥ २० ॥

(५) प्रतीप

दोहा

जहाँ वृथादिक शब्द कहि, कमी कह्यौ उपमान।
मानत तहाँ प्रतीप को पाँचौ भेद निदान ॥ २१ ॥
तेरे गोल कपोल-सम होनु न पूरि मयंक।
जानि वृथा विधिहू रच्यौ ता मधि अंजन-अंक ॥ २२ ॥

रूपकालङ्कार—

दोहा

जहँ रजौ उपमेय को रचि उपमान अभेद।
कै भेदहि तद्रूपता, सो रूपक द्वै भेद ॥ २३ ॥
गनि अभेद रूपक प्रथम, दूजो है तद्रूप।
अधिक, कमी, सम भाव तें ये द्वै त्रिविध सरूप ॥ २४ ॥

(१) अधिक भाव-अभेद रूपक

सवैया

नेह हियै सरसावै "कुमार", बिलोकै सुधारस को बरसावै।
भाग तिहारौ निहारौ अली अनुरागिनि क्यौं बस रीझि रिझावै ॥
सुंदर आनन चंद है कान्ह को, लोचन कैरव लाजत छावै।
याहि लखै ब्रज-नौलबधू-दृगकौल कदम्ब बिकासहि पावै ॥२५॥

(२) न्यून भाव अभेद रूपक

सवैया

है सनसार रच्यौ करतार पै, काम औ रोष तहाँ रिपु ठानै।
मोहिबे को सबके मन को धन त्यो जुवती जन द्वै तहँ मान ॥

देखे तपोनिधि हौ तुम ही धन लेखे नहीं इनके बस न्यानै।
सेवक कों वर देवे कों जू नर-देह धर हर-व हौ जानै ॥ २६ ॥

(३) समभावाभेद रूपक

सवैया

कज्जल स्याम बनै अभिराम घनै छबिधाम "कुमार" निहारे।
चारु बनी बरुनी दुति साँकर कार ललामी सिंदूर सँवारे ॥
प्यारी ! ये सुंदर सारी अँध्यारी सों सोहत, मोहत मोहन प्यारे।
मैन-चमू चतुरंग-हरौल उतंग मतंगज नैन तिहारे ॥ २७ ॥

(४) अधिकभाव तद्रूप रूपक

सवैया

गाढ़ परी-सी असाढ़ के आगम देखि उकाढ़ घनाघन जागै।
औधि बिसूरि वियोग बिथा सों तच्यौ तिय को हिय है अनुरागै ॥
ज्यौ बरसै जल त्यौं-त्यौं 'कुमार" परै कल क्यों, पल क्यों पल लागै ?
सो जड़-सी बड़वागि लगी तनताप बड़ी बड़वागिनि आगै ॥ २८ ॥

इहाँ तन-ताप बड़वाग्नि में भेद कहि तद्रूपता कही।

(५) न्यूनभाव तद्रूप रूपक

सवैया

एक सरूप सनातन हौ, गुरु ग्यान सनातन न्यान बखानै।
तीसरे नैन बिना हरदेव हौ, सेवक-मोष-विधायक मानै ॥
द्वैभुज केसव के अवतार "कुमार" कहै गुरु हो पहिचानै।
एक ही आनन चारहुँ वेद के गायक हौ कमलासन जानै ॥ २९ ॥

कमा भाव से शोभा है।

(६) समभाव तद्रूप रूपक

सवैया

कांति हरै अरविन्दनि की मुकता नखतावलि वृन्द बिहार्‌यौ।
नन्दकिसोर चकोर भयो मुसक्यानि सुधा हिय-ताप निहार्‌यौ॥
ऊँचे अटा पर आनि "कुमार" सुनील निचोल घटा तें उघार्‌यौ।
चंद अमंद धरै दुति है, इत सुंदर तो मुखचंद निहार्‌यौ॥३०॥

इहाँ चौथी तुक मे चद्र तें भेद कहि, मुख मे चन्द्र-तद्रूपता कही। इहाँ निरवयव रूपक है।

(७) सावयव रूपक

कवित्त

मृदु मुसक्यानि मे डुलत मोती बेसर को,
नचत रचत सो विधान छबि भारी कौ।
अलक झलक प्रतिबिम्बित "कुमार" दीप,
दरपन विमल कपोल दुति न्यारी कौ॥
अजब जवनिका है घूँघट विराजि रह्यौ,
काँकरेजी कंचन किनारीवारी सारी कौ।
झाँखी चहि पेखति तमासौ प्यारी पेखन को,
प्रीतम को पेखनौ भयो है मुख प्यारी कौ॥ ३१॥

परिणामालङ्कार

दोहा

जहँ उपमेय-सरूप ही परिणति ह्वै उपमान।
सकै साधि निज काज कों, तहँ 'परिणाम' विधान॥ ३२॥

यथा—

दोहा

फूल-माल करकंज गुहि, मजु दई तुम लाल!
तुम तन दीन्ही ये लखी, तिय-दृग पंकज-माल ॥ ३३ ॥

इहाँ 'कर' उपमेय रूप है, उपमान कज। गुहिबौ देबौ कार्य साधतु है। केवल नाहीं। ऐसे पकज-दृग-रूप ह्वै साधतु है।

यथाच—

दोहा

केवटनाथहि निज-कृपा दै उतराई दान।
गये पार सुरसरि उतरि, रघुपति कृपानिधान ॥३४॥

इहाँ उतराई उपमान कृपा उपमेय रूप भये, केवटनाथ कार्ज कीन्हो है।

उल्लेखालंकार

दोहा

एकै वस्तु अनेक कों भाँति अनेक दिखाय।
अर्थ-चित्र 'उल्लेख' कहि बरनै कवि-समुदाय ॥३५॥

(१) प्रथम उल्लेख, यथा—

कवित्त

ज्ञानिनि परम धाम, सेवकनि कामतरु,
कामिनिनि जानैं कामदेव घन जेवही।
नागर नरनि जानैं, तिहूँ लोक रूप भूप,
देवतनि जानैं देव-देव भजि सेव ही॥

कहत "कुमार" गजराज जानैं मृगराज,
मध्यनि प्रमानैं गाज त्याज अहमेव ही।
आवत खुसाल रंग-भूमै नंदलाल लखि,
कंस जानैं काल, बाल जानै वसुदेव ही ॥३६॥

(२) द्वितीय उल्लेख

दोहा

एकै बात जु एक को होय अनक विधान।
भेद और उल्लेख को मानत यहै निदान ॥ ३७ ॥

यथा—

कवित्त

सूधे ही सुभायनि सुधा है बचननि जानी,
आनन मे सुधानिधि मानी छवि छाज में।
सीरी ये सकल सुंदरीनि मे "कुमार" देखी,
देवी ये दिपति देव धरम के काज में ॥
भागमई सकल, सुहागमई सौतिनि में,
सीलमई सखिनि मे सुख के इलाज मे।
नेह-रस साजमई, रति रति-राजमई,
लाजमई जानी गुरु-नारिनि-समाज मे ॥ ३८ ॥

स्मृति भ्रान्ति-सन्देहालंकार

दोहा

लहि सुधि कों, भ्रम कों तथा धोखो कछु चित धारि।
स्मृति, भ्रान्ति, सन्देह कहि भूषन तीन विचारि ॥३६॥

स्मृत्यलंकार, यथा—

सवैया

बोलि उठे बरही बरही बिरही बरषा निसि कैसे बितावै ?
देखि "कुमार" तहाँ घन दामिनि केलि मे कामिनि कों चित ध्यावै॥
स्याम घटानि के ओर दुर्यौ कढ़ि चंद को छोर जहाँ छवि छावै।
कंचुकी नील की कोर खुली कुच-कोरक-कांति तहाँ सुधि आवै॥४०॥

भ्रान्ति, यथा—

दोहा

कठिन उरोजहिं करज-छत ललित दियौ नँदलाल।
कंज-कुसुम-केसर लग्यौ जानि छुड़ावति बाल॥४१॥

(१) अन्योन्य भ्रान्ति, यथा—

दोहा

दरी दुरे तुव दुवन नृप! तिय वंदे मुनि मानि।
वंदत वे निज तियनि हूँ वन-देवी जिय जानि॥४२॥

सन्देहालङ्कार, यथा—

कवित्त

रसना रतन दीप स्याम रेख किधौं यह,
मदन को लेख है सिंगार रस भाव सों।
कहत "कुमार" किधौं जमुना की धार मिली,
मुकता प्रवाल हार संगम सुभाव सों॥

कंचन-सिढ़ीनि मनमथ के मनोरथ को,
पंथ बँध्यौ किधौं नीलमनि के बँधाव सों।
कैधौं छबि-राजी सों विराजी तन तरुनी के,
देखि रोम-राजी लाल राजी चित-चाव सो।। ४३।।

यथाच—

दोहा

विधु-मधि नग विद्रुम किधौं, इंद्रवधू को जाल।
हौ जानी विहसत बदन, बाल रदन ये लाल! ४४।।

इहाँ निश्चयात् संदेह है।

अपह्नुत्यलङ्कार

दोहा

कछू वस्तु के धर्म को कीजे पहिल छिपाउ।
और धर्म ठहराय तहँ 'शुद्धापह्नुति' नाँउ।। ४५।।

यथा—

कवित्त

संकति हरिन कोऊ, मानत कलंक कोऊ,
सागर-मथन पंक लाग्यौ मानि लयौ है।
काहू ससांक, काहू मंदर को घाव लह्यौ,
कीन्हौ तम-पान सो भराव उर छयौ है।।
सुधानिधि माँह कोऊ बसुधा की छाँह कहै,
कहत "कुमार" ठहराव येक ठयौ है।

राहु के गिलत, उगिलत गल-बीच परै,
गाढ डाढ़ लागी, लील सोई परिगयौ है ॥ ४६ ॥

इहाँ हरिणादिक को मतान्तर तें छिपाव है ।

(१) हेत्वपह्नुति

दोहा

बात सहेतुक ठानि कै, कीजे जहाँ दुराउ ।
'हेतु अपह्नुति' नाम को भूषन तहाँ बताउ ॥ ४७ ॥

यथा—

सवैया

चंपक-बेली अकास न ऊगै, न द्यौस मे दीप प्रकासहि मेलै ।
दामिनि दीपति नाँहि "कुमार" लहै घन-संग जु अग उघेलै ॥
सूर-प्रकास मे चाँदनी नाँहि हिये यह काम की ताप उवेलै ।
संग सहेली सों कंदुक केली सों सौधके अंगनि अंगना खेलै॥४८॥

(२) पर्यस्तापह्नुति

दोहा

निज गुन जासु दुराइये, वहै अनत ठहराय ।
'पर्यस्तापह्नुति' तहाँ मानत हैं कविराय ॥ ४९ ॥

यथा—

दोहा

नहीं हलाहल, विष विषय, विष हर खात सुचेत ।
विषय-ध्यान ही ग्यानमय होत अयान अचेत ॥५०॥

(३) भ्रान्तापह्नुति

दोहा

और बात को और के भ्रम यह जिय मे होइ।
तत्त्व बात कहि मेटिय, 'भ्रान्तापह्नुति' सोइ ॥ ५१ ॥

यथा—

दोहा

देह छीन, हियरा कपत, तपत रुमंचित गात।
कहा चढ़्यौ जुर ? नाँहि सखि ! अतनु-ताप अधिकात ॥५२॥

(४) छेकापह्नुति

दोहा

जहँ दुराइये तत्त्व निज, कहिये और बताय।
'छेकापह्नुति' नाम यह छेकनि सुनै सुहाय ॥ ५३ ॥

यथा—

पगनि लगति, प्यारो लगति बोलि मधुरसुर बानि।
अली ! भली प्रिय-प्रीति कहि, नहिं पग नूपुर जानि ॥ ५४ ॥

(५) व्याजापह्नुति

दोहा

छल प्रभृतिक शब्दहिं कहै, बात और ठहराय।
'व्याजापह्नुति' नाम तहँ भनत भेद, कविराय ॥५५॥

यथा—

सवैया

गाजत अंबर बाजत बंब सजै जदु-नायक फौज महा कों।
दीरन होत दरीभुत है, मिस माँहिनि के कहि देत रुजा कों॥

बाजिन की खुर तार छरी, परी मूरछितै छिति देखि बिथा कों।
उच्छलि कै जलरासि यहै जलवीचनिके छल सीचै धरा कों ॥५६॥

उत्प्रेक्षालङ्कार

दोहा

वस्तु, हेतु, फल, रूप कहि, कछु संभावन ठानि।
'उत्प्रेक्षा' भूषन यहै तीनि भाँति पहिचानि ॥ ५७ ॥
वस्तूत्प्रेक्षा विषयजुत, नहीं विषय कहुँ होय।
विषयसिद्ध, नहि सिद्ध त्यौ फल हेतुहि मे दोय ॥ ५८ ॥

(१) उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा, यथा—

कवित्त

'राम नरपाल' को निहारि रन ख्याल खग्ग,
खुलै विकराल दिगपाल कसकात हैं।
मुंडनि की माल दै महेस मन रंजत,
दुवन-दल गंजत, कहाँ लौ गनै जात हैं॥
वैरी-वरवारन हजारन विदारे भारे,
गिरि गये गिरि मानौं बज्र के निघात हैं।
उछलि उछलि परैं कुंभनि तें मोतीगन,
गगन-आँगन उडुगन-से दिखात हैं॥ ५६ ॥

इहाँ उडुगन में मुक्ता संभावित हैं। करि-कुंभ-विदारण विषय उक्त है।

(२) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा, यथा—

सवैया

मंद बयारि चलै दल अंगुलि, नूत लता मनौं नाच ठये हैं।
बिन्दु अमन्द पिये मकरन्द के, पान-छके अलि गान छये हैं॥
नैकु प्रकास गहै चहुँ पास विकास पलासिनि फूल नये हैं।
मानौं वनी वधू अंग बनै रति-रंग घनै नख-घात दये हैं ॥६०॥

इहाँ पलाश फूल नख-घात रेख वस्तु सभावित है। वसन्त वनी-संगति विषय उक्त नाहीं।

दोहा

जहँ अहेतु को हेतु करि अफलहि फल करि मानि।
तहाँ हेतु फल नाम कहि, उत्प्रेक्षा पहिचानि ॥६१॥

(३) सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा, यथा-

कवित्त

सुरुचि सुवास के निवास चारु निरमल,
चौर भौर-भीर मोर-पच्छनि सों तारे हैं।
तम-परिवार-से, सिवार-से निहारे बार,
छूटे छवि भारे, मखतूल वारि डारे हैं॥
जसुधा-कुमार बस कीबे कों "कुमार" कहै,
प्यारी सनमानि, मन मानि सिर धारे हैं।

ताही सों रिसानी कही मानी न अयानी-सखि ,
यहैं बिनती कों पग लागत तिहारे हैं ॥ ६२ ॥

इहाँ "पग लगिबे में" बिनती-हेतु संभावित है। रिसैबौ, बार छूटिबौ सिद्धविषय है।

(४) असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा, यथा —

सवैया

संग सदा मिलि कीन्हौ निवास,"कुमार" विलास हुलास घनेरो।
संग मिलै निसि बासर न्यान न आन गन्यौ सुख दु ख निवेरो॥
भाई ! चले परलोक तुमै नहीं दीरन भौ हिय मेरो करेरो।
जानि घनो अपमान मनों, दृग मूंदि न देखत आनन मेरो ॥६३॥

इहाँ 'दृग मूंदिबे' मे अपमान-हेतु सभावित कीन्हौ, सो अपमान असिद्धविषय है।

(५) सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा यथा—

दोहा

बिरहिनि के, कोकीनि के ढारतु दृग-जल जानि।
तिहिं पूरत पूरन ससी, वारिधि वारि प्रमानि ॥६४॥

इहाँ 'दृग-जल-धार ढारिबे' मे वारिधि-वृद्धि-फल सभावन कीन्हौ। पूर्ण शशी सिद्धविषय है।

(६) असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा, यथा—

सवैया

पास हुतासन ज्वाल प्रकासिकै साँझ समै अथयो अधमान कों।
ऊँचे बँध्यौ गुन मानौ मयूख सो नीचे रचै तम धूम के पान को॥
द्वैज को चंद "कुमार" भनै, तन छीन ह्वै साधै समाधि-विधान कों।
तातें सखी ! नख की, मुख को, छवि पावै मनौ बढिहाल निदान कों॥६५॥

इहाँ तपोविधान में नख-मुख-समता फलउत्प्रेक्षित कीन्ही असिद्ध-विषय है।

(७) गम्योत्प्रेक्षा, यथा—

दोहा

जानि, मानि, प्रभृतिक जहाँ व्यंजक शब्द न होय।
'गम्योत्प्रेच्छा' नाम तहँ, मानत हैं कवि लोय॥६६॥

यथा—

दोहा

साँझ गई बनि और छवि, भई और छवि भोर।
जगी रैनि अनुराग-रँगि भये लाल दृग-कोर॥६७॥

अतिशयोक्ति-अलंकार

दोहा

जहाँ दुरयौ उपमान मधि, कहि उपमेय बताय।
'रूपक-अतिशय-उक्ति' तहँ, मानत कवि-समुदाय॥ ६८॥

यथा—

सवैया

आज कहूँ जब तें इत ओर भले मन-भावन दीन्ही दिखाई।
कौतुक भौ तबतैं निरखौ अरविन्द सों चंद है प्रीति लगाई॥
सौध के अंगनि भाग बड़े थिर देखी तजै चपला चपलाई।
है मन-रंजन खंजन के जुग, मंजुल मोतिनि की झरि लाई॥६६॥

अतिशयोक्ति-भेद

दोहा

होय अपह्नुति सहित कै आन उकति कहि ठानि।
सापन्हव, भेदक तहाँ अतिशयोक्ति द्वै मानि॥ ७० ॥

(१) सापह्नवातिशयोक्ति, यथा—

सवैया

लाल प्रवाल के बीच 'कुमार', बसै मकरन्द न फूल निबेरो।
सोहै प्रवाल कलानिधि ही मधि नूत लता नि मे ताहिन हेरो॥
है उदयाचल में न कलानिधि, कंबु पै होत उदात उजेरो।
मानत न्यान, अजान तें न्यान न जानत जे तिय आनन तेरो॥७१॥

(२) भेदकातिशयोक्ति, यथा—

कवित्त

सची में न मेनका मे, मैन-कामिनी में ऐसी,
मन दामिनी में देखी दुति अधिकाई है।

कहत "कुमार" सब छमा की जमा है करी,
याही में निकाई, सुंदराई, सुथराई है॥
आन मुसक्यानि, आन सुधा तें मधुर बानि,
आनन मे आनि छबि, पानि पग छाई है।
आन गुन, आन रूप, आन कला, आन कर,
आन विधि, न्यान आन विधि ही बनाई है॥७२॥

(३) सम्बन्धातिशयोक्ति

दोहा

जहँ अजोग मे जोग कहि, जोगहि मे जु अजोग।
'सम्बन्धातिसयोक्ति' कहि तहाँ द्विविध कवि लोग॥ ७३ ॥

(१ अयोग में योग), यथा—

सवैया

राम नरिन्द की सैन सजे, अरि-नारि अलंकनि संकती केती।
चंदमुखी भजि जोर बिलंद गिरिंद चढ़ै, न उसासनि लेती॥
आपनें पास "कुमार" तहाँ लखि चंद अनंग गहे हिय वेती।
जानि बिहार को हंस निहार ता हारके मोतीअहार कों देती॥७४॥

(२) योग मे अयोग, यथा—

कवित्त

कान सुनै कौन ? गुन-गान आन भूपनि के,
'राम'-सनमान पायौ नैसुक रिझाये ही।

कहत "कुमार" दिन दान लहै न्यान रहै—
धनद गुमान मघवानि बिसराये ही ॥
बसु बरषत निरखत गुनी हरखत,
कौन परखत ? देव-दरखत पाये ही।
चिन्तामनि, पारस सिपारस मैं आरस है,
काम की न मानै, कामधेनु धाम आये ही ॥७५॥

इहाँ आदर-योग मे अयोग हैं।

(४) अक्रमातिशयोक्ति

दोहा

उपजत लखिये संग ही, जहाँ हेतु अरु काज।
अक्रमातिसय-'उक्ति' सो मानत हैं कविराज ॥७६॥

यथा—

सवैया

कानन ही सुनि तेरे पयान कों, कानन ही वे पयान विचारैं।
नैकु निसानहिं धारत ही, भजि दुज्जन तेरे निसा नहिं धारैं ॥
'राम कृपान गहैं' सुनि तेऊ कृपा न गहैं, सुत दार बिसारैं।
त्याजत तोहिं छमा लखि कैं वर वैरी छमा अपनो तजि डारै॥७७॥

(५) चपलातिशयोक्ति

दोहा

हेतु प्रसगहि में जहाँ, उपजत काज बिसेषि।
तहाँ 'चपल-अतिसय-उकति', अर्थ-चित्र मे लेखि ॥७८॥

यथा—

सवैया

कैसे "कुमार" कहै सुकुमारता, लागे सुगन्ध लगै गरवाई।
केसरि-खोरि बनाउ की बातहि, गातनि बाढति आरसताई॥
जावक-दैन विचार सुनैहि, चढै पग-पंकज आनि ललाई।
माल को मालती-फूलनि चाह ही, फैलति है अँगुरी अरुनाई॥७६॥

(६) अत्यन्तातिशयोक्ति

दोहा

पहिले उपजत काज जहँ, पीछे लहियतु हेतु।
'अत्यन्तातिसयोक्ति' तहँ, मानत सुमति-निकेतु॥८०॥

यथा—

सवैया

आनि अगार अगारनि द्वारनि, दुग्ग-विदारन वारन बाधैं।
तापर कीरति की कविना को "कुमार" कहै कहिबौ कवि नाधैं॥
भौन परे पहिलै मनि-माल, निहाल धरा इह मालनि काधैं।
फेरि कविन्द विलोकत ताहि, पुरंदर-से बर वेष समाधैं॥८१॥

तुल्ययोगिता-अलंकार

(१) प्रथम भेद

दोहा

एक क्रिया, गुन-धर्म जहँ वर्न्य अवर्न्यहि होइ।
'तुल्ययोगिता' नाम को अर्थ-चित्र है सोइ॥८२॥

(१) प्रथम भेद

(१ एक क्रियाधर्म) यथा—

दोहा

बसत लाल में बाल के लोयन रूप-उमाह।
चित हित मे, मन मिलन मे, तन वातायन माँह ॥८३॥

इहाँ वर्ण्यनि मे बसिबौ क्रियाधर्म एक है।

(२ एक गुणधर्म) यथा—

दोहा

दिन-दिन बढ़त प्रमानिये, मन, धन, दान, विभूति।
राम नृपहिं ऊँचौ कर्यौ कर कुल-जस करतूति ॥८४॥

इहाँ ऊँचौ करिबौ एक गुणधर्म है।

(३ अवर्ण्य में एक धर्म) यथा—

दोहा

संग चमू चतुरंग बढ़ि, चढ़त तोहि नरपाल!
सूर छार सों, भार सों दबत फनी-फन जाल ॥८५।

इहाँ वर्ण्य राजा है, तहाँ अवर्ण्य सूर में फनी में 'दबत' एक धर्म है।

(२) द्वितीय भेद

दोहा

हित में त्यों ही अहित में, वृत्ति तुल्यता देखि।
तुल्ययोगिता को यहौ भेद दूसरौ लेखि ॥८६॥

यथा—

सवैया

मानत तोसों विरोध जे गव्वर, सव्वर भूलिकै गव्व गहे है।
जे नर देव तजे अहमेव कों सेवत पाय उपाय चहे है॥
त्यो इन दोउन को करि देत ज्यो भारी विभूति ही पूरि रहे है।
रोषत, तोषत तोहि अमित्रनि, मित्रनि हू सुख वास लहे है॥८७॥

(३) तृतीय भेद

दोहा

गुनि अधिकै सो तुल्यता रचै एकता हेत।
तुल्ययोगिता को तहाँ भेद और कहि देत॥ ८८॥

यथा—

सवैया

धारत हौ जू महेसुरता, भुव-इंद्र नरिंद्रनि माँह बने हो।
पावक हौ जग प्रान लखै, धन दै तुम ही धन-दानि घने हो॥
दंड धरौ जु अदंडनि पै, पति जीवन के, सु दया हि भने हो।
एकै सबै दिग-पालनि के गुन-जाल धरै, नर-पाल गने हो॥८६॥

दीपकालंकार

दोहा

एकै वर्न्य अवर्न्य मे साधारन जहँ धर्म।
तहँ 'दीपक' भूषन भनत जिनके कविता कर्म॥ ६०॥

इहाँ वर्ण्य उपमेय है, अवर्ण्य उपमान है, तातें तुल्योयोगिता भेद है।

यथा —

सवैया

वद्दत लोक अनंदित ह्वै, गुन वृंदनि 'रामनरिंद सो को है ?
सारद चंद, बिसारद किति तिहारि ये, एक हरै तम मो है ॥
तेग सो पच्छ विहीन करौ अरि-भूधर वज्र सो वासव जोहै ।
छाये दिगंतनि ही दल सों, तुम बद्दतसो ऋतु पावस सोहै ॥६१॥

दीपक-भेद

दोहा

दीपक साधारन धरम जहँ आवृत्ति दिखाइ ।
तहँ दीपक आवृत्ति जुत, तीन भेद कहि जाइ ॥ ६२ ॥

(१) शब्दावृत्ति, यथा—

दोहा

सज्जन हैं तुमको भजत, तिनहिं सुधा-निधि तूल ।
दुज्जन हैं तुमतें भजत, लगै पवन ज्यों तूल ॥ ६३ ॥

इहाँ 'भजत' शब्द आवृत्त है ।

(२) अर्थावृत्ति, यथा—

दोहा

दग तेरे प्रिय-प्रेम बस, विकसत मोद अतूल ।
त्यों सखीनि के हिय-कमल फूलत सुख अनुकूल ॥६४॥

इहाँ 'विकसत', 'फूलत' यह अर्थ आवृत्त है ।

(३) उभयावृत्ति, यथा—

दोहा

खिरकी लौं आवति, फिरति, फिरकी लौं गुरु-त्रास।
तन फेरति गृह-काज तन, मन फेरति पिय पास ॥६५॥

प्रतिवस्तूपमालंकार

दोहा

कह्यौ भिन्न पद धर्म जहँ वाक्य दुहुनि मे एक।
जानौ 'प्रतिवस्तूपमा' भूषन तहँ सुविवेक! ॥६६॥

यथा—

सवैया

कीन्हौ "कुमार" कहा कछु टौना-सो? संग लग्यौ फिरै नंद ढुठौना।
जीति कपोलनि चद लियौ,मनौ चद कियौ पर्यौ कान तर्यौना॥
सुंदर भाल की कुंकुम-खौरि मे राजत अंजन मंजु डिठौना।
कंचन पंकज केसर बीचहि छाजतु है छवि सों अलिछौना॥ ६७॥

इहाँ राजत, छाजत पद सों कह्यो, शोभा एक धर्म है।

दृष्टान्तालंकार

दोहा

जहाँ बिम्ब प्रतिबिम्बता वाक्य दुहुनि में लेखि।
अर्थ-चित्र दृष्टान्त तहँ मानत सुकवि बिसेषि॥ ६८॥

यथा—

सवैया

पूरन चन्द की चाँदनी छाजति, छीर-सी छाइ रही चहुँ पास है।
जीततु ताही कों चदमुखी! तुव सुंदर अंग-गुराई प्रकास है ॥
रूप तिहारो निहारि "कुमार" न धारत और तिया दृग-पास है।
वास गुलाब सुवास मे पावत, भौर के और न फूल की आस है ॥९९॥

निदर्शनालंकार

दोहा

वाक्य दुहुँनि आरोपिकै जहाँ एकता ल्याइ।
'निदर्शना' सुबताइये, 'जद', 'तद' सो ठहराइ ॥१००॥

यथा—

तजत भजन-सुख, भजत जो विषय-वासना नीच।
तजि सुरसरि, चाहैं सुजल मरु-मरीचिका बीच ॥१०१॥

यथाच—

सवैया

सो थल मे जलजात लगायो है, गायो उजारि में गीत सुगाह्यो।
स्वान की पूंछ है सुद्ध करी, जनु काइर कूर है जुद्ध उमाह्यो ॥
कान मे मंत्र कह्यौ बहिरे कहँ, ऊसर मे वरषा झर बाह्यो।
दर्पन दीनौ असूझत कों, जु अबूझ नरेस रिझावन चाह्यो ॥१०२॥

इहाँ 'सो' 'जो' कहै एकता है।

निदर्शना के भेद

दोहा

(१) जहँ पदार्थ को धर्म कछु, कह्यौ और मे ल्याइ ।
(२) बोध असत सत अर्थ को 'निदर्शना' ठहराइ ॥१०३॥

प्रथम यथा—

दोहा

होत उदोत जु चंद मे सखी लखी सुख-कन्द ।
भोर वहै दीपति दिपति तुव मुख माहँ अमन्द ॥१०४॥

इहाँ उपमेय मे उपमान को धर्म है ।

दोहा

छवि जो गोल कपोल मे लसति रदन-छत जागि ।
कनक-तरयौना-दुति यहै धरत लाल नग लागि ॥१०५॥

इहाँ उपमान मे उपमेय—धर्म है ।

द्वितीय यथा—

(१ असदर्थ निदर्शना)

दोहा

अहित चाहि कै आन को न्यान सुपावत ताहि ।
भई पूतना प्रान-बिन प्रान कान्ह के चाहि ॥१०६॥

(२ सदर्थ निदर्शना)

दोहा

उद्धित ह्वै निज पच्छ मे, कीज लच्छि प्रकास ।
यहै सिखावत रवि उवत, कौलनि देत विकास ॥१०७॥

व्यतिरेकालंकार

दोहा

जहँ विशेष उपमेय मे उपमान मे दिखाइ।
भूषन सो 'व्यतिरेक' है उपमा मे कहि जाइ ॥१०८॥

यथा—

सवैया

मंद करै अरविंद के वृंदनि, मंद हसी मे सुधा बरसावै।
आली गुविन्द को आनन सुन्दर, पूरन चद-सो देखत भावै॥
यामे "कुमार" अपूरव है निसि द्यौस ही काति कला बढ़ि पावै।
याके कलंक को अंक नहीं, इहि देखत लोग कलंक लगावै॥१०९॥

(१) इहाँ उपमान मे विशेष है।

यथाच—

सवैया

तू वृषभानु-कुमारि! महा-सुकुमारि उजागर रूप धर्‌यो है।
तेरो सखी, तन भूषन ही बिन सोहतु, भूषन भार डर्‌यो है॥
गालनि छाई गुराई "कुमार" जु कंचन न्यान समान कर्‌यो है।
हारि डर्‌यो नित नूपुर ह्वै, यह पाइ पर्‌योई निहारि पर्‌यो है॥११०॥

(२) इहाँ उपमेय मे विशेष है। उपमान निकर्ष मे है।

यथाच—

सवैया

आजु कलिन्दी अन्हात में कांति खरी निखरी तन नैननि धारिये।
बाँधत वार निहारी 'कुमार' तिहारी भुजा मनु वारिही वारिये॥

चारु सरूप महासुकुमार, ये क्यों सम काम कृपान-सो तारिये ।
याके लगे हिय नंद-कुमार की, मार की पीर, सबै हर डारिये ॥१११॥

(३) इहाँ उपमेयमात्र उत्कर्ष को हेतु है । ऐसे उभयत्र सहेतु, निर्हेतु जानिये ।

सहोक्ति विनोक्ति अलंकार

दोहा

जहँ शोभा सह भाव में तहँ 'सहोक्ति' कहि जाइ ।
विना भाव कहि बरनिये तहँ 'विनोक्ति' ठहराइ ॥११२।

सहोक्ति, यथा—

सवैया

न्यान घट्यौ डर संग अयान है, आनि कर्यौ भर चातुरी अंग ही ।
सौने-से गात सलौने सुहात गुराई मिली तरुनाई-तरंग ही ॥
केलि-विलास हुलासनि-सग "कुमार" बस्यौ अब आइ अनंग ही ।
प्रेम-उमंग, उरोज उतंग बढ़ै पिय-संगम-चाह के संग ही ॥११३॥

विनोक्ति, यथा—

दोहा

अनल-ज्वाल बिन धूम ज्यों, बिन घन सारद चन्द ।
सैसव बिन तिय-तन लखौ, त्यों जोबन नँदनन्द ॥११४॥

समासोक्त्यलंकार

दोहा

प्रस्तुत मे भासति जहाँ अप्रस्तुत है बात।
'समासोक्ति' मानत तहाँ पण्डित गुन-अवदात ॥ ११५ ॥

यथा—

दुरि उघरी सुघरी लखौ, निर्मल सलिल बिसेखि।
नहिं अघात लोइन अली, कंजकली - बन देखि ॥११६॥

इहाँ उरोज-वृत्तान्त भासत है।

यथाच—

कवित्त

दरपन बिमल कपोलनि पै डोलतु है,
कंचन तरयौना तातैं चंद गन्यौ चेरौ है,
साँस बे सम्हार त्यौं "कुमार" मोतीहार उर,
चलत निहारि न चलतु मन मेरौ है।
अलक झलक मुख जलज पै छाजि रही,
श्रम जल-बिन्दु - बृंद राजत घनेरौ है,
तोसौं अरविन्द-मुखी रचत अनंद-केलि,
बंदियतु कंदुक! बिलंद भाग तेरौ है ॥११७॥

इहाँ विपरीत रतासक्त नायिका-वृत्तात भासत है।

परिकर तथा परिकरांकुर अलंकार—

दोहा

साभिप्राय विशेषनहिं 'परिकर'भूषन मानि।
साभिप्राय विशेष्य-जुत, 'परिकर-अंकुर' जानि ॥ ११८ ॥

परिकर, यथा—

सवैया

गोपनि तें पलु न्यारौ न पाइये प्यारो "कुमार" कहूँ रसभीनौ।
तासों मिलाप-विचार, सुचारु बनै उपचार कछू न प्रवीनौ॥
बूँद बचावन कों वन ओर ते आयौ हरी बरषै हित कीनौ।
जीवन-दानि घनैघनजानै, जोमोघरहीघनसु दरदीनौ॥ ११९॥

परिकरांकुर, यथा—

दोहा

जग-वंदित, आनद-कर, संकर के सिर ताज।
वध कीबौ विरहीन को नव राजत दुजराज॥ १२०॥

इहाँ द्विजराज विशेष्य साभिप्राय है।

श्लेषालंकार—

दोहा

अनेकार्थयुत शब्द की रचना जहाँ निहारि।
'श्लेष' नाम भूषन तहाँ अर्थ-चित्र निरधारि॥ १२१॥

(१) प्रकृत श्लेष

दोहा

सुरुचि, स्याम चित के हरन, कोकहि बरनि समान।
नारिकेलि-जयके करन, तुव कुच कच सम न्यान॥१२२॥

इहाँ कुच, कच दोऊ वर्ण्य हैं।

(२) अप्रकृत श्लेष यथा—

दोहा

जल-भव भव-भूषन सहज, लच्छि वास सुख-कंद ।
चंद यहौ अरविन्द लखि, तिय तुव मुख तें मंद ॥ १२३ ॥

इहाँ मुख वर्ण्य है, चद, अरविन्द अप्रकृत है ।

(३) प्रकृताप्रकृत श्लेष, यथा—

सवैया

जाहि लखै पर भीति लहै, जिय जो मरजाद गहै नित छाजै ।
जाहिर है रतनाकर जो, उपजावत लच्छि सबै सुख छाजै ॥
लच्छनि जीवनि रच्छन-दच्छ, सपच्छ महीभृत पाल निवाजै ।
राम-भुजा वर कित्ति उजागर,सागर-सो गुन आगर राजै ॥१२४॥

इहाँ राम-भुजा प्रकृत है, सागर अप्रकृत है ।

अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार—

दोहा

प्रस्तुत बात बताइये अप्रस्तुत में ल्याइ ।
'अप्रस्तुत-परसंसिका' सो अन्योक्ति कहाइ ॥ १२५ ॥
कहुँ सामान्य, विशेष, तें हेतु, काज, तें होत ।
त्यो सरूप तें, पाँच विधि प्रस्तुत बात उदोत ॥ १२६ ॥

(१) सामान्य तें, यथा—

दोहा

प्रीति कनकरेखानि को खोटौ, खरौ विवेक ।
प्रगट हि देत बताइ है, काज कसौटा एक ॥ १२७ ॥

इहाँ अप्रस्तुत सामान्य ते मित्र - वृत्तान्त प्रस्तुत विशेष बतायो।

(२) विशेष तें, यथा—

कवित्त

ऊधौ ! कीजे प्रीति को परेखौ, कहा बीच परै ?
नीच रंग - संगति ही रोचतु अहीर है।
कहत "कुमार" उपदेश दियो रहै कैसे ?
हियो कियो छेदि काम-तीरनि तुनीर है॥
मिलन की आस ही अलप सु निरास भई,
कलपतु तलफतु तपतु सरीर है।
नीर तें विहीन होत, मीन होत प्रान-बिन
न्यान जड नीर के न बीर ! कहूँ पीर है॥ १२८॥

इहाँ जल-वृत्तान्त अप्रस्तुत विशेष तें "जड परायो सुख दुख कहा जानै" यह सामान्य प्रस्तुत है।

(३) हेतु तें, यथा—

दोहा

कहै कमोदिनि कौल सों, फूलत क्यो नहि भोर ?
दुरीं इतै अरि-विधुमुखी सुनै रामदल-सोर॥ १२९॥

इहाँ अप्रस्तुत दौर हेतु तें, वैरी नारि तजि भजे, यह प्रस्तुत कार्य जतायो।

(४) कार्य तें, यथा—

दोहा

ललन ! तिहारो चलन सुनि, सुख पठवति तुम-साथ ।
प्रानपियारी प्रान निज सौंपति मेरे हाथ ॥ १३० ॥

इहाँ 'प्रान तजिहै' इहि अप्रस्तुत कार्य तें प्रस्तुत विरह तें दु:सहता-हेतु बतायो । अब अप्रस्तुत स्वरूप तें प्रस्तुत स्वरूप जताइबो । कहूँ सादृश्य तें, कहूँ विशेषण-श्लेष तें, कहूँ विशेषण-विशेष्य-श्लेष तें:—

(५) सादृश्य तें, यथा

दोहा

अलप सलिल के प्यास को चातक ! कलप कितोक ?
यहो न पूरत खल जलद, तरजत गरजि अलीक ॥ १३१ ॥

(६) विशेषण श्लेष तें, यथा—

सवैया

निंदित रूप हूँ वंदत है जग मात के घात न पातकताई ।
छाँड़ि दये कुल की वनिता, लघुताई लहैं, अति होत बड़ाई ॥
निंदैहु वेद, "कुमार" न निंदिये, पान सुराहु कै पाई अछाई ।
लच्छिये लच्छ अहो घरजाहिके, ताहि की कीरति गीतहिं गाई ॥ १३२ ॥

इहाँ विशेषण श्लेष तें, मत्स्यादि दशावतारी लक्ष्मीपति-स्वरूप जतायो ।

(७) विशेषण-विशेष्य-श्लेष तें, यथा—

दोहा

द्यौस छपत, निसि वर अपत, विरहिनि तपत निसंक।
कुमुद-मीत दुजराज ! तू बढ़ि बढ़ि धरत कलंक ॥१३३॥

इहाँ दुर्जन द्विजराज-स्वरूप जतायो।

(८) सरूप निबंध मे सदृश को आरोप कहूँ आवश्यक है, कहूँ कहूँ नाहीं। यथा—

दोहा

रच्यौ न सिर-पट बध कहुँ आदर सों वर कूप।
सूखे सरवर, एक तुहि जीवन-दानि अनूप ॥१३४॥

इहाँ कूप-वर्णन सप्रयोजन है, तातें सदृश को आरोप अत्यावश्यक नाही।

यथाच—

सवैया

काँधे में बाँधे बनाइ के केसर, केसरी जान्यौ अजाननि जैसें।
तैसें ही चाल चलै, अरु बैठे, कहा भयौ सोर करै कहु तैसें॥
स्वाँग-विधान बनाइ सबै, मृगराज रच्यौ कहुँ स्वान जु ऐसे।
तौ वह कंजर-कुंभ-विदारन दारुन विक्रम पावत कैसे ? ॥१३५॥

इहाँ श्वान-वर्णन निष्प्रयोजन है, तातें तत्सदृश को आरोप आवश्यक है।

प्रस्तुताङ्कुरालंकार

दोहा

प्रस्तुत वर्णन मे जहॉ प्रस्तुत और जताइ ।
'प्रस्तुत-अंकुर' नाम तहँ अर्थ चित्र ठहराइ ॥ १३६ ॥

यथा—

सवैया

लाल प्रबाल लसै रस-अंचित कोकिल चंचु चुभै अति पैनी ।
हंसनि सों लरि घाइल अंग, विलोकिये कोक सरोरुह-नैनी ॥
खेलति बाग की बाउरी-बीच सहेली की बात सुनै पिक-बैनी ।
पानिसोंआननअंचलसोंउर,ढांकि लियो लहिलाजकी सैनी ॥१३७॥

इहॉ सबै प्रस्तुत हैं ।

पर्य्यायोक्त्यलंकार

(२) प्रथम लक्षण

दोहा

व्यंग अर्थ कहिबे वहै भंगि वचन रचि फेरि ।
कहिए सो पर्य्याय सों, 'पर्यायोक्ति' निबेरि ॥ १३८ ॥

यथा—

जासु अचल रथ, चल चका हरि सर सिंधु तुनीर ।
रूप दोइ इक देह धरि, हरैं सुपुर-हर पीर ॥ १३९ ॥

इहां जो अचल रथादि कहि, व्यंग 'पुर-हरै' सोइ पर्य्याय तें कह्यो ।

(२) द्वितीय लक्षण

दोहा

चित चाह्यौ हित साधिये, पर्यायहिं रचि बात।
दूजौ पर्य्यायोक्ति को भेद, तहाँ कहि जात ॥ १४० ॥

यथा—

कुंज विजन पियतन रचों, सजनी ! बिजन-बयारि।
मलयसार घनसार-सँग ल्याउ गुलाबहि गारि ॥ १४१ ॥
चोरि धरी बिच कचुकी मेरी कंदुक बाल।
छैंकि रहै, छतियाँ गहै, छैल छबीलो लाल ॥ १४२ ॥

व्याज स्तुति-अलकार

दोहा

निंदा तें स्तुति जानिये, स्तुति तें निंदा जानि।
'व्याज-स्तुति' भूषन तहाँ, दोइ भाँति पहिचानि ॥ १४३ ॥

यथा—

हरी ! करी यह नहिं भली सब गुन-गनके गेह।
दारिद सों जु सुदान सो तोरयौ सहज सनेह ॥ १४४ ॥
न्यान जानिये कृपन जन, बड़ौ दानि इहि हेत।
जोरि-जोरि धन कोरि धरि, मरत तुरत तजि देत ॥ १४५ ॥

व्याजनिंदा—अलंकार

दोहा

निंदा तें जहँ और की निंदा जानी जाय।
कहत 'व्याज-निंदा' तहाँ भूषन कवि-समुदाय ॥ १४६ ॥

यथा—

कवित्त

काम के सहाई इकहाइ दुखदाई भये,
सबै सुखदाई है 'कुमार' पिय-संग के।
बीति गये औसर इलाज नहिं लहियतु,
दहियतु दाहनि बिरह-अभिषंग के॥
दीजियतु दोष, परिपोष पसुपति ही कों,
रोष सों न देखै ये न लेखै अरि अंग के।
भाल-दृग-पावक की झार सों न छार करै,
विधु मधु गंधवाह संग ही अनंग के॥ १४७॥

आक्षेपालंकार

दोहा

जहाँ आपनी उक्ति को करि प्रतिषेध विचारि।
भूषन तहँ आक्षेप कहि अर्थ-चित्र निरधारि॥ १४८॥

(१) भावी अर्थ को आक्षेप, यथा—

कवित्त

किलकि-किलकि कोकिला को कुल कितहू तें
काकली सुनाइ चित चेतना को खोइगो।
मलय-निलय गंधवाह त्यों "कुमार" कहि,
मंद-मंद लागि आगि आँगनि समोइगो॥
रैनवधू-नाइक हरैगो तन-ताप मेरी,
नैसुक दिखाइ दै दिवस सब गोइगो।

कैधौं सुख-कंद चदमुखी - मुखचंद बिन
एरे जड़ चंद ! दुख-दंद तुही होइगो ॥ १४९ ॥

इहाँ भावी अर्थ को आक्षेप है।

भूत अथ को आक्षेप, यथा—

दोहा

कही नहीं, कहिहौ नहीं तिय की दसा निदान।
तुमहि कंठ लागे बिना कंठ रहे लगि प्रान ॥ १५० ॥

द्वितीय तथा तृतीय आक्षेप

दोहा

जहँ निषेध-आभास है, यह आक्षेपै जानि।
गुप्त निषेध जु विधि वचन, तीजो भेद प्रमानि ॥ १५१ ॥

(२) द्वितीय आक्षेप, यथा—

तिय न कहति, नहिं हौं कहौं तिय को विरह-कलेस।
घरी द्वैक में होइगो दुर्लभ वचन-सँदेस ॥१५२॥

(३) तृतीय आक्षेप, यथा—

सवैया

प्रात हौं जात विदेस को, प्रीतम ! जैयो भले निज काज हितै है।
मेरी हिये सुधि राखियो, एहो ! रहौ सुख सो सिख बात यहै है ॥
चाँदनी रैनि, वसन्त को वासर, मोहिं "कुमार" कहा दुख देहै ?
काम कसाइ कलानिधि पाइ अहो ! हिय-ताप सबै हरि लैहै ॥१५३॥

इहाँ "जिन जाउ" यह निषेध गुप्त है।

विरोधाभास अलंकार

दोहा

जान्यो जात विरोध—सो, समुझै नहीं विरोध ।
कहत 'विरोधाभास' तहँ, जिनके कविता बोध ॥ १५४ ॥

यथा—

रहत अवनि मे वैरि तुव, वन मे रहत विसूरि ।
भजत पगनि तुव नाहि ते भज तप गनि है दूरि ॥ १५५ ॥

यथाच—

मिले परनि सो परनिसों, मिले दूर कढ़ि जात ।
जानै वज्र-समान तुव बान अमान दिखात ॥ १५६ ॥

विभावना अलंकार

दोहा

हेतु विना ही काज जहँ उपजत वरन्यौ जाइ ।
कै अहेत तें काज इमि विभावना ठहराइ ॥ १५७ ॥

(१) हेतु बिना कार्य, यथा—

सवैया

भूषन हू बिन भूषित अंग, तिहारे निहारे सरूप बिभा ही ।
पंकज-से पग लाल न जावक दीन्हौ "कुमार" लसै चहुँघा ही ॥
घूँघुट सारी रहै घिरि है घनौ घाइ करै हथियार बिना ही ।
घूमत-से मद पीवें नहीं, वे छके मद सो दृग देखे सदा ही ॥१५८॥

(२) अहेतु तें कार्य, यथा—

दोहा

चम्पक-लतिका में लगीं लखि गुलाब-कलिकानि।
लाल लालची दृग-अलिनि ठई नहीं पहिचानि॥ १५६॥

तृतीय तथा चतुर्थ विभावना

दोहा

हेतु सकल नहि होत तहँ उपजत देखौ काज।
प्रतिबन्धक हूँ काज तहँ गनौ भेद कविराज॥ १६०॥

(३) तृतीय, यथा—

लखत दूरि ही गगन मे नूत कुसुम की धूरि।
दूषत दृग विरहीनि के, ढरत नीर भरिपूरि॥ १६१॥

इहाँ 'लखत दूरि' यह हेतु पूरन नाहीं।

(४) चतुर्थ, यथा—

सवैया

जे नित ही रचि मंत्रनि, जंत्रनि, तंत्रनि सो निज साधत रच्छन।
ताहि नरिन्दनि राउरो खग्ग-भुजंग रचै जुरि जुद्ध में भच्छन॥
राम नरेस! तिहारे प्रताप में देख्यौ "कुमार" प्रभाव विलच्छन।
राखै सपच्छ महीभृत को थिर, देत उड़ाइ विपच्छ को तच्छन॥ १६२॥

इहाँ नरिंद = विष वैद्य, सपच्छ = पाँख-सहित, विपच्छ = पच्छ-रहित इत्यादि प्रतिबंध है।

पञ्चम तथा षष्ठ विभावना

दोहा

काज विरोधी हेतु तें होत सुपंचम भेद ।
हेतु होत जहँ काज तें छठौ तहाँ विच्छेद ॥ १६३ ॥

(५) पंचम, यथा—

सिसुता-निसि बीते जग्यौ जोवन गात प्रभात ।
सौति कमल-वदनोनि के वदन कौल कुम्हिलात ॥ १६४ ॥

इहाँ प्रभात हेतु ते कमल कुम्हिलैबौ विरुद्ध कार्य है ।

(६) षष्ठ, यथा—

तुम बिन कान्ह "कुमार !" लखि सूने केलि-निकुंज ।
तरुनी - नैनसरोज तें होत सरोवर - पुंज ॥१६५॥

विशेषोक्ति अलंकार

दोहा

हेतु होय पूरन जहाँ उपजन काज न देखि ।
'विशेषोक्ति' भूषन तहाँ अर्थ-चित्र मे लेखि ॥ १६६ ॥
(१) कहूँ कह्यो है हेत तहँ, (२) कहूँ कह्यौ नहि हेतु ।
(३) कहुँ अचित्य है हेतु इमि तीन भेद तहँ चेतु ॥ १६७ ॥

(१) उक्त निमित्ता, यथा—

दोहा

हरत देह हरि नहि हर्‌यौ तुव सुभाव खल ! कूर ।
गल बिनहू अनिवार बल गिलत राहु ससि-सूर ॥ १६८ ॥

इहाँ, 'अनिवार बल' हेतु कह्यो है ।

(२) अनुक्त निमित्ता, यथा–

सवैया

ज्यौं-ज्यौं चहूँ दिसि तें तन दुज्जन घेरि कृपाननि घातनि छान्यौ।
त्यौं त्यौं हिये तुम सौतिय के गुन नेह को जोर उजुर्‍यो डिठ जान्यौ॥
ज्यौं-ज्यौं "कुमार" सखा बरजै,तरजै डर बोइ सिखावन टान्यौ।
धोयोतियादृग-नीरज-नीरहूत्यौं-त्यौंबढ़्यौअनुराग प्रमान्यौ॥१६९॥

(३) अचिन्त्य निमित्ता

सवैया

कामी कर्‍यौ गुरु नारि को गामी, यहै द्विजराज मे छीनता छाई।
इन्द्र सों गौतम नारि रमाई, गमाई गई विधि की बुधताई॥
ध्यान समूल करै उनमूलन, फूल के बान निकाम कसाई।
नैन जराई जरी तन ताकी, हरी न गई हर सों खलताई॥१७०॥

असम्भव अलंकार

दोहा

ह्वै सकि है संभव नहीं, यहि कहि बरनै बात।
तहाँ 'असम्भव' नाम को अर्थ-चित्र कहि जात॥ १७१॥

यथा

रस-बस पिय ही नवल तिय दुखद सिखायो मान।
जानै को बढ़ि दुवन लों है दुखद अमान॥ १७२॥

यथाच—

सवैया

यामें भर्यो यथा पूर अपूरव जाके न पारहि डीठि रचै है।
क्यो वडवागिनि सोखि सकै ? न प्रलैहू को पूषन याहि तचै है॥
सेयौ सपच्छ गिरिन्दनि आस यो, वासव के डर पास बचै है।
जानी न हाल जो कुंभको बालकख्यालहीसागर लेतु अचै है॥१७३॥

असङ्गति अलंकार

दोहा

हेतु असंगत अनत ही, होत अनत ही काज।
तहाँ 'असंगति' नाम कहि, अर्थ चित्र कवि राज॥ १७४॥

यथा

ललित स्वेद जल झलक मुख, वलित मुकतमय माल।
थकी हिंडोरे झूलि तिय, भरत सांस नंदलाल॥ १७५॥

अन्य भेद

दोहा

कर्यौ अनत ही चाहिये अनतहि काज विसेखि।
भेद गनौ कै रचत जहँ काज विरुद्धै लेखि॥१७६॥

(१) अन्यत्र कार्य, यथा—

कवित्त

भूप-सिरमौर राम दौरत "कुमार" कहि,
उज्जरत दुज्जन के दुग्ग है पलक में।

बैरि-तरुनीनि के नवीन लखे भूषन है,
भूषन विहीन लखो जीरन ललक में ॥
चुरी हिय माह वन-बीच दुख दाह हरी,
जावक को रंग जगै लोचन-फलक मे ।
पानि मे वसन, दसननि रसना है, गति-
नथ की पगनि, पत्र-रचना अलक मे ॥१७७॥

(२) विरुद्ध कार्य, यथा—

दोहा

मुदित करत जग उदित ह्वै हरत तिमिर को वृंद ।
मेरे हिय ही रचत कत ? अधिक अँधेरो चंद ॥१७८॥

विषमालंकार

दोहा

होत नहीं सम रूप तहँ, रचिये घटना ठानि ।
कै विरूप है काज जहँ, विषम नाम पहिचानि ॥१७९॥

(१) असम घटना, यथा—

दोहा

बिछुरि न कीन्ही तनक सुधि निपट कठिन-हिय लाल !
दुसह विरह बड़वागि कत ? कत कोमल-तन बाल ॥१८०॥

(२) विरूप कार्य, यथा—

सवैया

ऊधौ ! कहा कहि दीजै उराहिनो ? हाय हरी न हिये सुधि धारी ।
देखि परै बिपरीत सबै, बिन देखे ही नंद-"कुमार" विहारी ॥

ज्यौं-ज्यौं धरौं हिय साँवरे रूपहिं त्यौं-त्यौं चढै अनुराग महा री।
आनन-चंद की आवत ही सुधि, छावत आँखिनि आइ अँध्यारी॥१८१॥

अन्य भेद

दोहा

चाह्यो इष्ट न पाइयें, होय अनिष्टै आय।
केवल होय न चाह तौ, विषम भेद द्वै ल्याय॥१८२॥

(३) इष्ट मे अनिष्ट, यथा—

दोहा

जाही डर विधु-मधि हरिन वन तजि रच्यौ निवास।
भयौ तहाँ विधु-सहित ही सिंही-सुत को त्रास॥१८३॥

(४) अनिष्ट में इष्ट, यथा—

दोहा

नहिं सुगन्ध, नहि मधुर रस, भ्रमत भौंर लहि भूल।
है विचित्र यह चित्र को कनक-कमल को फूल॥१८४॥

(५) केवल अनिष्ट होय सो पंचम भेद

दोहा

मुगध तरुनि जनि स्याम-छवि दृग-अंजलि रचि पान।
मोहिं दसै यह धारिहैं विष लौं विषम निदान॥ १८५॥

समालंकार

दोहा

जहँ घटना सम रूप लहि, तहँ 'सम' भूषन जोग।
हेतु काज सम रूप हू, भेद कहैं कवि लोग॥१८६॥

(१) उत्कर्ष में सम, यथा—

सवैया

ज्यौं पगपंकज ईंगुर-से, तहँ मंजुल जावक को रँग राजै।
ज्यौं कुच-कोरक ये तरुनी तहँ हार "कुमार" कदंब को छाजै॥
सोने-से अंग सलोने तहाँ मुकता-मनि-भूषन है सिरताजै।
जैसी लसै तन कुंकुम-खोरि त्यौं सारी रँगी रँग पीत बिराजै॥१८७॥

निकर्ष मे सम, यथा—

दोहा

जैसी नारि गँवारि त्यौं सन वन-फूल निहार।
ज्यौं भूषन, तैसे तरुन जन गवाँर रिझवार॥ १८८॥

(२) हेतु कार्य-सम रूप सम, यथा—

सवैया

वास लह्यो बड़वानल पास, हलाहल को सहजात कहावै।
संकर-भाल के लोचन मे बसि पावक ज्वाल कराल मझावै॥
राहु गिल्यो उगिल्यो पुनि सूरज-संग मिल्यो जु कलंक सुभावै।
सो गुरु-साप डर्‌यो नहिपापनिसा-पतिक्योनहि तापबढावै॥१८६॥

(३) विना अनिष्ट के सिद्ध सम

दोहा

बिन अनिष्ट लहि सिद्ध वह तीजो सम चित-धारि।

यथा—

चित चाही याही लहौ यों सेवत नृप दानि।
जगतु यहै मेरे चढ़ी अंग विभूति सु आनि॥ १६०॥

विचित्रालंकार

दोहा

हित उद्दिम विपरीत फल, तहँ 'विचित्र' निरधारि ॥१६१॥

यथा—

ज्यौं तन लोचन लगत डरि भूषन धरति उतार।
त्यौ लोचन लागन लगे लगि लालच दिसि चार ॥१६२॥

यथा च—

चाहि उचाई सिर नवत दुख देखत सुख-ध्यान।
तजत जीव चहि जीविका सेवक मूढ निदान ॥ १६३ ॥

अधिकालंकार

दोहा

अधिक चित्र जु अधार तें, अधिकौ जहँ आधेय।
और भेद आधेय ही अधिक अधार अधेय ॥१६४॥

(१) प्रथम, यथा—

दोहा

लख्यौ जसोदा सकल जग जा मुख-बीच-समात।
तिहि मोहन-मुख राधिका मिलत मोद अधिकात ॥ १६५ ॥

(२) द्वितीय, यथा—

सकल समानौ हाल जहँ तुव विलास जस-जाल।
इहि अनुमानहि जगत यह जान्यौ निपट विसाल ॥ १६६ ॥

अल्पालंकार

दोहा

अल्प अलप आधेय तें अति सूछम आधार।

यथा—

हियो तिहारो जानिये अति ओछौ नँदलाल।
अतनु करी अतितनु सुतनु यहौ समाति न बाल ॥ १९७ ॥

अन्योन्यालंकार

दोहा

जहाँ परस्पर उपकरत, तहँ अन्योन्य विचार ॥ १९८ ॥

यथा—

लसत चंद सों चाँदनी, चाँदिनि ही सो चद।
तुम ही सों कीरति लसत, कीरति सों रघुचंद ॥ १९९ ॥

यथाच—

बैन सुनायौ मधुर सुर, कुंज-सदन नँदलाल।
सिर नहि धारी गागरी भारी कहि कहि बाल ॥ २०० ॥

विशेषालंकार

दोहा

बिन अधार आधेय कै थल अनेक इक लेख।
इक अरंभ आरंभिये, और सु त्रिविध बिसेख ॥ २०१ ॥

(१) प्रथम, यथा—

दोहा

गई छबीली झाँकि इत, छनछवि-सी छन छाइ।
छाजि रही अजहूँ यहै छजनि-माँह छवि छाइ ॥ २०२ ॥

इहाँ बिन तिय आधार, छवि आधेय है।

(२) द्वितीय, यथा—

सवैया

कुंज-गलीनि अली है यहै, जमुना-तट बाट "कुमार" यहै री।
नेह निरंतर गेह के अंतर, नैननि मे हिय में सु बसै री॥
देखि परै दसहूँ दिसि में, निसि द्यौस हरी न घरी बिसरै री।
तासों वियोग दे हेली हहा करिहै कहा? मेरौ महाविधि वैरी ॥२०३॥

इहाँ एक बात अनेक थल है।

(३) तृतीय, यथा—

दोहा

तुमहि लखत सब बखतमय कामद रघुकुल-राज!
काम, काम तरुवर लख्यौ, सुर-गुरु, सुर-पुर-राज ॥ २०४॥

इहाँ एक दर्शन आरंभ मे अनेक दर्शन आरभ है।

व्याघातालंकार

दोहा

जो साधन है अन्यथा तथा जु साधत बात।
कै विरुद्ध साधन करै तहँ जानौ 'व्याघात' ॥ २०५॥

(१) अन्यथा साधन, यथा—

नैननि ही सों ज्याउती, नैन-जरायो काम।
वामदेव को जीतती ये वामा अतिवाम ॥ २०६॥

(२) विरुद्ध साधन, यथा—

ये ई सुखदायक सदा, दुखदायक ते न्यान।
अद्भुत गुन है सुमन के मदन! तिहारे बान ॥ २०७॥

यथाच—

तिय प्रवीन बिन मधुर तुव हँसि हँसि बोल रसाल।
सौतिन के हिय विष लगे, गनै सुधा नँदलाल ॥२०८॥

अन्य भेद—

जो है काज-विरोधिनी क्रिया यहै फिरि ल्याइ।
हेतु सुकर जहँ कीजिये ज्यावातै सुबताइ ॥ २०९ ॥

यथा—

दारिद हू है इहि डरहि सूम देहि नहि त्याग।
होइ न दारिद इहि डरहि देत त्याग बड भाग ॥ २१० ॥

यथाच—

देवी देव मनाउतीं जा सनेह को नारि।
ताही कान्ह-सनेह को निकसति ठुरति गँवारि ॥ २११ ॥

हेतुमालालकार

दोहा

पूर्व पूर्व जहँ हेतु है, उत्तर उत्तर काज।
कहौ हेतुमाला कि तहँ पूरब-पूरब काज ॥ २१२ ॥

(१) पूर्व पूर्व हेतु, यथा—

बुध-संगहि बुधि, बुधि बढ़ै सुनय, सुनय तें राज।
राजहि ते धन, धन लहै दान, दान जस-काज ॥ २१३ ॥

इहाँ उत्तर उत्तर कार्य है।

(२) पूर्व पूर्व कार्य, यथा—

नरक होत है पाप ते पापनि विपति प्रमान।
विपति होति बुध-हानि ते, हरि बिसरैं बुधि-हानि ॥२१४॥

इहाँ उत्तरोत्तर हेतु है।

एकावली अलंकार

दोहा

उत्तर उत्तर वाक्य मे पूर्व पूर्व कों ल्याइ।
जहाँ बिसेषन दीजिये 'एकावलि' सुबताइ ॥ २१५ ॥

यथा—

दृग काननि लौं कान तुव, सोहत लगि भुज-मूल।
दीह जानु लग भुज, भुजनि विजय-सिरी अनुकूल ॥२१६॥

यथाच—

मन-सम राज, सुराज-सम राज, सिरी-तुलदान।
दान-तुल्य जस, जस-सरस तुव गुन-गान जहाँन ॥२१७॥

मालादीपकालंकार

दोहा

मिलि दीपक एकावली 'मालादीपक' जानि।

सवैया

बाल नवेली में लाल रसाल बसै दुति जाल बिसाल उज्यारे।
त्यौं दुति में बसो जोबन है, नवजोबन मौह विलास निहारे ॥

देखौ "कुमार"बिलासनि मे चित, याके बसौ चित मे तुम प्यारे।
प्यारे बसे तुममे, बस ह्वै गन-आगर रूप उजागर भारे॥२१८॥

इहाँ बसिबो एक धर्म है, यातें दीपक है।

सारालंकार

दोहा

उत्तर-उत्तरु उतकरष, 'सार' अलंकृति मानि॥ २१९॥

यथा—

पय तें मधु, मधु तें मधुर दाख, दाख तें ऊख।
ऊखहि तें अति मधुर है तिय! तुव अधर-पियूख॥ २२०॥

यथासंख्य अलंकार

दोहा

क्रम-जुत बातनि को जहाँ क्रम तें अन्वय लेखि।
'यथासंख्य' यह नाम कहि अर्थ-चित्र तहँ देखि॥२२१॥

यथा—

सवैया

हेम के गंजनि, वैरि के पुंजनि, पानि में पानी कृपानी को धारे।
लेखत हौ कन-से, त्रन-से, बिधि दान रचे मयदान बिचारे॥
दुज्जन के गन, सज्जन के मन, मानिनि मान रचे हठ भारे।
गंजत हौ, अनुरंजत हौ, मद भजत हौ, दृग-कोर निहारे॥२२२॥

पर्यायालंकार

दोहा

थल अनेक में एक की थिति जहँ क्रम तें देखि।
इक, मधि तथा अनेक थिति, तहँ 'पर्याय' बिसेखि॥२२३॥

(१) अनेक में एक की स्थिति, यथा—

सिरी ससी में निसि बसी, लसी सरोजहिं प्रात।
बहै आजु तिय-दृगनि मधि देखत दृग न अघात ॥ २२४ ॥

यथाच—

सवैया

केलि चरित्र-विचित्र विलासिनि चित्र चढ़ी, चित चाह चढ़ी है।
चारु "कुमार" सुने गुन कान्ह के कान चढी, अभिमान चढ़ी है॥
प्रीतम हू निसि द्यौस रटी, मन चोप चढ़ी, तन ओप चढी है।
मैन-गढी रस-बैन पढ़ी तू चढ़ाए-से नैननि नैन चढ़ी है ॥ २२५ ॥

(२) एक में अनेक की स्थिति, यथा—

दोहा

गन्यौ तनक मग कुंज को, जो पिय-पास हि जात।
कोस सहस सोई भयो, फिरि आवत घर प्रात ॥ २२६ ॥

यथाच—

जहाँ लखे निरभर सुरभि पंकज, वकुल, रसाल।
विकट कंटकी विटपि तहँ अजौ न वेऊ जाल ॥ २२७ ॥

परिवृत्ति अलंकार

दोहा

घटि बढ़ि को जहँ बदलिबौ तहँ 'परिवृति' प्रकासु।

(१) प्रथम (अधिक सों कम लीबौ) यथा—

हसि लीन्ही हरि हाथ तें चंपक-कलिका नौल।
चितै इतै तिय दै गई फूले लोचन-कौल ॥ २२८ ॥

(२) द्वितीय (कमी सो अधिक लीबौ) यथा—

सवैया

राम-वधू हर लै चल्यौ रावन, तासो लर्‌यौ घन घायनि छायौ।
भाग "कुमार" जटायुष को रघुनायक को जु सहाय कहायौ॥
कीजिये याकी सराह कहाँ लगि ? गिद्ध गौ उद्धरि सिद्धनि गायौ।
जोर जरा-जुर जीरन देह दए, अजरामर ह्वै जस पायौ॥२२६॥

परिसंख्यालंकार

बरजि वहै कहि अनत थल, तहँ कहि 'परिसंख्या' सु॥ २३०॥

(१) प्रथम, यथा—

भ्रकुटी अलकनि कुटिलता, कठनाई कुच ठान।
नहि तेरे हिय, ताहि तू कत चाहति ? गहि मान॥२३१॥

(२) द्वितीय (बिन ही बरजै अन्य थल मे कहिबौ) यथा—

राम ! तिहारे राज मे तिय-केसनि दृढ बंध।
कंप ध्वजनि में, हयनि मे कसाघात-सनबन्ध॥ २३२॥

विकल्पालकार

दोहा

जहाँ तुल्य बल बरनिये, दोऊ बात विरुद्ध।
तहँ 'विकल्प' भूषन कहै कवि जे सुमति प्रबुद्ध॥२३३॥

यथा—

छनक छमा धरि औधि भरि अहे अहेरी काम।
आजु हरत घनस्याम दुख, कै हरि हैं घनस्याम॥ २३४॥

यथाच—

सवैया

'राम नरेस' के संगर धाकहि धीरिनि मे रहै धीरज काको ?
वैरि-वधू इमि कत सो बैठि, सिखापन देती इकंत कथा को ॥
'राजहि त्यागि भजौ' वनकों, कै भजौ वन को तक सेवन याको,
आपने मीच-उपायनि ताकौ, कै लै लै उपायनि पायनि ताको'॥२३५॥

समुच्चयालंकार

(१) प्रथम

दोहा

भेद रीति सतपत्र के होय एक ही बार।
बिन विरोध जहँ बहुक्रिया, सु 'समुच्चय' निरधार ॥२३६॥

यथा—

सवैया

जानि परी. कहुँ कान परी धुनि बाँसुरी, बाल के लाल ! तिहारी
भूलि गयौ मन, डोलै कहूँ तन, बूझै न बोलै "कुमार" विहारी ॥
जागत लागत नैन नहीं, छवि छाकति, झाँकति झाँकिनि प्यारी !
खीझि हसै नहि, रीझि सकै नहि, यो कसकै रस के बस डारी ॥२३७॥

(२) द्वितीय

दोहा

जहाँ परसपर बहस सों हेतु बहुत इक ठौर।
काज एक साधत तहाँ, भेद समुच्चय और ॥२३८॥

यथा—

जोबन, रूप, सुहाग, वर-भाग, कला, गुन, ग्यान।
तांहिं विधाता सब दिए, न्यान बढ़ावत मान ॥२३९॥

कारक दीपक अलंकार

दोहा

क्रम ही सों बहुतै क्रिया गुंफित कीजे ल्याय।
'कारक दीपक' नाम कहि अर्थ-चित्र सु बताय ॥२४०॥

यथा—

सवैया

सोवत जागत है, तन भूषन धारत खेलत सार रचै कै।
प्रात लों आवत जात विकार, "बिहार" रचैं नित रैनि बितै कै ॥
यो खिझि कूर दुवारक द्वारहि जात निवारत दंडनि लै कै,
दीन दुनी में गुनी इमि लच्छिकै लच्छि तू रच्छि दया-दृग दैकै॥२४१॥

समाधि अलंकार

दोहा

सधतु काज जहँ सुकर ह्वै, अकस्मात तहँ और।
साधतु बात सहाय की कहि 'समाधि' तिहिं ठौर ॥२४२॥

यथा—

सवैया

खोलैं निचोल न बोलै "कुमार" क्यों आदर बोल हिये रिस तीरे।
मानी न सीख सयानी सखीकी, लखी नहिं चातक कोकिल भीरे॥

प्रीतम पायँ पर्‌यौई चह्‌यौ न नहीं हसि, प्यारी कह्यौ पिय नीरे।
तौलगि सीरो समीरो बह्यो, न रह्यो बरज्यो गरज्यो घन धीरे॥२४३॥

प्रत्यनीकालंकार

दोहा

प्रबल शत्रु के पच्छ में जहँ पराक्रम लेखि।
अर्थ-चित्र तहँ कहत हैं 'प्रत्यनीक' सुबिसेखि ॥२४४॥

यथा—

मो सरूप जिहि जीतियौ ताहि धरै हिय वाम।
इहि वैरहिं पिय तुव त्रियहिं हनत बधिक यह काम ॥२४५॥

इहाँ शत्रु-पच्छ साच्छात् है, कहूँ परम्परा तें है :—

यथा—

सवैया

राम के पानि "कुमार" कहै करबाल कराल लसै रन कासैं।
याही हनै घनै कंत महीपति, संगर-रग में लेत उसासैं॥
कज्जल याको धरै रँग स्याम, यौं लेखि दृगीनि दुरी हैं निरासैं।
वैरि-वधू धरि वैर यहै दृग-अंजन आँसुनि धोए विनासैं ॥२४६॥

काव्यार्थापत्ति अलंकार

दोहा

कहा अर्थ कहि साधिये काज सुकर जहँ और।
'अर्थापत्ति' सुकाव्य की कहत सुकवि-सिरमौर ॥२४७॥

यथा—

सवैया

नीर सों भीजिगौ सूछम चीर है, गातनि काँति अनूपम सारी।
नंद "कुमार" निहारत ही छवि, मोह छके उर ढाँकि हहा री॥
जे उर आपनो भेदि कढ़े तुव जोर कठोर उरोज हैं प्यारी!
औरनि के उर-भेदत मे कहि पाई कहा? इनि नेक दया री!॥२४८॥

काव्यलिङ्ग अलंकार

दोहा

अर्थ-समर्थन जोग्य जो कहि समथिये हेत।
'काव्यलिंग' भूषन तहाँ, मानत सुमति सचेत॥ २४६॥

यथा—

सवैया

प्यार बढ़ावत पीर न पावत, कैसें कहावत? प्रान-पियारे।
नैकु तिहारे निहारे "कुमार"! सखी सब हैं सुधि-सार बिसारे॥
बैन बजावत, चैन भुलावत, नैन चलावत बान बिसारे।
देखत हौ किधौ देत अहो? विष,देखेअनौखे हौ देखनहारे॥२५०॥

इहाँ जो मोह-दशा समर्थनीय है, सो "बिसारे, विषदेत" यह हेतु कहि समर्थन कियो।

अर्थान्तरन्यास अलंकार

दोहा

जहँ सामान्य समर्थिये कहि विशेष को न्यास।
कै विशेष सामान्य सों, सो 'अर्थान्तरन्यास'॥ २५१॥

(१) प्रथम (सामान्य-समर्थन विशेष) यथा—

सवैया

जे लघु है तिन नीचनि सों अति ऊँचनि की सधै कैसे निकाई ?
काज बड़ेनि के साधनहार "कुमार" बड़ेई है, जानें बड़ाई ॥
स्यार, ससा, मृग, स्वान हजार जुरें, सब विक्रम जानौ वृथाई ।
कीच की आपति बीच परे गजराजनि कों गजराज सहाई ॥२५२॥

(२) द्वितीय (विशेष-समर्थन सामान्य) यथा—

दोहा

तेरे दीरघ नैन बसि, अंजन मंजु सुहाय ।
लघु मलिनौ सँग बड़िनि के कांति लहै अधिकाय ॥ २५३ ॥

इसमे साधर्म्म ते समर्थन है ।

वैधर्म्य ते समर्थन, यथा—

दोहा

सिधु-बंधु मे लघु तजे, ते गिरि अब गिरि-राज ।
विपति बड़े ही सहत हैं, लहत बड़िनि के काज ॥ २५४ ॥

विकस्वरालंकार

दोहा

कहि विसेष सामान्य कों, फिरि बिसेष जिहि ठाम ।
अर्थ-चित्र मानत तहाँ, सुकवि 'विकस्वर' नाम ॥ २५५ ॥

यथा—

सवैया

मानसरोवर-हंसनि मे बसै तोहि अहे वक ! हंस बखानै ।
सार बिसारन को निरधार "कुमार" कहै कहा ? जाने अयानै ॥

होत बड़ौ सब सँग बड़ेनि के, थान बड़े को बड़ाई निदानै।
राजनिके लखि काननि काँचके मौतिनकों, तिनि साँचु न मानै२५६॥

प्रौढोक्ति अलंकार

दोहा

जहां हेतु उतकर्ष लहि काजहि को उतकर्ष।
अर्थ-चित्र 'प्रौढोक्ति' तहँ मानत सुमति-प्रकर्ष ॥ २५७ ॥

यथा—

सुंदर केस सुवेस है, जमुना सलिल-सिवाल।
अधर सधर रँग सरसुती, विद्रुम बेलि-प्रवाल ॥ २५८ ॥

संभावनालंकार

दोहा

यौं जो कहि संभावि कछु तहँ 'सँभावन' ठानि।

यथा—

'विधि वियोग देहै' यहै जो हौ जानौ जाय।
तौ हर लौं अरधंग कै राखौ तियहि मिलाय ॥ २५९ ॥

मिथ्याध्यवसित अलंकार

मिथ्या ही ठहराव सब 'मिथ्याध्यवसित' मानि ॥ २६० ॥

यथा—

सवैया

तोही सो प्रेम "कुमार" सदा, तिय के जिय को यह नेम बिसेखै।
जोबन, रूप, सुभाव, गुमान सों प्यारी ! न तू उत सूधेई देखै ॥

ताहि कहै बस आन वधू के, सु तू बिन भींतिहि चित्र उलेखै।
आँखिनि मूँदि अहे दिसि ग्यारहीं,मावसि को ससि पूरन पेखै२६१॥

ललितालंकार

दोहा

'ललित' कह्यौ मधि प्रस्तुतहिं वर्न्य अर्थ की छाँह।

यथा—

देखि दुर्‌यौ सहजहिं घननि बीच दिवस को नाँह।
नाहक ही पट तानि कत कीन्हौ चाहति छाँह ?।२६२॥

प्रस्तुतांकुर में प्रकट बताइबौ है। इहाँ प्रतिबिम्बभाव ते कहिबौ है, यह भेद है।

इहाँ जो 'दुरायो चाहति' सो सहज ही भयौ, यह वाक्यार्थ-प्रतिबिम्ब है।

यथाच—

दोहा

दिसि दिसि निसि के कौल की दसा तियनि मुख देत।
भले भये पिय मौनपन कुमुद सुमुद के हेत॥२६३॥

इहाँ "ज्यों औरनि तजि आये त्यों मोहि तजिहौ" यह अर्थ प्रतिबिम्बित है।

प्रहर्षणालंकार

बिना जतन चाह्यौ अरथ मिलै 'प्रहर्षन' नाँह॥२६४॥

यथा—

सवैया

मीत के भौन तें प्रीतम काहू "कुमार" चलै सुनि प्रीति पहेली।
आवत है निसि मे निज धाम कों, जामक बीते अँध्यारी ज्यो मेली॥
ताहि गली में नवेली सहेली सो, सीखति ही अभिसार अकेली।
मैन मिली,बस नैन मिली,रस-बैन मिला,मिलि कीन्ही है केली२६५॥

प्रहर्षण-भेद

दोहा

अधिक सिद्धि के, जतनमधि रिद्धि भेद द्वै सुद्ध।

(१) प्रथम (अधिक सिद्धि) यथा—

थक्यौ पंथ-श्रम सो पथिक, चाहै विजन-समीर।
बह्यौ तहाँ दच्छिन पवन,सुरभि,सुखद, हिम धीर॥ २६६॥

(२) द्वितीय (जतनबीचिही सिद्धि) यथा—

जिहि अजन, निधि मिलति, वह खनत औषधी-मूल।
सोई निधि तामधि मिली, विधि-रचना अनुकूल॥२६७॥

विषादन अलंकार

कह्यौ 'विषादन', चाह ते जहँ लहि बात विरुद्ध॥२६८॥

यथा—

गई सरोवर लेन हौं फूले कौल प्रभात।
जात ढिगहिं मुदिजात सो यह दुख कह्यौ न जात॥२६९॥

उल्लासालंकार

दोहा

गुन दोषहि तें और के जहँ गुन - दोष-प्रकाश।
दोषहि तें गुन, गुनहि तें दोष, सु कहि 'उल्लास' ॥२७०॥

(१) अन्य के गुण तें अन्य को गुण, यथा—

दोहा

सोनजुही पिय कर गुहीं पहिराई उर माल।
कुच-कोरक प्रीतम परसि, धन्य सराहति बाल ॥ २७१ ॥

(२) अन्य के दोष तें अन्य को दोष, यथा—

सवैया

चंदन मीत ! अभीत रहै कहा ? तू मलयाचल-वास बिसारै।
तेरौ "कुमार" तहाँ न निवास बनै, जहँ तो गुन नाहि बिचारै॥
है इतमे अति क्रूर कुबस जे, बस दवागि लगाइ सँघारै।
एक कहा ? अपनौ कुल पै कुल ये खन में वन जारि उजारै ॥२७२॥

(४) अन्य के दोष ते अन्य को गुण, यथा—

दोहा

प्रीतम पाइ परयौ, तरुनि धरयौ रोष हिय हाल।
हानि जानि निज लाल यह, तिय-हिय भूषन लाल ॥२७३॥

(३) अन्य के गुण तें अन्य को दोष, यथा—

दोहा

कुसल यहै, गज-मुकत जो बिध्यौ न गुजनि-साथ।
बिगुन भयौ जिनि दुख धरै, परयौ भील-तिय हाथ ॥२७४॥

अवज्ञालंकार

दोहा

जहाँ दोष गुन और के दोष न गुन नहिं होत।
तहाँ 'अवज्ञा' नाम को चित्र गन्यौ कवि-गोत ॥ २७५ ॥

(१) अन्य के गुण तें अन्य के गुण को अभाव। यथा—

सवैया

जाके सुनै गुन चातुर रीझत, जानत न्यान सुधा तिहि फीकी।
सोई अहो! रस की कविता सुनि, बूझै अबूझनि रीझनि जी की ॥
होय रिझावनहार "कुमार" मनोरम नागर के हिय ही की।
नैन-विहीन को नीकी न लागति, बंक विलोकनि है तरुनी की ॥२७६॥

(२) अन्य के दोष तें अन्य के दोष को अभाव, यथा—

दोहा

ईसुर ह्वै वाहन वरद, भख विष कीन्हौ जानि।
तो दिगदंतिन की कहा ? कहा ? सुधा की हानि ॥ २७७ ॥

अनुज्ञालंकार

दोहा

जानि लाभ गुन दोष की चाह 'अनुज्ञा' जानि।

यथा—

इंद्र साहिबी चाह नहिं, द्वारप-दंडनि - त्रास।
होय पिसाच निसाचरौ वर है हर ! तुव पास ॥ २७८ ॥

यथाच—

भली न संपति, राज हरि ! भली विपति, वन-वास ।
जहाँ सदा सुधि रावरी, नित चित चरननि पास ॥ २७९ ॥

लेशालंकार

दोषै गुन, गुन दोष जहँ, तहाँ 'लेश' पहिचानि॥ २८० ॥

(१) दोष-गुन, यथा—

दुखित सुजन सुभ आचरत, धरि विचार सब ठौर ।
सुखित भलै जड सत असत, करत निडर निज दौर ॥२८१॥

(२) गुन-दोष, यथा—

रीझत ये नहि ग्राम-जन, जुवति धरै तुव नाँउ ।
बंक विलोकि न बाल ! तू बसि अजानजन-गाँउ ॥२८२॥

मुद्रालंकार

दोहा

प्रकृत अर्थ में सूचिये बात, सु'मुद्रा' नाम ।

छन्द

अली कहुँ कुंज-गली धरि काम ।
मिली नँद-नंदन सों सखि वाम ॥
लसै उलटौ पटलौं अभिराम ।
महा छवि-धाम जु मोतिय दाम ॥ २८३ ॥

इहाँ चार जगण रूप मौक्तिकदाम छन्द-नाम सूचित है। ऐसे नाटकादि प्रस्तावना में मुद्रा नाम है।

रत्नावलि अलंकार

प्रकृत अर्थ क्रम-न्यास जुत, 'रतनावलि' इहिं ठाम ॥२८४॥

यथा —

सवैया

देह भई अचला, जल-धार अधार बिलोके विलोचन मीनौ।
गात गुलाब-पटीर उसीर, लगावत तेज को पुंज है कीनौ॥
जान्यौ "कुमार" समीर उसास, अकास निसून हिये लखि लीनौ।
पंचहु भूतनि को परपंच, वियोग विरंचि तिया-तन दीनौ ॥२८५॥

इहाँ क्रम सो न्यास है, तुल्ययोगिता भेद मे क्रम नाहीं होत।

तद्गुणालकार

दोहा

निज रंगहि तजि आन रँग, गहै सु 'तद्गुन' लेखि।

यथा—

दोहा

घरी घरी निरखति कहा? लगी पीक जिय जानि।
बेसर-मुकता अधर-रँगि धरत लाल रंग मानि॥ २८६॥

पूर्वरूपालङ्कार

निज गुन प्रापति फेरि जहँ 'पूर्व-रूप' जु बिसेखि॥ २८७॥

(१) प्रथम भेद, यथा—

सवैया

धूरि कपूर की पूरि कै अंजन मंजु दियौ, पिय ही अनुरागै।
स्याम की लोहनि की पुतरी बरुनी-रँग स्याम भयो छवि जागै॥
आरस सो मलयागर राग मिलाय "कुमार", रच्यौ रस पागै॥
केसरि को अंग-राग यहै, निज राग भयौ तिय अंगनि-लागै॥२८८॥

(२) द्वितीय भेद।

दोहा

विकृतिहि मे पूरव तरह, भेद दूसरो ठानि।

यथा—

बड़ो कियो दीपक तरुनि, तुरत सुरत मे लाजि।
अंग-अंग भूषन-रतन रहे दीप-छवि छाजि॥ २८९॥

यथाच—

द्वारनि गज, खड्गी अगन, मनिधर, कंचुकि गेह।
सूनेहू अरि-मंदिरनि वहै राज-थिति एह॥ २९०॥

अतद्गुणालङ्कार

संगति को गुन नहिं गहै, यहै 'अतद्गुन' मानि॥ २९१॥

यथा—

सवैया

मान-गसीली, रसीली अहै अभिमान गहै, अनुखानी सयानी।
त्यों-त्यों "कुमार" कहै पिय के जिय प्यारी लगै अतिप्रेम-प्रमानी॥

नैसुक ज्यों रिस की कटुता गहै, तेरे सलोने सुभाय की बानी।
त्यों अधरा मधुराई मिले ही सुधारस तें सरसानी सुहानी॥२६२॥

अनुगुणालङ्कार

दोहा

सिद्धि गुननि को उतकरष, अति-अति 'अनुगुन' मानि।

यथा—

बानर अरु बीछू डस्यौ, छ्वै कि बाछको अंग।
भूत गह्यौ, मधु-मद लह्यौ, कहा? कहौ गति-रंग॥२६३॥

मीलितालङ्कार –

सदृश द्रव्य में मिलि न जहँ भेद 'सुमीलित' मानि॥२६४॥

यथा—

भूषन जानि अहै धरति, स्रौन असित जलजात।
नैन बड़ाई मिलि रहे, लहे न न्यारे जात॥ २६५॥

सामान्यालङ्कार—

दोहा

सदृस मिले गुन सों जहाँ, नहि विशेष लहि जात।
अर्थ-चित्र 'सामान्य' तहँ, कविता रचत सुहात॥ २६६॥

यथा—

शेष अशेष फनी भये, राम-सुजस-परगास।
चंद्र परै पहिचानि नहिं, किय सत चंद अकास॥ २६७॥

उन्मीलित तथा विशेष अलङ्कार

दोहा

मीलित मे, सामान्य में भेद् विसेषक मानि।

'उन्मीलित' भूषन कह्यौ, तथा 'विशेषक' जानि ॥२६८॥

उन्मीलित, यथा—

सवैया

रैनि दिना परताप बढ़ावत, बाढ़त यो पर-ताप तिहारे।

नॉम सुनै ही अगार अगार तजै, अरि दुग्ग-दरीनि बिहारे ॥

वैरि वधू कमलाऽऽकर दौरि दुरीं । पिय खोजत घौसनि हारे।

होत ही चंद उदोत तहॉ, अरविन्दनि मे मुख-कंज निहारे॥२६६॥

विशेष, यथा—

दोहा

बढ़्यौ, बस्यौ, सँग काक के रँग सुभाय सों लीन।

दै सुर मधुर, वसत ही कोकिल जाहिर कीन ॥ ३०० ॥

गूढोत्तरालङ्कार

दोहा

वचन-रचन साकूत जहँ, तहँ 'गूढोत्तर' धारि।

यथा—

थक्यौ पंथ ग्रीषम पथिक, सघन वेतसी-तीर।

मजु कुंज बसि, परसि हौ सीतल सुखद समीर ॥ ३०१ ॥

चित्रालङ्कार

दोहा

उत्तर प्रश्न जु एक कै भिन्न, सु 'चित्र' विचारि ॥ ३०२ ॥

(१) प्रथम (एक प्रश्न-उत्तर), यथा—

मोहत कामै सबनि को, मनु यह कहि निरधारि।
मुनि तपसी जप-सील कों को है ? वैरि-विचार ॥३०३॥

(२) द्वितीय (भिन्न प्रश्न-उत्तर), यथा—

तिमिर मिटावत को कहा ? प्रजनि दुखद, अविवेक।
कौलि मित्र कहि दिन करैं, उत्तर एक अनेक ॥ ३०४ ॥

और भेद 'विदग्ध-मुखमण्डन' प्रभृति मे देखिये।

सूक्ष्मालङ्कार

दोहा

जानि और को भाव निज-चेष्टा साभिप्राय।
अर्थ-चित्र 'सूछम' तहाँ मानत कवि-समुदाय ॥ ३०५ ॥

यथा—

सवैया

बैनु बजावत माधुरी-तान, 'कुमार' कहूँ निकस्यौ हरि भोरहिं।
गावत गीत, रिझावत मीत, सकेत को हेत कह्यौ, चित-चोरहिं॥
ठाडी झरोखे तिया मुसक्याय, रिझाय, चली लखि नैन के कोरहि।
कंधसखी के धरै भुज-बंध, कह्यौ चलि खेलिये बाग के ओरहिं ॥३०६॥

इहाँ पूर्वार्द्ध मे इगित, उत्तरार्द्ध मे शरीर-चेष्टा और इगित है।

पिहितालङ्कार

दोहा

गूढ और की बात लहि रचिये बात जु गूढ।
अर्थ-चित्र तहँ 'पिहित' कहि बरनै सुमति-विरूढ ॥ ३०७ ॥

यथा—

सवैया

लागि रही स्रम-नीर बही, तरुनी के कपोल सिंदूर-ललाई ।
पीतम-संग पिया रति-रंग रमी, बिपरीत सुबात है पाई ॥
जानै न आन सखी, इहि हेत 'कुमार' जताइ रची चतुराई ।
भाँतिकृपान की,पानि-सरोज मे ठानिसरोज-मुखीकोंदिखाई॥३०८॥

गूढोक्ति-अलङ्कार

दोहा

बात और उद्देसि कै औरहि सो कहि जाय ।
तहाँ कहत 'गूढोक्ति' है, अर्थ चित्र ठहराय ॥ ३०९ ॥

यथा—

दिन-नायक कहुँ दूरि गौ कलानाथ निसि पाय ।
भैंटि भलै सियरे करनि, हियरे ताप बुझाय ॥ ३१० ॥

विवृतोक्ति-अलङ्कार

दोहा

गूढ उकति कवि प्रगट कहि तहँ 'विवृतोक्ति' गनाय ।

यथा—

'रैनि रमै बँधिहै अली, कौल-कली-रस छाकि' ।
तिया कहति यों मीत सों, गृह-जन आवत ताकि ॥३११॥

युक्ति-अलङ्कार

दोहा

'युक्ति' कहौं वंचन-क्रिया, पर तें मरम दुराय ॥ ३१२ ॥

यथा—

प्रात सखिनि मे राति-रति-बात कहत, सुनि बाल।
दाडिम-छल सुक-चंचु बिच रंचक दिय मनि लाल ॥३१३॥

यथाच—

सवैया

कानन-कुंज तें कान परी बसुरी-सुर माधुरी तान सचाई।
प्यारी के अंग 'कुमार' रहे थकि, स्वेद रुमंच की पाँति खचाई॥
सात्त्विक भाव दुरायो चह्यो, कह्यो हेली सो 'आतप ताप तचाई'।
गातनि सींचि गुलाब के बारिसो वारिज-पातसोवात रचाई ॥३१४॥

लोकोक्ति-अलङ्कार

दोहा

लोक विदित कछु उक्ति जो, सोई कहि 'लोकोक्ति'।

यथा—

प्यारी अनियारे नयन अंजन-रेख रचाय।
देत बाउरी! बाउरे-हाथ हथ्यार गहाय ॥ ३१५॥

छेकोक्ति-अलङ्कार

दोहा

अर्थान्तर-गर्भित यहै लोक-उक्ति छेकोक्ति ॥ ३१६ ॥

यथा—

कहति कहा अभिषंग इत लखि पिय के बहु रंग।
हेली! चरन भुजंग के, जानै वहै भुजंग ॥ ३१७ ॥

वक्रोक्ति-अलङ्कार—

दोहा

श्लेषहि ते, कै काकु तें अर्थ कल्पिये और।
अर्थ-चित्र 'वक्रोक्ति' तहँ मानत कवि-सिरमौर ॥३१८॥

(१) श्लेष वक्रोक्ति, यथा—

को हौ जू ? हम गोप हैं, ल्यावौ गाय चराय।
हरि हैं जू, हरि हौ कहा ? लीन्हे चीर चुराय ॥ ३१९ ॥

(२) एसे ही काकु ते जानौ।

स्वभावोक्ति-अलंकार

दोहा

जातिहि प्रभृति स्वभाव कहि 'स्वभावोक्ति' मे अर्थ ॥

यथा—

लखि अनलखि कै हरिहि तिय, डर दिखाइ अँगिराति।
सैन दई, सखि मीडि कर, मुख धरि अँगुरि लजाति ॥३२०॥

यथाच—

सवैया

रावन मूढ ! अरे सिर नाय अजौ रघुनायक-पायँ दुहूँ पर।
वानर घेरे फिरैं चहुँघा, नहिं फेरे फिरे सब लंक-चमू पर॥
दै किलकारिनि, तारिनि, नारिनि, देखि चिरावत, धावत भू पर।
आवत तू रन, कूँदि हो बैठत, क्रूर लँगूर कँगूरनि ऊपर ॥३२१॥

भाविकालङ्कार

दोहा

'भाविक' तहँ बर्तत, जहाँ भूत, भविष्यत, अर्थ॥ ३२२॥

(१) भूतार्थ की वर्तमानता, यथा—

मिल्यौ त दिन बिसरै न पिय हियहि बसत बहु भाँति।
लैन लग्यौ घनसार-सो घन-सरूप, घन-कांति॥३२३॥

(२) भविष्यत की वर्तमानता, यथा—

सुन्यौ सखी-मुख गौन-दिन-मंगल गीत रसाल।
पियहि गही सी थकि रही, डीठि सजल लहि बाल॥३२४॥

उदात्तालङ्कार

दोहा

अधिक रिद्धि-बर्नन जहाँ, कहि 'उदात्त' तिहि ठौर।
बड़ी बात उपलच्छनौ कहि उदात्त यह और॥ ३२५॥

(१) प्रथम, यथा—

भीखहुँ को दुज दुखित लखि, दिय संपति, हरि हेरि।
मनि मुकता गृह जासु तिय देहि, भिखारिनि टेरि॥३२६॥

(२) द्वितीय, यथा—

कवित्त

बार एक बीसक 'कुमार' कहै वैरिन के
सीस काटि कठिन कुठार सों न हारि गौ।
राम दुजराज तात-हेत याही कुरु-खेत,
लोहू-ताल तर्पन के बैरहिं बिसारि गौ॥

याही ठान कान्ह अवतार कुरु पांडवनि,
रारि उपजाइ, देव-काजनि सुधारि गो।
पारथ को सारथि अठारह अछोहिनी को,
अवनी को भार, भिरि भारत सँघारिगो ॥३२७॥

अत्युक्ति-अलङ्कार

दोहा

बात बड़ाई रिद्धि बिन अधिकी कहि 'अत्युक्ति'।

यथा—

कवित्त

बगसत वाजिन की राजी महराज 'राम'
अरबी, इराकी, ताजी, राजी है गुनीन पर।
राजनि लुभावैं जे 'कुमार' कविराज पावैं,
सुख पावै चढ़त, जराइन के जीन पर॥
वारन के मोल लोल लीन्है है हजारनि के,
अंग गुलजारनि के रंग है नवीन पर।
भरे आतुरीन चातुरीन सो जे फूलहू पै,
करत खुरीनि पखुरीनि पखुरीन पर॥३२८॥

योग में योग तें अतिशयोक्ति ते भेद है। (सम्बन्धातिशयोक्ति में योग मे अयोग और अयोग मे योग होत है)

निरुक्ति-अलङ्कार

दोहा

वहैं सबद रचि योग तें अन्य अर्थ, सु 'निरुक्ति' ॥३२९॥

यथा —

हरि के लोचन हरि सिरह रतन सुधा रस-कन्द ।
करत कुमुद को समुद इमि कहै कलाधर चंद ॥ ३३० ॥

प्रतिषेधालङ्कार

दोहा

अनुकृति सिद्धि निषेध की, तँह 'प्रतिषेधै' होइ ॥

यथा —

सवैया

हौ बरजी जनि छैल छबीले के देखन को चढ़ि झाकिनि झाँकौ ।
बूझत बात दुरावति ही, कहि कैसो है कान्ह,'कुमार'कहाँ कौ ॥
बाउरी ! क्यों बचिहै रचि प्रीति, डरै कहा ? घैर सुनै चहुँघा कौ ।
खेलन ही यह सग सहेली के हेली सनेह को रंग है बाँकौ ॥ ३३१ ॥

इहाँ नेह मे 'खेल नही' यह प्रसिद्ध निषेध को अनुकरण है ।

विधि-अलङ्कार

दोहा

सिद्ध बात ही को बहुरि करि विधान, 'विधि' सोइ ॥३३२॥

यथा—

असम-कुसुम मधु-भर सुरभि दीन्ही दल दुति लाल ।
अवनि वाजि रितुराज तुहि कियौ रसाल रसाल ॥ ३३३ ॥

हेतु-अलङ्कार—

दोहा

हेतवंत को संग कहि, 'हेतु' सुहेतु विचारि।
भूषन इमि सब एकसे बरनौ हैं निरधारि ॥ ३३४॥

यथा—

उर-उछाह सब सुजन के, दुर्जन के उर-दाह।
मुनि-मन आनँद गाह नित, एक तुमहि रघुनाह! ॥३३५॥

यथाच—

नेह-लता उलहति हिये, रस बरसनि दृग हाल।
तन मन फूलति ब्रजतियनि, तुव चितौनि नँद-लाल! ॥३३६॥

दोहा

प्राचीनै अरु आधुनिक कविता मत-निरधारि।
अर्थ-चित्र इमि एकसै बरनै इहाँ विचारि ॥३३७॥

अथ अष्टप्रमाण-अलङ्कार

(१) प्रत्यक्ष प्रमाण, यथा—

दोहा

हार सुधारि, सिगारि तन, मलय-सार रचि अंग।
चिह्न दुरावति दुरत क्यों? लोचन रोचन-रंग ॥३३८॥

(२) अनुमान प्रमाण, यथा

सवैया

तानै वितान है अम्बर नील के पावस कंबर स्याम बुन्यौ है।
छाये घनाघन यो घन देखिये धीरनि के हिय धीर धुन्यौ है॥
सावन हू मे 'कुमार' न जो मन-भावन आवन मंत्र गुन्यौ है।
जानति हौ उहि ओर ही मोर को नंद-किसोर न सोर सुन्यो है३३९॥

(३) उपमान प्रमाण, यथा—

दोहा

दृग अनंद-कर चंद ज्यौ दुत्रन हरत ज्यौ इन्द्र।
ज्यौं अति सुन्दर काम त्यौ 'रामचन्द्र' नर-इन्द्र॥ ३४०॥

(४) शब्द प्रमाण, यथा—

दोहा

वेद पुरान कहै यहै 'भक्त-पाल नँद-लाल'।
इहौ भरोसै सुचित चित हरि भजु, तजि जंजाल॥ ३४१॥

(५) अर्थापत्ति प्रमाण। यथा—

दोहा

हौ जानी, इक कान्हमय जगत सकल निरधारि।
यह नहि तौ, कैसे दिसहि दसहू परत निहारि॥३४२॥

(६) अनुपलब्धि प्रमाण, यथा—

दोहा

होय जु पै लखिये सही, तुव कटि, झूठ निदान।
बिन अधार कुच गिरि धरन मदन-प्रपंच प्रमान॥३४३॥

(७) असंभव प्रमाण, यथा—

दोहा

हनतु मदन सरसहिं विरह, गन्यौ कठिन हिय-देस।
पाय आइ वर संभवत, सहिये सकल कलेस ॥३४४॥

(८) ऐतिह्य प्रमाण, यथा—

दोहा

'अधन मनोरथ ही बढतु धन' यह कहत जहान।
धनद! तिहारे धन दहैं—तुव तुल निधन निदान॥३४५॥

इति अष्टप्रमाण-अलङ्कार

अनेक अलकार मिलैं, ससृष्टि, सकर-भेद है.—

संकर तथा संसृष्टि

दोहा

तिल तंदुल-सम जहँ मिलै, तहँ 'संसृष्टि' प्रमानि।
मिलै छीर मे नीर सम, तहँ 'सकर' पहिचानि ॥३४६॥

(१) संसृष्टि, यथा—

दोहा

मानौं मदन-तुनीर हैं, तीरनि भरे अतूल।
देखौ कुंज कदम्ब मे, नव कदम्ब के फूल ॥ ३४७ ॥

'मानौ' इहाँ उत्प्रेक्षा 'देखौ' यह सकेत बताइबे में गूढोक्त संसृष्ट है।

(२) संकर, यथा—

दोहा

फिरि केसरि अँग-राग रचि रच्यौ दुरे अँग लागि।
सखि भूषन भूले भनै, दुरे तुरत छवि जागि ॥ ३४८ ॥

इहाँ सम, मीलित भ्रान्तिमान को सकर है।

इति श्रीयुत हरिवल्लभभट्टात्मज कवि कुमारमणि-
कृते रसिक रसाले अर्थ-चित्र-निरूपण
नाम अष्टम उल्लास ।८।

नवम उल्लास

——:०:——

अथ त्रिविध काव्य-निरूपण

काव्य के गुण

दोहा

आत्मा ही के धर्म ज्यो सौर्य्य प्रभृति पहिचानि।
त्यों रस के उत्कर्ष कर अचल-स्थिति गुन जानि ॥ १ ॥
शब्द अर्थ में लाच्छनिक गुन इमि गनौ विसेषि।
शब्द अर्थ के चित्र त्यो न्यारे चल-थिति लेखि ॥ २ ॥
प्रथम गन्यौ माधुर्य-गुन तथा ओज, प्रासाद।
श्लेषादिक दस गुन गनौ तानहि में, तजि वाद ॥ ३ ॥

(१) माधुर्य—

दोहा

जहाँ कछू चित द्रवत है, लहि आनंद अगाह।
रस सिंगार, माधुर्य-गुन करुन, सांत हू माँह ॥ ४ ॥
निज पंचम-जुत बर्न जे, रेफ न जहँ संयुक्त।
कवर्गादि पुनि मात लघु गनि टवर्ग तहँ मुक्त ॥५॥
लघु समास, पद मधुर कै, बिन समास पद होत।
मधुर वचन-रचना जहाँ गुन माधुर्य्य उदोत ॥ ६ ॥

(१ शृंगार) यथा—

सवैया

गोकुल-चन्द गली निकस्यो, बिकस्यो मुख-चंद अनंद सुहायौ।
पास सखी सो हसी कर दै सुबसीकर बैनु सुनै सुख पायौ॥
हाथ लपेटति मोतिय-माल लै, बाल सु यो दुति जाल बढायौ।
कुंदन के अरविन्द के नाल मरंद के बिन्दु को वृन्द ज्यो छायौ॥७॥

माधुर्य गुण, सयोग मे विप्रलभ मे, करुण मे शान्त मे, अधिक २भासत है।

(२ करुणा मे) यथा—

सवैया

देखि गिरयो दसकध-कबंध को, अंध-सी लंक-वधू जुरी धॉई।
हाथनि अंग हनै, अभिषंग विलाप-तरंग अभंग बढ़ाई॥
चंदमुखीनि की रोदन की धुनि मंदिर-मंदिर मे अधिकाई।
मेरु पुरंदर के पुर-अंदर मंदर कंदर-फाँई ज्यों छाई॥८॥

(३ शान्त मे) यथा—

दोहा

जग-जँजाल पंजर न परु, जीवन अजलि-नीर।
दुख-भंजन हिय-कज भजु अंजन-मंजु सरीर॥९॥

(२) ओज

दोहा

तेज महत को गहत चित, जह विस्तार बढ़ाय।
तहाँ ओज-गुन जानिये, वीर रौद्र रस पाय॥१०॥
उद्धत, दीर्घ समास-पद कहे ओज के हेत।
वीरहि मे, बीभत्स मे, रौद्रहि मे छवि देत॥११॥

(१ वीर मे) यथा—

सवैया

आजु सुनौ सुरराज समाज सबै रघुराज के काज सुधारत।
लच्छन नाम हौ लच्छनि रच्छ सबीर विपच्छ न तच्छन मारत॥
सिंधु बँधाइ के दुग्गम मग्ग, समग्ग प्लवंगम-बग्ग उतारत।
क्रुद्ध ह्वै रुद्धत लंक त्रिसुद्ध ह्वै जुध्ध मे उद्धत सत्रु सँघारत॥१२॥

(२ रौद्र मे) यथा—

कवित्त

राम ! भुव-मंडल - अखंडल ! तिहारे भुज-
दंड लेत कोदंड, अखंड बैरी कूटे जात।
मंडित सकल रन - मंडल अखंड तेज,
खंडे खंड खंड के मवास बास लूटे जात॥
चलत उदंड दल मंडल बेतुंड - झुंड,
खैचे सुंडादंडनि उदग्ग दुग्ग छूटे जात।
छंडे दिग-मंडरीक पुंडरीक भू को भार,
कुंडली सकोरै फन पुंडरीक फूटे जात॥१३॥

(३) प्रसाद

दोहा

सूखे ईंधन अनल ज्यों विमल बसन जल रीति।
तुरत चढ़त चित मे अरथ, सो प्रसाद गुन चीति॥ १४॥
साधारन सब आखरनि सब पद-रचना मूल।
यह प्रसाद गुन गनत है, सकल रसनि अनुकूल॥ १५॥

यथा—

कवित्त

सुकवि 'कुमार' भोर ही तें कर आरसी लै,
साजती सिगार बार विसती सुबास हौ।
बातें मन-भावती बतावती न सखी हू सो,
राति रति-रंग पति-सग परिहास हौ॥
मृदु मुसक्याती प्रेमराती रिस ठानती हौ,
आनती हौ मिस बस जानती बिलास हौ।
प्रीति मदमाती, न समाती फूलि अगनि हौ,
काहे को लजाती, क्यो न जाती पिय-पास हौ? ॥१६॥

दोहा

वक्ता अर्थ प्रबंध-बस नायक उचित प्रमानि।
वृत्ति वर्न-रचना कहूँ गुन-विरुद्ध पहिचानि॥ १७॥

भीम प्रभृति नायक में उद्धत रचना है। अभिनय मे, पुराण में, रौद्रादि हू मे लघु समास है। आख्यायिका प्रबध में, शृङ्गारादि में दीर्घ समास है।

श्लेषादिक दस गुण, शब्द, अर्थ के न्यारे गनै ते, इनही गुननि तें अन्तर्गत मानिये।

इति श्रीहरिवल्लभ भट्टात्मज कवि कुमारमणिकृते
रसिक रसाले गुण कथनं नाम
नवमोल्लासः ॥ ६ ॥

दशम उल्लास
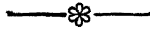
अथ काव्य-दोष

दोहा

मुख्य अर्थ के बोध मे करै विघात सुदोष।
गन्यौ मुख्य रस तासँग रु शब्द अर्थ-परिपोष ।। १ ।।
तातें दूषन तीन विध शब्द, अर्थ, रस माँह।
शब्द अर्थगत नीरसहु कहूँ दोष निरबाह ।। २ ।।
शब्द फिरै जो फिरत सो, शब्द-दोष निरधारि।
शब्द फिरै हूँ थिर रहै अर्थ-दोष सु विचारि ।। ३ ।।
पदगत त्यों ही वाक्यगत, शब्द-दोष द्वै भेद।
पद-अंसहु मे कहुँ गनत, नित्य अनित्य विभेद ।। ४ ।।

पदगत दोष

दोहा

श्रुतिकटु१, औ च्युतसंसकृत२, अप्रयुक्त३, असमर्थ४।
निहितार्थ५, अनुचितार्थ६, पुनि मानत और निरर्थ७ । ५ ।।
अवाचकौ८, अश्लील९, पुनि भनि सदिग्ध१०, विशिष्ट।
अप्रतीत११, अरु ग्राम्य१२, गनि नैयार्थक१३, सश्लिष्ट१४।।६।।
अविमृष्टविधेयांश१५, त्यों गनि विरुद्ध-मतिकारि१६।
सबै दोष पद के कहे, गनि बारह अरु चारि ।। ७ ।।

(१) श्रुतिकटु

दोहा

लगै दुसह स्त्रौननि सुनै, 'श्रुतिकटु' दोष सुजानि।

यथा—

सवैया

उच्च 'निकेत चढ़ी वर बाल सुभाल तिलक लसै अलबेली।
गोरी-सी देह सनेहसनी मनु है कल कचन की चल बेली॥
एँड़िन की उपमा उपजी यो भरी मनौ जात्रक के जलबेलो।
जादिन तें निरखी "जगदीस", लगी तन तादिन तें तलबेली॥८॥

इहाँ उच्च, तिलक, श्रुतिकटु हैं। वीर-रसादि मे दोष नाहीं, अनित्य है तातें।

(२) च्युतसंस्कृत

सधतु न जो व्याकरन मे 'च्युतसंस्कृत' प्रमानि॥ ९॥

यह दोष संस्कृत ही मे है। यथा—

"तत्र हंसाः प्रतस्थु," "अध्येता तदगार एव वसते"

इहाँ परस्मैपद आत्मनेपद च्युतसंस्कृत हैं।

"यः पारदं स्थिरयितुं क्षमते करेण"

इहाँ 'स्थापयितु' ऐसो चाहिये।

"तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्"

इहाँ पातयामास ऐसो चाहिये।

(३) अप्रयुक्त

दोहा

सब्यौ सास्त्र ते होत पै, न प्रयोगें कवि जाहि।
'अप्रयुक्त' दूषन कह्यौ कवि-रीतिहि नहि चाहि ॥ १० ॥

यथा—

"देखत उदधिजात देखि-देखि निज गात।"

इहाँ 'उदधि जात' है।

"केसव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी।"

इहाँ 'अदेव' है।

"केसवदास अनुत्तम जो नर संतत स्वारथ-संजुत जो है।"

इहाँ अनुत्तम उत्तम—भिन्न मे अप्रयुक्त है।

(४) असमर्थ

दोहा

है प्रयोग कहुँ अर्थ जिहि, सुप्रयोगौ तिहिं अर्थ।
बोध-समर्थन शब्द है सो दूषन 'असमर्थ' ॥ ११ ॥

यथा—

वृथा हनतु तीरथ कहा ? सजु भजु भजन समाज।
जग जाहिर जान्यौ हिये निज जन भुज जदुराज ॥ १२ ॥

इहाँ "हन हिंसागत्योः" "भुज पालनाभ्यवहारयो." इहि धातु को प्रहनादि में गमन अर्थ है। भूभुजादि मे पालन अर्थ है, सो गमन अर्थ में पालन अर्थ मे असमर्थ है। (यह) नित्य दोष है।

(५) निहतार्थ

दोहा

हनिये अर्थ प्रसिद्ध सों अप्रसिद्ध जहँ अर्थ।
'निहतार्थक' दूषन तहाँ मानत सुकवि-समर्थ ॥ १३ ॥

यथा—

रूसि रही निसि मे सही, बाल मनाई लाल।
लगत पगनि लागी लसति रकत-रेख यह भाल ॥ १४ ॥

इहाँ "रकत"="लाल" अर्थ है। सो लोहू अर्थ सों निहत है। ऐसे "वदन विभाकर लसतु" इहाँ शोभाकर अर्थ सूर्य सों निहत है।

"खेलन में प्यारे कछू कर्‌यौ परिहास ताहि
सुनत ही भामिनी के लाचन ललाइगे।"

इहाँ 'लाल भये' अर्थ मे 'ललाइगे' यह निहतार्थ है।

(६) अनुचितार्थ। यथा—

दोहा

पावत पद उत्तम तुरत, तजत सकल जग-सोक।
जुद्ध जग्य मे पसु भए, बसत वीर सुर-लोक ॥ १५ ॥

इहाँ 'पशु' पद मे कातरता अनुचितार्थ है। ऐसे—

सवैया

गज घट्ट सँघट्ट जुर्‌यौ अरि को दलसिह दले लखा सो हटक्यौ।
करे कोप करेरी कमान कसीस तें कूकटा साँफ तें यो सटक्यौ ॥
लग्यो तीर महावत के उर सों अधकों गिरिकै कलदाँ अटक्यौ।
मनु बाँधि कै पायँ पहार के सृंग तें घूटत धूम जती लटक्यौ ॥१६॥

इहाँ 'सटक्यौ' यह अनुचितार्थ है, असावधानता को कहत हैं।

(७) निरर्थ

जैसें 'च हि तु' 'तथा' प्रभृति निपात वृथा होयँ। यथा—

"वचन की चातुरी देहु तथा तुम ग्यान।"

इहाँ 'तथा' निरर्थक है।

(८) अवाचक

दोहा

ताही धर्म विशिष्ट ह्वै शब्द न वाचक होय।
तहाँ 'अवाचक' दोष कों मानत पण्डित लोय॥ १७॥

यथा—

"पावत जाको पुरान न पार, न वेद-उचार सों हाथ अरै री।
सो हरि तेरेई भेट के काजहि मेरे अरी! नित पाँय परै री॥"

इहाँ "हाथ चढै" एमे अर्थ मे "हाथ अरै" यह अवाचक है।

एसे ही—

"परी बैनी दुवौ कुच-बीच बिराजति उद्यम एक यहै निबह्यौ।
जनमेजय के जतु जग्य ममै दुरि तच्छ सुमेर की संधि रह्यौ॥"

इहाँ 'तक्षक" मे 'तच्छ' अवाचक है।

"तन तेरे कंटकित कंट किन लागे हैं ?"

इहाँ कटक मे 'कंट' अवाचक है।

"पक्खरे पवंग वर बंधु जे बयारि के"

इहाँ घोडे (अश्व) में 'पवग' अवाचक है। (यह) नित्य दोष है।

(९) अश्लील

लज्जा, घृणा, अमगल-व्यंजक त्रिविध अश्लील हैं।

(१ लज्जा-व्यंजक) यथा—

"गाढ़े गहै लपटाय नकारहि बोलत हूँ कछु जीभहिं दाबै ।"

इहाँ 'नकार' पद लज्जाव्यजक है ।

(२ घृणा-व्यजक) यथा—

"ढीले-से पेच वसीले-से बास रसीले-से नैन है आवत मींचे ।"

इहाँ "वसीले" "रसीले" यह घिनि व्यजक हैं ।

(३ अमंगल-व्यंजक) यथा—

सवैया

मोहिबो मोहन की गति को गति ही पढ़ये बैन कहा धौं पढ़ैगी ।
ओप उरोजनि की उपजै, दिन काहि मढ़ै अंगियान मढ़ैगी ॥
नैननि की गति गूढ़ चलाचल 'केसवदास' अकास चढ़ैगी ।
माई ! कहा ? यह माइगी दीपति,जो दिन द्वैइहि भाँति बढ़ैगी ॥१८॥

इहाँ "अकास" चढ़ैगी अमंगल-व्यजक है । यथाच—

"आपु सितासित रूप चितैं चित स्याम सरीर रँगे रँगरातें ।"

इहाँ 'चितैं' यह अमगल-व्यजक है ।

"स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुता' सभृत्या"

इत्यादि अमंगलादि-सूचन में दोष नाहीं । अनित्य दोष है ।

(१०) संदिग्ध

दोहा

उभय अर्थ संदेहकर पद 'संदिग्ध' गनाय ।

यथा—

अतनु पीर तें तन तपन होत न होत विलम्ब।

लाल! तिहारी आस ही हाल भयौ अवलम्ब॥ १६॥

इहाँ "आशा छरी है कि चाह" है यह सदिग्ध है।

(११) अप्रतीत

और सास्त्र-परतीत पद, 'अप्रतीत' सु जनाय॥ २०॥

यथा—

हनत कुंभ कुंभीन के छतज छीर छबिदार।

नभ-मधि अध ऊरध उवे मानहुँ रुधिर हजार॥ २१॥

इहाँ "दिनकररुधिरो प्रवेशकाले" इत्यादि ज्योतिष शास्त्र ही में 'रुधिर' मगल ग्रहवाचक है—काव्य मे अप्रतीत है।

(१२) ग्राम्य—

जो पद केवल ग्राम्य जन कहै, वह ग्राम्य दोष है, यथा—

"परै तलवेली तन मन में छबीली राख,
छिति पर छिनक, छिनक पाय खाट मे।"

इहाँ 'खाट' पद ग्राम्य है।

"जौ लौं तेरी डीठि न परत नंदलाल तौ लौं,
गरबीली ग्वालिन गवाँरि! गाल मारि लै।"

इहाँ 'गाल' शब्द है। कटि, दाँत इत्यादि (हू) ग्राम्य है।

(१३) नेयार्थ

दोहा

रूढि प्रयोजन बिन जहाँ, लच्छना सु 'नेयार्थ'।

यथा—

सम सुरि कैसे कीजिये मुकर-फलक, जलजात।
चंदहु कों तेरो वदन रचत चपेटापात ॥ २२ ॥

इहाँ 'चपेटापात' में जीतिबो लच्छित है। बिन प्रयोजन नेयार्थ है।

दोहा

नहि अन्हाइ, नहि जाइ घर, चित चिहुट्यौ तकि तीर।
परसि फुरहुरू लै फिरति, बिहँसति, धसति न नीर॥२३॥

इहाँ 'तीर' पद तीरस्थित मित्र मे नेयार्थ है। अनित्य दोष है।

(१४) क्लिष्टपद

'क्लिष्टदोष' जहँ कष्ट सों समुझि परै शब्दार्थ ॥ २४ ॥

यथा—

हरि भूषन परभव-परनि सिर पर धरै अनूप।
खेलत कान्ह कदम्बतर, दामिनि-सहचर रूप ॥ २५ ॥

इहाँ मोरपच्छ, घनस्वरूप इहि अर्थ मे क्लिष्ट पद हैं।
प्रहेलिका मे दोष नाही।

क्लिष्ट आदि तीन (क्लिष्ट 'अविमृष्ट-विधेयाश' विरुद्ध-मतिकार) समास ही में पद-दोष हैं। न्यारे भये वाक्य-दोष हैं।

(१५) अविमृष्ट-विधेयांश

दोहा

कह्यो चाहिये मुख्य करि वहै गौन कहि जाय।
'अविमृष्टविधेयांश' तहँ पद-दूषन समुझाय ॥ २६ ॥

यथा—

दीपति है निसि द्यौस यह वाकी निसि ही जोति।
राम! तिहारी कित्ति सो असम चंद्र-दुति होति॥ २७॥

इहाँ 'न सम होति' ऐसो न्यारे के मुख्य नञ् कहिये। समास भये गौण है। यातें अविमृष्ट-विधेयांश है।

(१६) विरुद्ध-मतिकारी

दोहा

पद जु और पद-जोग ते रचै विरुद्ध प्रतीति।
तहँ 'विरुद्ध-मतिकारि' यह मानत दूषन रीति॥ २८॥

यथा—

"काम-कला रस कामिनि सों विपरीत रची रति पी मन भाये।"

इहाँ 'काम-कला-रस' यह विरुद्ध-मतिकारि है।

यथाच—

"आनंद सो मिलि कंत सों, करति गलग्रह नारि।"

इहाँ 'गलग्रह' है "भवानी-पति" "अकार्य मित्र" इत्यादि मानिये।

इति पद-गत दोष वर्णन

———❀———

वाक्य-गत दोष

दोहा

च्युतसंस्कृति, असमर्थ, पुनि तथा निरर्थक छाँड़ि।
कहे जु पद के दोष सब वाक्य माँहि ते माँड़ि॥ २९॥

यथा—

(१) "मानहु जीति के तीनहुँ लोक उलट्टि धरे मनमथ्थ नगारे"

इत्यादि श्रुतिकटु वाक्य हैं।

(२) "किन्नरी नरी निहारि पन्नगी, नगी कुमारि।"

इहाँ 'नरी' 'नगी' अप्रयुक्त हैं।

(३) निहतार्थ, यथा—

दोहा

सायक एक सहाय कर जीवनपति पर्यंत।
तुम नृपाल! पालत छमा जीति दुअन बर्वत॥ ३०॥

इहाँ सायक=खड्ग, जीवनपति=समुद्र, छमा=पृथिवी, ये शब्द प्रसिद्ध बाण, यम, क्षान्ति अर्थ सों निहित हैं।

(४) अनुचितार्थ

नृप कुविन्द गुन वृन्द के पटह रचत दिन राति।
कीरति दिसि दिसि कहत ते लहत न गन जन जाति॥३१॥

इहाँ 'कुविन्द'=भूपाल 'विस्तारन गुन भाट' यह अर्थ कुरिया प्रभृति बोध तें अनुचितार्थ है।

(५) अवाचक, यथा—

दोहा

प्राची दिसि में देखि के उवत द्यौस को नाँह।
पंक-जनम की नींद-संग भाजि गई निसि छाँह॥ ३२॥

इहाँ 'पक-जनम की नींद' 'निसि छाँह' ये कमल मूँदिबे में, अँधियारी मे अवाचक है।

(६) त्रिविध अश्लील, यथा—

"सकल सुगध सार सोभा परकार सु तो—
सरस सुहाग भाग दई दयो ठेलिकै।
सोने की सुरंगताई अधर मे मधुराई,
तिल की चिलक छाई तन नूर बेलिकै॥"

इहाँ 'परकार', 'दई दयो ठेलिकै' यह व्रीडाव्यंजक हैं।

दोहा

पावत जे पर नीति को अवगाहत मैदान
नरकै तिनहीं जानि नहि, ते नर देव निदान॥ ३३॥

इहाँ 'नीति', 'मैदान', 'नरकै' ये घृणाव्यंजक हैं।

संग सकल परिवार लै पितृ-निवास मे जात।
पावक-कुल में तुरत ही दुख सबै मिटि जात॥ ३४॥

इहाँ 'पितृ-निवास', 'पावक-कुल' यह मरण (अमंगल) व्यंजक है।

"संग कसीस हन्यौ रन में रिपु कुंजर प्रान विमुच्चत ठाढ़े।"

यहौ है।

(७) संदिग्ध, यथा—

दोहा

बसत सुरालय मे सदा निज मति वारिनि संग।
सरबस हरि जान्यो तुमहिं धरि विभूति सब अंग॥ ३५॥

इहाँ निन्दा है के स्तुति है, यह सदेह है ।

(८) अप्रतीति, यथा—

दोहा

साधि जोग की जुगति कों रचि अधिमात्र उपाय ।
जतन धरै दृढभूमि मे जीतै वैरि बनाय ॥ २६ ॥

इहाँ अधिमात्र = ज्ञान, दृढभूमि = दृढसंस्कार, वैरी = इंद्रिय, यह प्रतीति योगशास्त्र ही में हैं ।

(९) ग्राम्य, यथा—

"हाहा कै हारि रहे हरि के सब पाँय परै जिहि लातनि मारे ।"

यथाच—

"लोचन-सी बिझकाय बिना बिझकी-सी रिगै बिन रागमई है ।"

इत्यादि ग्राम्य है ।

(१०) नेयार्थ, यथा—

कवित्त

काली काढ़ि मारयो सो कलिंदी को कलंक जानि,
कूल प्रतिकूल ह्वै त्रिसूल लै लरत हैं ।
मघवा को मान हरि, महा मेघ कीन्हे अरि,
ब्रज पर बेजु लिये टूटेई परत है ॥
मुकुट को पच्छ लिये काहे को विपच्छ किये,
मोर साँझ भोर यह बैर पकरत हैं ।
गिरिवर-धारी सुधि लीजै न हमारी, ये
तिहारी जान प्यारी हमै मारै निवरत है ॥३७॥

इहाँ 'त्रिसूल लै लरत है' यह नेयार्थ है ।

(११) क्लिष्ट, यथा—

दोहा

आनन की को कहि सकै ? अवलोकत एकंत ।
मोहि रहे नँदनंद है सुन्दरता अतिवत ॥ ३८ ॥

इहाँ आनन की सुन्दरता, अतिवत, एकन्त, अवलोकत, मोहि रहे, इह वाक्य मे क्लिष्ट है ।

"प्रीति कुम्हडे की जाति जई सम होत तुम्हैं अँगुरी पर रोही ।"

यहौ है ।

(१२) अविमृष्ट विधेयांश वाक्य में

तहाँ होत है, जहाँ—'अनुवाद कहि विधेयाश कहिये यह क्रम' है सो उलटो होइ । तादृश पद-रचना दोष बीज है, यातें पद-दोष है । अर्थ निर्दोष है । यथा—

"आलिनि के सुख मानिबे को तिय प्यारे की प्रीति गई चलिबागे।
छाइ रह्यो हियरें दुख है तहँ देख्यौ नहीं नंदलाल सभागे।"

इहाँ "देख्यौ नही नँदलाल" यह कहि, 'छाइ रह्यो हियरे दुख' यह कह्यो चाहिये ।

यथाच—

सवैया

जीतिबे को रति-संगर आये हरौल मनोज महीपति के ह्वै ।
देखिये ठाढ़े कठोर महा जिन्हैं कातरताई भई न कहूँ छ्वै ॥

बीच हरामनि की किरनै न हथ्यारनि की जगि जोति रही च्वै।
जारी की आँगी कसी है उरोजनि, मानौ सिपाही सिलाह कसै द्वै॥३६

इहाँ "जारी की आँगी कसी" यह पहली तुक मे कह्यो चाहिये उलटो कहै 'अविमृष्ट-विधेयाश' है।

यहाँ "हरामनि" यह विरुद्ध-मतिकारी दोषहू है।

प्रकरण मे, प्रसिद्ध मे, अनुभव मे, 'तत' शब्द 'यत' शब्द को नाहीं चाहतु। अन्यत्र 'यत' शब्द बिन 'तत' शब्द कहै 'अविमृष्ट-विधेयांश' है।

यथा—

"कुच-अग्र नखच्छत स्याम दियौ सिर नाइ निहारति है सजनी।
सुमनौ ससि-सेखर के सिर तें निहरै ससि लेत कला अपनी॥"

इहाँ 'जु निहारति सु-मनौं कला लेत' ऐसौ कह्यौ चाहिये।

(१४) विरुद्ध-मतिकारी

"देखी नहीं ससि सूरज हू ग्रह दासहु काहु सुनी नहि बानी।
रीति यहै 'सबिता' नितहू अपने पति सो कबहूँ न रिसानी॥"

इहाँ 'और के पति सों रिसानी' यह प्रतीत होत है।

"कचलावै लचै कुच-भार सो लंक, सबै तन कंचन रंग गन्यौ है।"

यहौ है।

इति वाक्य दोष

वाक्यांश पद-दोष

कहूँ ये दोष पद के अंश मे होत हैं।

(१) पदांश मे श्रुतिकटु, यथा—

"मिस नींद मुखप्पट ढाँकि लियो" इत्यादि श्रुतिकटु है।

(२) अंश मे अवाचक, यथा—

सवैया

ज्यौ जिय जानि उद्यौ रवि को उठि कुंज ते भौन को गौन विचार्यौ
त्यौ 'सविता' कर की छतियाँ, छत जानि पर्यो जब गात सम्हार्यौ
हेरति ताहि सरोज-मुखी गिरि माँग ते फूल पर्यो मुख भार्यौ
कोपि मनौ सिर संकर के फिरि घाइ पे घाइ मनमथ डार्यौ ॥४०॥

इहाँ 'भारो' अर्थ में 'भार्यौ' अवाचक है।

यथाच—

"बाउरी! जो पे कलंक लग्यो, तो निसंक ह्वै काहे ? न अंक लगावत

इहाँ 'लगावति' ऐसो चाहिए (इहाँ आगिले तुकान्त 'गावत' जैसो 'लगावत' लिख्यो है)।

(३) पद-अंश में नेयार्थ

यथा—

"सविता सुमति करी दान औ कृपानता की,
कीरति विदित भूमि भूतल अकास मे।"

इहाँ 'भूतल' रसातल मे नेयार्थ है।

"गीर्वाण" मे 'वचोवाणवत्' । (गीर्वाण शब्द को अर्थ देवता है । ये पद-अर्थवचोवाण मे नेयार्थ दोष है) इत्यादि ।

इति वाक्यांश-पददोष-वर्णन

केवल वाक्य-दोष

केवल वाक्य ही के दोष बीस हैं । यथा—

दोहा

होहिं वर्ण प्रतिकूल हत,[१] लुप्तविसर्ग[२], विसंधि[३] ।
हतछंदह[४], पुनि ऊनपद[५], अधिक[६], कथित पद बंधि[७] ॥४१॥
पततुप्रकर्ष[८], समाप्तपुनरात्त[९], कहत कवि लोग ।
अर्द्धान्तरैक वाचकै[१०], गनि अभवन्मतिजोग[११] ॥४२॥
गनिये अकथित वाच्य त्यौ[१२], अपदस्थ पद[१३],समास[१४]।
संकीरन[१५], गर्भित[१६], तथा हतप्रसिद्धि[१७], परकास ॥४३॥
भग्नप्रक्रम[१८], अक्रमहिं[१९], अमतपदार्थ[२०] बखानि ।
गनै बीस ये दोष हैं वाक्यह मे पहिचान ॥४४॥

(१) प्रतिकूल वर्ण

रस तें विपरीत वर्ण होइ सो प्रतिकूल वर्ण, यथा—
"नैकु अटै पट फूटत आँखि ।" इहाँ शृंगार में टवर्ग प्रतिकूल है ।

(२) लुप्तविसर्ग, उपहतविसर्ग तथा (३) व्रीडा, घृणा, अमंगल-व्यजक तीन् भाँति, विसधि ये पाँच दोष सस्कृत ही मे हैं।

४. हतछंदस

रसविरुद्ध छद, होय कै लच्छण-हीन 'सो हतवृत्त' द्वै भाँति है।

(१ रसविरुद्ध छंद) यथा—

"बैनी उलट्टि परी कुच उप्पर चंपक-माल लगी लथ पथ्थिय।
कनक जँजीर सुंड गहि झुम्मत मनहु मत्त मनमथ्थको हथ्थिय।।"

यह शृङ्गाररस-विरुद्ध छद है। भरतोक्त छदोविभाग तें तत्तन्नायक रसोपयुक्त छन्द जानिये।

(२ लक्षण-हीन छंद) यथा—

"हाथ तें चौसर छूटि पर्‌यो तहँ 'ब्रह्म' भनै उपमा यह जोई।
मनौ रस राहु निकास लियो ससि डारि दियो छिति में करि छोई।।"

इहाँ भगणात्मक सवैया की चौथी तुक मे एक लघु अधिक है। यद्यपि लघु अन्यत्र होत हैं कहूँ, चौथे पद मे नीको नाहिं लगतु।

"आपने आनन-चंद की चाँदनी सों पहिले तन-ताप बुझायौ।।"

इहाँ यतिभंग है।

५. न्यूनपद, यथा—

"कोकिल कूकनि हूक उठै 'मुरलीधर' मोर मरूरनि मारी।"

इहाँ "मोर-सोर सुनै मरूरनि मारी" इतनौ 'न्यूनपद' है।

६. अधिक पद, यथा—

"काम जित्यौ जग कामिनी-नैनकमल लहि बान।।"

इहाँ "कमल" अधिक पद है।

यथाच—

"स्फटिकाकृति निर्मल" इहाँ 'आकृति' अधिक है।

दोहा

कहा दवागिन के पियैं कहा धरैं गिरि धीर।
विरहागिनि मे जरत ब्रज, बूड़त नैननि नीर॥ ४५॥

इहाँ "धीर" अधिकपद है।

७. कथित पद

"तेरी बानी वेद केसी बानी है" इत्यादि कथितपद है। यहै पुनरुक्ति-दोष है।

८. पतत्प्रकर्ष

दोहा

अनुप्रास-कृत, बंध-कृत, जहाँ कमो उतकर्ष।
वाक्य माँह दूषन तहाँ मानत 'पततप्रकर्ष'॥ ४६॥

यथा—

सवैया

यह बैनी छवानि छुवै पिक-बैनीकी पैनी चितौनि सों को निबहै ?
रँग औठनि एसो कछू अति लाल जु लाल औ विद्रुम ऊन लहै॥
मुसक्यानि में एसी मिठाई अनूप जु ऊख पियूखहु में न यहै।
कहुँ वा दिन देखी अटापे चढ़ी तबतें चित मेरे चढ़ी ये रहै॥४७॥

इहाँ तीन तुक को बंधकृत प्रकर्ष चौथी तुक में मिटि गयौ।

"छार भरे छरहरे छगजे छरि तुच्छके छहरत मदछपनि छाइयतु है।"

इह कवित्त में अनुप्रासकृत क्रम कमी हैं।

९. समाप्त-पुनरात्त

दोहा

वाक्य समास भये जु कछु अप्रमान पद होय ।
तहँ 'समाप्त-पुनरात्त' कहि दूषन है कवि लोय ॥ ४८ ॥

यथा—

मुकत-माल सों तू लखी, नखत-माल सो राति ।
जगमगाति है सिह-कटि आछी नीकी भाँति ॥ ४९ ॥

इहाँ चौथी तुक में 'समाप्त-पुनरात्त' है ।

यथाच—

"लागी मनौ तीर की परी है यों अहीर की
सम्हार न सरीर की, न चीर की, न छीर की ।"

इहाँ "चीर की न छीर की" यह 'समाप्त-पुनरात्त' है । इहाँ— "लागी मनौ तीर की सम्हार न सरीर की न चीर की न छीर की परी है यो अहीर की" ऐसौ चाहिये ।

१०. अर्थान्तरवाचक

दोहा

पूर्व वाक्य को पद जहाँ और अर्ध मे जाय ।
'अर्थान्तरैक वाचकै' तहँ दूषन ठहराय ॥ ५० ॥

यथा—

"खेलति साथ सहेलिनि के इक गोपकुमारि तहाँ चतुराई ।
कीन्ही कछू 'सबिता' इहि बैस में याहि इती मति कौने सिखाई ॥"

इहाँ "कीन्ही चतुराई" यह वाक्य को पद दूसरे अर्द्ध में कह्यो ।

११. अभवन्मत योग

दोहा

चित चाह्यो जहँ वाक्य मे होत न अन्वय जोग।
तहाँ दोष मानत सुकवि यह 'अभवन्मत जोग' ॥ ५१ ॥

यथा—

सवैया

"चारि डवा भरि आन धरे जोई रीति गयो सोई फेरि भर्यौ री।
प्रात उठी रति केलि किये "मुरलीधर" सों अधरारस ठौरी ॥
चोरी लगी जु सहेलिनि को जु तमोलिनि आन पर्यो झगर्यौ री॥
मान मनाय मवासिनि को भई पान खवाइ खवासिन बौरी ॥५२

इहाँ चारो तुक कों अन्वय जैसो विवक्षित है, तैसो नाहीं होइ सकै यातें 'अभवन्मतयोग' है। ऐसे ही—

"लाल के भाल में बाल विलोकत लाल दुवौ भर लोचन लीन्हो।
सासनपीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीन्हो ॥"

इहाँ 'अभवन्मत योग' है, तथा अमगलव्यंजक है।

१२. अनभिहित वाच्य-दोष

जहाँ द्योतक पद कमी होय सो 'अनभिहित' वाच्य-दोष है।

यथा—

"राति सुहाति न नैकु विलोकत प्रीतम की 'सविता' परछाँही।"

इहाँ "नवोढा को अरु प्रीतम कों परछाँहियै न सुहाती" ऐसो अर्थ को 'अपि' (भी) को अर्थ कह्यौ चाहिये। (ताकी कमी तें अनभिहित वाच्य-दोष है। न्यूनपद में वाचक की कमी है। इहाँ द्योतक पद कमी है। यह भेद है)।

१३. अस्थानस्थ

यथा—

"ढीले से अंग लसै 'सविता' भनि ज़ाति लखी छवि कासों कही है ।।"

इहाँ "लखी छवि जात" यह अस्थानस्थ है। "कासों कही जाति" ऐसो कह्यौ चाहिये। बोधविलम्ब-दोष बीज है। ऐसें—

"गिरि गज-गंड तें उड़ानौ सुबरन अलि
सीता-पद-पंकज मनौ कलक रंक कौ।"

इहाँ "कलक रक" अस्थानस्थ है। ऐसे ही—

"अंचल दै नँदलाल बिलोकत, री दधि नोखी बिलोवनहारी ।।"

इहाँ "दधि" अस्थानस्थ है।

१४. अस्थानस्थ समास

यह दोष सस्कृत में है।

१५. संकीर्ण

दोहा

"और वाक्य को पद मिलै कहि 'संकीरन' दोष।"

यथा—

"साथ सखी के नई दुलही को भयो हरि को हियौ हेरि हिमचल।

इहाँ "दुलही को हेरि हेरि" यह पद दूसरे वाक्य में सकीर्ण है। अस्थानस्थपद दोष एक ही वाक्य में होत है। यह दूसरे वाक्य ही में होत है।

१६. गर्भित

और वाक्य-मधि वाक्य जहँ, तहँ 'गर्भित' कहि दोष ॥ ५३ ॥

यथा—

सवैया

पाइ भ्रमावति बैठी गुपाल सों औठनि ऐंठति रीझ भरी-सी ।
चारु महाकवि की कविता लौं, लसै दुलही रस सों उलही-सी ॥
सीवी करै तरवानि के झावत देह दिये-भरी नेह ज्यौं सीसी ।
दंतनि की दुति बाहिर ह्वै करि जाहिर होत जवाहिर कीं-सी ॥५४॥

इहाँ "सीवी करै", "दंतन की दुति जाहिर होति" इहि वाक्य में "देह दिये भरी नेह ज्यौं सीसी" यह वाक्य गर्भित है ।

१७. प्रसिद्धि-हत

दोहा

लोकरीति, कविरीति की जहँ प्रसिद्धि हनि जाय ।
दूषन तहाँ 'प्रसिद्धि-हत' मानत हैं कविराय ॥५५॥

यथा—

"आए न नंदकिसोर सखी ! अब मोर मलार गलारन लागे ।"

इहाँ मोरनि मे गलारिबौ प्रसिद्धि-हत है ।

रनित सिंजित भूषननि में, रति में मणित, पखेरुनि में कूजित, मोरनि में केका, योद्धनि में सिंहनाद इत्यादि लोक-प्रसिद्ध है । उष्ण प्रताप, श्वेत कीर्ति, विरह में ज्योत्स्ना की ज्वाला इत्यादि कवि-रीति प्रसिद्ध हैं । यातें जो विरुद्ध सो 'प्रसिद्धि-हत' है ।

१८. भग्नप्रक्रम

दोहा

प्रस्तुत पद के भंग तें 'भग्नप्रक्रम' जानि।

यथा—

बड़े आपने दृग कहौ सखि ! कहि सकौ सुमैन।
प्रीतम-नैननि मे सदा बसत तिहारे नैन ॥ ५६ ॥

इहाँ दृग कहि फिरि नैन कहे यह 'भग्नप्रक्रम' है। जातें "प्रीतम-दृगनि मे तुव दृग बसत सुचैन" ऐसो 'दृग' पद फेरि चाहिये।
उद्देश्य प्रतिनिर्देश्य में एक पद दोइ बार कहै गुन है।

यथा—

दोहा

प्रीतम ! एसी प्रीति कर, ज्यौं निसि चंदा हेत।
चंद बिना निसि साँवरी, निसि-बिन चंदा सेत ॥५७॥

इत्यादि।

१६. अक्रम—

द्योतक पद्क्रम उचित नहिं, सो 'अक्रम' पहिचानि ॥५८॥

यथा—

"मुसक्यात आछी आत दंतनि की दुति दियैं
तैसिये गुराई अति सुंदर सरीर की।"

इहाँ "अति" "दुति" दिये एसो नजीक 'अति' पदक्रम चाहिये।
द्योतक पद ता पद के नजीक ही अर्थद्योतक है। एसे ही—

सवैया

जीवन ओज सरोजमुखी करि चाँदनी रैनि में केलि अलेखै।
प्रात समै उठि अंचल ओट दै हेरि रही उर की नख रेखै॥
आइ परे हरि याही समै 'सविता' भनि भौन मे काज विसेखै।
यौं सकुचे दृग मित्रहि देखत पंकज ज्यौ बिन मित्रहि देखै॥५६॥

इहाँ "बिन देखैं" एसो चाहिये। द्योतक पद अन्यत्र भये ते अक्रम है।

२० अमत परार्थ

दोहा

प्रकृत रसादिक तें जहाँ होय विरुद्ध परार्थ।
वाक्य-माँह दूषन तहाँ मानत 'अमत परार्थ'॥ ६०॥

यथा—

राम काम-बाननि हनी, सनी रुधिर अँग वास।
निसि-चारिनि पहुँची तुरत जीवितेस के पास॥ ६१॥

इहाँ श्रृङ्गार सों दूसरो रस विरुद्ध है।

इति केवल वाक्य-दोषवर्णनम्।

अर्थ-दोष

'अर्थ-दोष' द्वाविंशति (२२) हैं।

दोहा

अर्थ सुदुष्ट, अपुष्ट[१] है, कष्ट[२], विहत[३], पुनरुक्त[४]।
दुष्क्रम[५], ग्राम[६], सुसंदिगध[७], नहीं हेतु संजुक्त[८]॥६२॥
विद्या-लोक-विरुद्ध[९], त्यौं अनवीकृत[१०], औ श्लील[११]।

नियम[12], माऽनि[13] यमविशेषबिन[14], अविशेषहु, बिनशील[15] ॥६३॥
अपद-मुक्त[16], साकांक्ष[17], सहचारि[18], प्रकाश-विरुद्ध[19]।
विधि[20], अनुवाद-अजुक्त[21], पुनि स्वीकृत त्यक्त[22], जु सुद्ध ॥६४॥

१ अपुष्टार्थ

दोहा

अर्थ कहैं हू बिन कहै तुल्य सु होय 'अपुष्ट'।

यथा—

'गंग' कहै अगरै अरु चंदन, आगि को ईंधन और न कीजै।

इहाँ "आगि को" यह अपुष्टार्थ है।

यथा—

सवैया

सूरज तेज सरोज की सेज सुधाकर जोन्ह के ज्वालनि जारी।
कोकिल कूकनि हूक उठै 'मुरलीधर' मोर मरूरनि मारी॥
आँगन कुंज के गुंजत भौंर तिन्है पिय-पास पठावति प्यारी।
दै पतियाँ कहि यों बतियाँ अतना छतियाँ छतना करि डारी ॥६५॥
'केसव' सूधे विलोचन सूधी विलोकनि सों अवलोकै सदा ही।

इहाँ 'सुधाकर' 'विलोकनि', ये अपुष्ट हैं।

२. कष्टार्थ

जो विलम्ब सों समुझिये अर्थ सु जानौ 'कष्ट' ॥ ६६ ॥

यथा—

दोहा

वृषभ-वाहिनी अंग उर वासुकि वसतु प्रवीन।

सिव-अरधंग सिवा किधौ पातुर राइ प्रवीन ॥ ६७ ॥

इहाँ "वासुकिः पुष्पहारः स्यात्सर्पराजस्तु वासुकिः" या प्रमाण सों पुष्पहार और सर्पराज दोउन को नाम वासुकि है, तासो कष्टार्थ है। ऐसे ही "जात नहीं कदली की गली" इत्यादि जानिये।

३. विहतार्थ

दोहा

करि प्रकर्ष, अपकर्ष कै तातें जो विपरीत।

'विहित अर्थ' द्वै विध कहै पंडित कविता-मीत ॥ ६८ ॥

(१) प्रकर्ष मे अपकर्ष, यथा—

कवित्त

राग महा रंग महा कविता प्रसंग महा,

जाकी मजलस सदा सनीं है सुवास में।

'सविता' सुमति करी दान औ कृपान ताकी,

कीरति विदित भूमि भूतल अकास में ॥

ऐसे गुन साहिब कुमार कृष्णसाहिजू के,

फैले चहुँ ओर झारखंड आसपास में।

पंथनि पथिक कहै, कथनि कथिक कहैं,

रानी कहैं अंदर खुमानी आमखास मे ॥ ६९ ॥

इहाँ "भूमि, भूतल, अकास में" कहि "झारखंड आसपास में" यह (कहिबौ) अपकर्ष है।

"झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‌यो मार,
हारी झकझोरति त्रिविध गति बात की।"

इहाँ 'झकझोरति' कहिबौ त्रिविध गति में अपकर्ष है।

(२) अपकर्ष मे प्रकर्ष, यथा—

दोहा

विधि अद्‌भुत अति ही रचे रुचै न चंदन चंद।
मेरे तो दृग-चंद्रिका तिय-मुखकांति अमंद॥ ७०॥

इहाँ चंद्र की निंदा (अपकर्ष) करि चद्रिका प्रकर्ष कह्यो। यहै 'वदतोव्याघात' है।

यथा—

दोहा

सिह विरह जा नारि कों और नारि नहि जाइ।
दूध पिये, सरबत पिये, जल बिन प्यास न जाइ॥ ७१॥

इहाँ "सरबत पियें कहि 'प्यास न जाइ" यह विरुद्ध है।

४. पुनरुक्त

दोहा

अर्थ कह्यौ 'पुनरुक्त' सो कह्यो फेरि कहि जाइ।

यथा—

भलौ नहीं यह केवरौ, सजनी! गेह अराम।
वसन फटै, कंटक लगै निसिदिन आठौ जाम॥ ७२॥

इहाँ 'आठौ जाम' अर्थ पुनरुक्त है।

यथाच—

कवित्त

मद ही द्रवत इंद्र-वधू के वरन होत,
प्यारी के चरन नवनीत हू तें नरमै।
सहज ललाई बरनी न जाय 'कासीराम',
चुई-सी परति अति बाँकी मति भरमै॥
नाइनि गहति ठकुराइनि की एड़ी जब,
दौरि आवे इँगुर-सो रंग दरबर मै।
'दयो है के दीवे है' विचारै सोचै बार बार,
बावरी-सी ह्वै रही महावरी लै कर मै॥ ७३॥

इहाँ "मद ही द्रवत इन्द्र-वधू के वरन होत" यह अर्थ तीनों तुक में पुनरुक्त है।

५. दुष्क्रम

लोकशास्त्र-विपरीत क्रम सो 'दुष्क्रम' ठहराइ॥ ७४॥

यथा—

कवित्त

कैला कालकूट को, तचाई तेज वाडव के,
सेस-फूँक धमनि प्रचंड चाइ चढ़ी है।
आई आसमान भासमान खरसान प्रलै-
पानी सों बुझाई यातें पैनी धार कढ़ी है॥

हरि हर-हर के त्रिसूल हरि-चक्र पास,
भल्ली भाँति वैरी हनिबे की विधि पढ़ी है।
महाबली राजा महासिंहजू ! तिहारी तेग,
वज्र के हथोरे काल कारीगर गढ़ी है ॥ ७५ ॥

इहाँ पहिले गढिबौ, फेरि खरसान चढिबौ फेरि हनन (मारण) पढिबौ इत्यादि क्रम चाहिये सो नाहीं है, यातें दुष्क्रम है। एसे ही—

"घूँघट जवनिका मे कारे कारे केस निस,
खुटला जराउ जरे दीपिका उज्यारी है।
किलकि उघटि तान किंकिनी नुपूर बाजें,
नैना नटनागर लकुट लटधारी है ॥"

इहाँ "किंकिनी ताल", "लट लकुट" एसो रूप को क्रम चाहिये।
"एकरदन, गजबदन, सदन-बुधि, मदन-कदन-सुत"
यहै दुष्क्रम है।

६. ग्राम्य, यथा—

दोहा

कुचपिरात कीन्हौ कहा ? एसौ भलो न राज।
जो मोकों ल्याई इहाँ, तापर परियो गाज ॥ ७६ ॥

यथा—

त्यौं खरी सीतल बास करै मुख जोरु भखी घनसार के साटैं।
लालचै हाथ रहै ब्रजनाथ पे प्यास बुझाति क्यो ओस के चाटैं ॥

इत्यादि ग्राम्य हैं।

७. संदिग्धार्थ जहाँ एक निश्चय न होइ, यथा—

दोहा

बर तिय के गिरिवरनि के सोहत विपुल नितम्ब।
कौन सेइवे जोग हैं, कहि विचार अवलम्ब ॥ ७७ ॥

इहाँ शृङ्गार है कि शान्त है, यह सदेह है।

८. निर्हेतुक जहाँ कार्य मे हेतु चाहिये पे न कह्यो होइ।

यथा—

सवैया

काम-कला रस कामिनि सों विपरीत रची रति पी मन भाए।
जोवन भार भरे 'सविता' भनि पीड़त अंग अनंग सुहाए॥
कैइक टूक भौ हार विराजत प्रीतम के मुख ऊपर आए।
टूटिगौ चाप मनौ रति-कंत को मीत कलानिधि देत चढ़ाए ॥७८॥

इहाँ 'मीत कलानिधि देत चढ़ाए' इतनौ निर्हेतुक है, ऐसे ही—

लाल सों बोलति नाहिंनै बाल सु पोंछति आँखि,अगौछति अंगनि।

इहि कवित्त मे आँखि पोछिवौ निर्हेतुक है।

९. प्रसिद्धि-विरुद्ध

(१) लोक-प्रसिद्धि-विरुद्ध, यथा—

दोहा

बिधुमुखि विधु यह बर तरुनि, कर-कंकन नहिं मानि।
लियो काम कर चक्र है, जग जीतन को जानि ॥७९॥

इहाँ काम को चक्र इथ्यार लोकप्रसिद्धि-विरुद्ध है।

सवैया

रुद्रप्रताप के मंगदराय गिराइ गयंद दए इक ठौरी।
'गग' कहै कटि कुंभ कपोलनि मोतिन भूमि भई रँगि धौरी ॥
इक भुसुंड को छंडति जुगिनि इक भुसुंड गहैं भरि कौरी।
मानहुँ माँगि हिमाचल कों हित भूधर भैयनि भैटति गौरी ॥८०॥

इहाँ "रँगि धौरी" यह युद्धप्रसिद्धिविरुद्ध है।

(२) विद्या (शास्त्र) तें विरुद्ध, यथा—

दोहा

चंदन रह्यौ जु फूलि है आये ते रितुराज।
फूलि रही स्यों मालती सखी ! लखी हम आज ॥८१॥
"झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‌यो मार"

इत्यादि में चदन फूलिबौ, मधु में मालती—फूल, रति को झुकिबौ कविशास्त्र-प्रसिद्धिविरुद्ध है।

यथाच—

दोहा

पढ़िबौ तथा पढ़ाइबौ दिन के साधन न्यान।
रैनि भये कीजतु सदा स्नान दान सुविधान ॥८२॥

इहाँ रैनि में स्नान-दान धर्मशास्त्र-विरुद्ध है।

यथा—

"पैने पयोधर देखि 'गदाधर' यों अँगिया की तनी सरकाई।
जानि पुरातन वैर सदाशिव की मुसकैं मनौं मैन चढ़ाई ॥"

इहाँ 'पैने पयोधर' सामुद्रिकशास्त्र-विरुद्ध है। "ऊँचे पयोधर"

एसो कह्यौ चाहिये । एसे ही ज्योतिष वैद्यकादि विरुद्धहू विद्या-विरुद्ध जानिये । लोक-विरुद्धहू कवि-प्रसिद्धि मे दोष नाहीं ।

१०. अनवीकृत

दोहा

फिरि फिरि कहिये अर्थ जहँ 'अनवीकृत' कहि सोधि ।

यथा—

सवैया

जाके लिये गृह-काज तज्यौ न सिखी सखियानि की सीख सिखाई ।
वैर कियौ सिगरे ब्रज-गाँउ सों जाके लिये कुल-कानि गँवाई ॥
जाके लिये घर बाहिर हू 'मतिराम' रह्यौ हँस लोक चबाई ।
ताहरि सों हित एक ही बार गँवारि हौ तोरति बार न लाई ॥८३॥

इहाँ "जाके लिये" यह अर्थ अनवीकृत है । एसे ही—

"रूप-मद-मोचन, मदन-मद-मोचन कै
तियमद-मोचन ये लोचन तिहारे है ।"

यहहू है ।

११. अश्लील

त्रिविध कह्यौ अश्लील, घन, लाज, अमंगल रोधि ॥८४॥

(१) घृणा-व्यंजक

यथा—

"एक उसासहिं के, मिस सें सिगरेई सुंगध विदा करि दीन्है ।"

(२ लज्जा-व्यंजक) यथा—

"आइकै कहूँ ते मेरे सेज के समीप रह्यौ
ठाढ्योई करत मनुहार बड़ी बेर को।"

(३ अमंगल-व्यजक) यथा—

दोहा

लाल कही इहि दुपहरी मिटति तृपा नहि हाल।
यो सुनिकै जल-अंजुली निज कर दीन्ही बाल ॥८५॥

यथाच—

"सासन पीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीन्हौ।"

इत्यादि।

नियमादि परिवृत चार दोष—

१२. नियम-परिवृत, यथा—

नियम जहाँ चाहिजे, पै न कीजै, सो 'नियम-परिवृत'।

यथा—

"ता हरि सों हित एक ही बार गवाँरि हौं तोरत बार न लाई।"

इहाँ "ताही हरि सों" एसो नियम चाहिये।

यथा—

दोहा

रतन रतन आभास सों मनि कहियतु पाखान।
तिनि रतननि तिनि मनिनि हू पाखानता निदान ॥८६॥

इहाँ आभास हू सों तिनि रतननि सों पाखानता तुल्य है, एसो नियम चाहिये।

१३. अनियम-परिवृत

अनियम जहाँ चाहिये तहाँ नियम होइ ।

यथा—

"होति है प्यारी पिया, तब ही यों ।
चले जब काम-कलोल की बातै ।

इहाँ "तब ही" यह नियम न चाहिये ।

१४. विशेष-परिवृत

जहाँ विशेष चाहिये, तहाँ सामान्य होइ, सो विशेष-परिवृत ।

यथा—

मकराकृति कुंडल स्रवन, झलकत कृष्ण-कपोल ।
छबि लखि टरत न नरनि के लोचन-जलचर लोल ॥८७॥

इहाँ दृग मीन एसो विशेष चाहिए ।

१५. सामान्य परिवृत, यथा—

दोहा

जटाजूट सोहत सिरहि त्रिदस न पावत भेव ।
सदा बसत कैलास पर दिग-दरिआई देव ॥८८॥

इहाँ "दिग्वसन" यह सामान्य कह्यो चाहिये ।

"नेह नयो नैननि मे भेद कह देत बैन,
चरचैं चतुर लोग जातें अति डरिये ।"

इहाँ "नैननि" यह विशेष न चाहिये ।

१६. अपद मुक्त

दोहा

अनुचित ठानत जो अरथ 'अपदमुक्त' कहि जाय।

यथा—

सवैया

जासु सुडीठ सुरेस तकै तव लोचन आगम वेद बिसेखे।
लंक-से दुग्ग मे बास निसंक है संकर देव-से तोषित पेखे॥
बंस बिरंचि के सभव, गेह तिलोक की सपति के सुख पेखे।
एसो कहा ? बरु पे यह रावन होत कहा ? सिगरे गुन देखे॥८६॥

इहाँ "गुन कहिये यह रावन" यह निंदा कहि सीता नाहीं देवे है। तहाँ "होत कहा सिगरे गुन देखे" यह अनुचित ठानत ज्यौ यामें देवो ठहरायो।

१७. साकांक्ष

जहाँ चाह कछु अथ की 'साकांक्ष' सु बताय॥ ६०॥

यथा—

दोहा

ग्रीषम रितु की दुपहरी, चली बाल बन-कुंज।
अगिनि लपट तीखन लुवै मलय-पवन के पुंज॥ ६१॥

इहाँ "मलय पवन के पुंज" "जानी" इतनी क्रिया साकांक्ष है।

यथाच—

सवैया

देखि न क्यौं सुख मानि घनौं मनि जा सुख मानि को सोर भयो है।
सुंदर साँवरो जो सिगरी ब्रजनारिनि को चित-चोर भयो है॥

आपने आनि अटानि भट्ट घनवारि घटानि को मोर भयो है।
नन्दा † सोर अली ! यहि ओर सु तो मुखचंद-चकोर भयो है ॥६२॥

इहाँ "तुव घनवारि घटानि को" इतनौ अर्थ चाहिये। विवक्षित अर्थ की न्यूनता मे 'साकाक्ष' है। अविवक्षित अर्थ की न्यूनता में न्यूनपद' है।

यथा—

दोहा

कहा रेनि, कह द्यौस हू करत रहत उद्दोत।
तरुनि ! तिहारो देखि मुख कुच-विघटन नहि होत ॥ ६३ ॥

इहाँ मुख-'चद' कुच-'चक्रवाक', न्यूनपद है।

१८. सहचर-भिन्न

उत्तम मे अधम और अधम मे उत्तम अर्थ 'सहचर-भिन्न' है।

(१) प्रथम उत्तम मे अधम, यथा—

दोहा

विद्या सों बुधि, बिसन सों मूरखता, मद नारि।
विधु सों रजनी, विनय सों धन, सोहत निरधारि ॥ ६४ ॥

इहाँ 'व्यसन से मूर्खता' (यह) 'सहचर भिन्न' है।

(२) द्वितीय—अधम में उत्तम, यथा—

दोहा

अति उताइले वधिक-गन लीन्हे बागुर जार।
ठाकुर कूकर सग ही खेलन चले सिकार ॥६५॥

इहाँ ठाकुर 'सहचर-भिन्न' है।

१९ प्रकाशित-विरुद्ध

जो प्रकाशित (अर्थ ते) विरुद्ध सो 'प्रकाशित-विरुद्ध' ।

यथा—

सवैया

राग भरी गरै वैरिनि के लपटाति सु तेग सदा मन भाई ।
ता बस भूपति मोहि सुदीननि दीन्हैई डारत हौ न सुहाई ॥
छीर-पयोनिधि तात सो बात सँदेस अदेस की एमी तताई ।
राजसिरी इमि प्यारी सखी तुव कीरति वारिधि-पार पठाई ॥९६॥

इहाँ "तुव कीरति समुद्र-पार लौं गई" यह अर्थ प्रकाशित है तहाँ 'राज्यश्री जाति' यह विरुद्ध प्रतीति होत है ।

२० अयुक्त विधि

दोहा

रचौ पंडवनि-हीन जग आजु तिहारे काज ।
जतन जगाए रजनि मे सुख सोवहु कुरु-राज ! ॥९७॥

इहाँ अश्वत्थामा की उक्ति मे रजनि में 'सुख सों सोवत, जतन सों जगाइवी' यह विधि-युक्त है, सो न कही ।

यथाच—

सवैया

पावस-भीत वियोगिनी बालनि यो समुझाय सखी सुख साजैं ।
जोति जवाहिर की 'मतिराम' नहीं धुरवा दिग ओजनि छाजैं ॥
दंत लसे बक-पाँति नहीं धुनि दुंदुभि की न घनाघन गाजैं ।
रीझ के 'भानु' नरिन्द दये कविराजन को गजराज बिराजैं ॥९८॥

एसौ निषेध विधि घनाघन कह्यौ सो 'घनाघन गाजैं" इहाँ गौण कह्यौ ।

२१. अयुक्तानुवाद, यथा -

दोहा

नौल कौल-दल-से नयन भेदि गए उर न्यान।
विहसि विलोकनि मे तरुनि बस कीन्है प्रिय-प्रान ॥६६॥

इहाँ "नौल कौल(नवल कमल)दल-से" यह अनुवाद "भेदि गये उर न्यान" यह अर्थ अयुक्त है।

२२. त्यक्त पुन स्वीकृत

दोहा

तज्यो जु प्रकरन वाक्य मे, कह्यो अर्थ पुनि ल्याय।
'त्यक्त पुन स्वीकृत' तहाँ कविता दोष बताय ॥१००॥

यथा—

कवित्त

सिखै हारी सीख, डरवाइ हारी कादंबिनी,
दामिनी दिखाइ हारी निसि अधरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्यौ मार,
हारी झकझोरति त्रिविध गति बात की ॥
दई निरदई ! याहि काहे ? एसी मति दई,
जारत है रैन एन दाह भई गात की।
कैसे हू न मानति मनाइ हारी 'केसोराय'
बोलि हारी कोकिला, बुलाइ हारी चातकी ॥१०१॥

इहाँ दामिनी, कादंबिनी (मेघमाला) सग में त्यक्त है। "मनाइ

हारी" यह् वाक्य समाप्त भये पर "बोलि हारी कोकिला, बुलाइ हारी चातकी" यह 'त्यक्तपुन'स्वीकृत' है।

इति अर्थ-दोषवर्णनम्।

रसभावादि-दोष

दोहा

रस थाई प्रभृतिक कह्यौ नाम[1] न व्यंग्यहि बोध।
विभावादि प्रतिकूलता[2] कष्ट-बोध[3], तँह सोध॥ १०२॥
फिरि फिरि दीपति रसहि को[4], अकस्मात विच्छेद[5]।
अकस्मात विस्तार[6] त्यों, अँग-विस्तर को भेद[7]॥ १०३॥
अँगि भूल्यो[8] कि विरुद्ध अँग[9], प्रकृति-विपर्यय[10] लेख।
शृंगारादिक रसनि के दूषन इतने देख॥ १०४॥

१. स्वनाम-दोष

(१) रस को स्वनाम-दोष। यथा—

दोहा

चली उरोज दिखाइ तिय, भुज उठाइ, अँगिराइ।
इन प्रीतम के दृगनि मे रस उपज्यौ अधिकाइ॥ १०५॥

(२) स्थायी को स्वनाम-दोष। यथा—

दोहा

अंगनि कांति अनंग की उरज उपज अब देखि।
प्रीतम के हिय नित नई उपजी तिय रति लेखि॥ १०६॥

(३) सचारी को स्वनाम-दोष । यथा—

दोहा

सडर भुजंग विभूषननि, सलज संभु-मुख ओर ।
नव संगम मे गंग लखि सरुष गौरि-दृग-कोर ॥ १०७ ॥

(४) शृंगारादि स्वनाम-दोष । यथा –

दोहा

झाँखि झरोखे तिय गई नैकु मधुर मुसक्याय ।
लखि सिंगार रस-पूर को पिय-हिय रह्यो समाय ॥ १०८ ॥

"नवरसमय ब्रजराज नित"

इत्यादि ।

तथाच—

तजि रिस को, रस-केलि कर, परत पाँइ पिय हेरि ।
गयौ अरी जोबन हरिन नहि बहुरेगो फेरि ॥१०९

एवंच—

'भयौ हिय बोध, किधा उपज्यौ प्रबोध'
'गाढ़ो अगेठि गढ़े से षयेनि त्यौ ठाढे उरोजनि ठाढ़िये जैहैं' ।
इत्यादि ।

२ विभावादि-प्रतिकूलता, यथा—

"मानौ गयंद के कुंभनि मे रनसूर महावति जूझि पर्यौ है ।"
यहै है ।

३. विभावादि को कष्ट-बोध, यथा—

सवैया

आँचर झीनै उरोजनि लच्छित लाल लखै ललनै सुधि आवैं।
आनँद लाज लपेटी तहाँ लखि पैच मे जावक-दाग छिपावैं॥
जानि परे 'मनिकठ' जितै तितहीं तकि रोकि रहै टकि लावैं।
कान्ह चुनैं तब हेरि हसै,तिय प्रेमपगी पिय-पाग-चुनावैं॥११०॥

इहाॅ नायक-गत हास आदि को प्रकट नाही। यथाच—
"सोर भये सकुचै, समुझैं 'हरवाह' कह्यौ गरैं लागी सु पोरी"।
इहाॅ अनुभाव को बोध कष्ट तें है।

यथाच—

दोहा

धरै न धीरज सुधि हरैं, उलटै पलटै फेरि।
हरि! वाकी ऐसो दसा, कैसे सकिये हेरि॥१११॥

इहाँ शृंगार-साधारण विभाव है।

४. पुन पुन दीप्ति

रस की प्राप्ति फिरि फिरि दीप्ति दोष कुमारसभव-रतिविलाप मे है।

५. अकस्मात् विच्छेद

रस को अकस्मात् विच्छेद 'महावीर-चरित' नाटक में है। (द्वितीय अंक में रघुनाथजी और परशुरामजी के वीररसात्मक संवाद में 'कंकणमोचनाय गच्छामि' यह रघुनाथजी की शृंगाररस-उक्ति रूप है)।

६. अकस्मात् विस्तार

रस को अकस्मात् विस्तार 'वेणीसहार' में है। (दूसरे अक में वीरनाश-प्रसग में दुर्योधन को शृंगाररस वर्णन रूप है)।

७ अंग-विस्तार

अग जो अप्रधान रस ताको विस्तार 'हयग्रीव-वध' में है।

८. अगी-विस्मरण

अगी (प्रधान नायकादि) को विस्मरण 'रत्नावली' (नाटिका) में है। (चतुर्थ अक में नाटक की प्रधान नायिका सागरिका को विस्मरण है)।

६. विरुद्ध-अंग वर्णन

रस के अनुपकारी अग को वर्णन 'कर्पूरमजरी सट्टक' की प्रथम जवनिकान्तर में है।

१०. प्रकृति-विपर्यय

(१) दिव्य, (२) अदिव्य, (३) दिव्यादिव्य, यह तीन प्रकृति-विपर्यय हैं। लहाँ स्वर्गपातालगमन, समुद्रोल्लघनादि दिव्य हैं। कदाचित् दिव्यादिव्यहू में सभोग, परिहास, शोक, परिताप दिव्य हैं। एसें दक्षिण आदि चार तथा धीरोदात्त, धीरशान्त, धीरोद्धत तथा धीरललित तथा उत्तम, मध्यम, अधम भेद होत हैं। तातें जो विपर्यय होइ सो 'प्रकृति-विपर्यय' दोष है।

नायिका-चरणप्रहारादि मे नायक को कोप, अनुचित कर इत्यादि दोष आपुतें जानिये।

अर्थदोष की अदोषिता

——:※:——

दोहा

संचारी निज नाम कहि, कहुँ नहिं दोष विरुद्ध।
कहुँ विरुद्ध संचारि यौं बाध भये हू सुद्ध ॥११२॥

१. संचारी भाव द्वै भाँति, एकै व्यंग्य-संचारी के बोधक, एकै ताही के अर्थ के बोधक, तहाँ निज नाम दोष नाहीं।

२. उत्सुकता, व्रीड़ा आदि शब्द मे है। तातें दम(मद)यंती, किलकिंचित, "सलीलमावर्जित पादपद्म" इत्यादि निर्दोष है।

३. विरुद्ध संचारी भाव, भावशवलता में दोष नाहीं। यथा—

दोहा

बहू ! दूबरी होत कत ? यों बूझति है सास।
ऊतर कढ्यौ न बाल-मुख, ऊँची लई उसास ॥११३॥

इत्यादि में दुःख साधारण भाव-श्रृङ्गार विरुद्ध नाहीं।

दोहा

स्मृति, त्यों ही सादृश्य में नहि विरुद्ध रस और।
एक ठौर जु विरुद्ध है सो कीजे द्वै ठौर ॥११४॥

यथा—

भैंटति आपु बरंगननि चढै विमाननि-संग।
बीर लखत हैं आपने स्यारनि भैटे अंग ॥११५॥

५. विविध निर्दोषिता

दोहा

होत नहीं अनुकरन मे दूषन सबै विचार।
वक्रादिक औचित्य ते दोष गुन निरधार ॥११६॥
कहूँ न गुन नहि दोष है, नीरस मे यह जान।
करणादिक अवतंस जे, ते सहितार्थ प्रमान ॥११७॥

कर्णावतस, शिरःशेखर, धनुर्ज्या, पुष्प-मालादि शब्द सन्निधि अर्थ में हैं। तातें अपुष्टार्थादि दोष नाही।

वैयाकरण वक्ता श्रोता होइ, तो अप्रतीति, कष्टार्थ आदि (दोष हू) गुण है।

विदूषक-उक्ति मे, सुरतादि गोष्ठी में 'अश्लील' ग्राम्य, भय हर्षादि में 'अधिक पद', लाटादि (अनुप्रास) मे पुनरुक्त, उपदेशादिक में 'गर्भित दोष' गुन जानिये।

इति काव्य-दोष-वर्णनम्

इति श्रीहरिवल्लभभट्टात्मज-कुमारमणिकृते
'रसिकरसाले' दोषविचारो नाम
दशमोल्लासः ॥ १० ॥

ग्रन्थ-पूर्ति

दोहा

सब रस - सागर कृष्ण - गुन-
ग्यान - ध्यान धरि प्रीति ।
हरिवल्लभ - सुत इमि रची
कविताई की रीति ॥ १ ॥
रस सागर रवि - तुरग विधु
(१७७६) संवत मधुर वसन्त ।
बिकस्यो 'रसिक रसाल' लखि
हुलसत सुहृद व सन्त ॥ २ ॥

इति श्रीकविकुमारमणिकृतौ

'रसिकरसालं'

सम्पूर्णः

शुद्धि-पत्रक

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
३	१७	व्यग	व्यंग्य
४	४	यह	इहि
,,	६	सिघनि	सिंघनि
६	५ से १२	व्यंग	व्यंग्य
७	१२	वाच्याथ	वाच्यार्थ
,,	१५	संगदबोध	संगबोध द
,,	२०	डीठ,	डीठ––
८	१६	मैं	में
,,	२०	व्यग	व्यंग्य
९	१५	जाने	जानैं
११	१५	कौ	को
१२	१७	व्यग्य	व्यंग्य
१३	१६	लेहि	लेहिं
१५	१०	व्याखान	व्याख्यान
१६	५	रसहूँनि	रसनिहूँ
,,	१२	कै	के
२१	१४	कीनौ	कीन्हौ
२३	१०	रैनि	रैन
२३	१८	विरस	विरह
२४	४	हरींन	हरी न
,,	१४	भविष्यति	भविष्यत्
२६	९	सुगधि	सुगंधि
२९	१२	पेखड	पेखत

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
३०	२	दशा-सो	दशा सो
३६	११	बठि	बैठि
,,	१५	वंग्य	व्यंग
३८	१२	हँसा	हँसी
३९	७	संकर	शंकर
४६	१४	पाथै	पाये
५२	१९	वोधजगिवो	वोध =
५५	४	संकर-सेस	शंकर शेष
६५	१	उल्ज़स	उल्लास
६८	२१	ढीठें	ढीठ
६९	१९	नाह	नहिं
७०	७	साचा	साँचो
७१	१९	कहु	कहुँ
७२	१३	गये	भये
७४	१०	नाह	नहिं
७६	१७	बरजा	बरजो
७७	६	जिए	जिय
,,	१३	सौं	सों
८०	२३	सौ	सों
८९	११	नायिका	नायिकाः
९५	१२	दमयन्यादि	दमयन्त्या०
९६	२२	स्यारे	प्यारे
९९	५	चीन्ह	चिन्ह
१०१	७	पाय २	पाँय २
१०७	३	कौ	के

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
११५	२	को	कों
११७	१३	गरे	गरैं
१२६	५	अतिगुप्त के २	अतिगुप्त २ कैं
१४०	६	६गनि ४	६गनिकपूर २६४
१४५	२३	कमा	कमी
१५७	२१	मन	मैं न
१६६	२२	उद्धित कीज	उद्धित कीजे
१६०	१३	निक	विह
१६६	१४	बंधु	बंध
२०७	१८	अतद्गुन	अतद्गुण
२०६	८	रैनि	रैन
२१६	३	सिरह	सिरहिं
२१६	२१	गूढोत्त	गूढोत्तर
२२६	१७	पस्मैपद	परस्मै
,,	,,	आत्मनेन	आत्मने
,,	१६	यितु	यितुं
२३६	२	वाक्यां अंश	वाक्यांश
२४७	६	सुमैन	सुमैंन
२४६	२	निय १२	नियमा १२
,,	,,	ऽनि१३यम	ऽनियम १३
२५१	१५	यह विरुद्ध	यह कहिबौ विरुद्ध
२५५	१८	रैनि	रैन
२५६	११	हस	हँसि
,,	१८	घन	घिन

अवशिष्ट

पत्र	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
४३	२१	पार	पीर
१८३	४	यथा	पूर
१८९	१८	जनि	- जन
१९२	१३	तनक	तनिक
२०३	१८	पाइ	पाँय
२०८	६	सिद्धि	सिद्ध
,,	८	बीछू	बीछी
,,	,,	छ्वै कि	छ्वैकि
,	,,	बा छकौ	वा छकौ
२१२	१९	प्यारी	प्यारे
२१७	९	एक सै बरनौ	एक सौ बरनै
२२६	८	ताही	जाही
२४४	८	आन	पान
२४६	६	पाइ	पाँय
२४८	३	जीवन	जोवन
२६४	१६	किधा	किधौ
२६६	१३	रसालं	रसालः

शीघ्रता, दृष्टि-दोष, मशीन तथा प्रूफ-संशोधन की असावधानी से रह गई इन अशुद्धियों को पाठक कृपया सुधार लें। सम्पादक

रसिकरसाल-पद्यानुक्रमणिका

———:❀:———

अ

ख

ग

झ

ढ

त

थ

भ

ल

व

श

ह

इति रसिकरसाल-पद्यानुक्रमणिका